दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि

लेखक
स्व. श्रीयुत बाबू कामताप्रसाद जी जैन
एम.आर.ए.एस.

दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि

DIGAMBARATVE AOUR DIGAMBAR MUNI

पंचम संस्करण

प्रतियाँ ३०००

प्रकाशक –

श्री दिगम्बर जैन सर्वोदय तीर्थ,

अमरकंटक, शहडोल (म.प्र.)

अर्थ सौजन्य –

शीलचन्द्र जैन भीटावाले
शहपुरा भिटौनी

वीरेन्द्र (वीरू) खोवा वाले
जवाहरगंज, जबलपुर

अरविन्द जैन (चांवल वाले)
जवाहरगंज, जबलपुर

मुद्रक –

आनंद सिंघई,

सिंघई आफसेट

669, सराफा जबलपुर

फोन – 341006, 343239

विषय-सूची

"कृति के नेपथ्य से"

— अजित जैन

भारतीय संस्कृति की अति प्राचीन दो धारायें हैं । वैदिक संस्कृति एवम् श्रमण संस्कृति । दोनों ही संस्कृतियों प्राचीन-तम् व पौराणिक हैं । श्रमण संस्कृति दिगम्बरत्व एवं वीतराग मार्ग की परिचायक है । वीतरागी मुनिराजों का वर्णन वैदिक साहित्य में भी मिलता है ।

ऋग्वेद, मनुस्मृति आदि वैदिक ग्रंथों में दिगम्बर मुनिराजों का वर्णन वातरसना मुनि की संज्ञा से प्राप्त होता है । पौराणिक साहित्यविद् तो शिव को दिगम्बरत्व के ही प्रतीक निरुपित करते हैं ।

श्रमण संस्कृति जिसे दिगम्बर संस्कृति ही कहा जाता है, अहिंसा, अपरिग्रह, तप, त्याग व संयम की शिखर यात्रा की द्योतक है । भगवान ऋषभदेव ने असि मसि-कृषि, के मूल्यवान सिद्धांतों का प्रतिपादन कर व्यक्ति के अंतरग एवं बहिरंग दोनों ही तलों पर उन्नयन की शिक्षा प्रदान की थी ।

भारतीय संस्कृति का प्राचीन इतिहास उन विविध घटनाओं को प्रदर्शित करता है, जो विध्वंस, विनाश, युद्ध एवं आक्रमण की घटनाओं से भरा है। इस विसंगति के बीच दिगम्बरत्व की अवधारणा ने अहिंसा, शांति, और समता जैसे शाश्वत् सिद्धांतों का प्रतिपादन किया तथा भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक चौबीस तीर्थंकरों ने अपने जीवन को निर्ग्रन्थ, निस्पृहिता, निर्वस्त्रता, से अभिभूत कर तपस्या के मार्ग में लगाया था एवं दिगम्बरत्व की अवधारणा, भारतीय सांस्कृतिक चेतना की धरोहर बन गई थी ।

विगत पच्चीस सौ वर्षों के लगभग पूर्व भगवान महावीर दिगम्बर परम्परा के अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर हुए हैं । महावीर के लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व भगवान पार्श्वनाथ तेईसवें तीर्थंकर थे । उनके पूर्व जो बाईस तीर्थंकर हुये हैं, उनका समय एक दीर्घ अंतराल का है अस्तु सामान्य जन भगवान महावीर से जैन धर्म का उद्‌भव मानते हैं, जो उनकी भूल है । इसी प्रकार भगवान बुद्ध के बौध्द धर्म को जैन धर्म कालीन था समझने की भी भूलें सामान्य एवम् सतही अध्ययन करने वालों से होती है । इस प्रश्न को प्रसंग से परे न जाते हुये दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि परम्परा का प्रतिपादन विश्व जमीन धर्मों में कहाँ हुआ है, किन ऐतिहासिक राज-घरानों में दिगम्बर मुनि को सम्मानित किया जाकर उनकी देशना को स्वीकारा गया है, इस पर ही विचार करना है ।

विश्व सभ्यता में जैन संस्कृति एवं इसके उपासक-साधक कुछ कारणों से इतर सभ्यता, संस्कृति और दर्शन के जगत में भिन्न माने जाते हैं। जैसे, इसके साधक

दिगम्बर अर्थात नग्न रहते हैं। इसके उपासक शाकाहारी एवं रात्रि भोजन के त्यागी होते हैं तथा इसके चिंतन व दर्शन में नर नारायण नहीं बनता है बल्कि आवागमन के चक्कर से मुक्त होकर मुक्त जीव हो जाता है । विश्व सभ्यताओं एवं धर्मों में वैसा चिंतन दर्शन नहीं पाया जाता है ।

दिगम्बर मुनिराजों की परम्परा में एक लंबा अंतराल आया लेकिन नये सौ वर्षों के भीतर पुनः दिगम्बर मुनिराजों की प्रभावना ने आकार प्रकार पाना प्रारंभ किया है ।

आचार्य शांति सागर व आचार्य अंकलीकर अर्वाचीन सभ्यता में दिगम्बर मुनिराजों की श्रृंखला में अग्रणी हुये एवम् तेजी से दिगम्बरत्व की अवधारणा ने धर्म व साधना के जगत में प्रवेश करना प्रारंभ कर दिया। विश्व के अनेकों धर्म तथा राजघरानों से दिगम्बर मुनिराजों को स्वीकारने के तथ्य को समझना आज के इस परिवेश में अपरिहार्य हो गया है कि चिंतन की यह धारा एवम् संयम व साधना को दिगम्बरत्व जीवन शैली का प्राचीन इतिहास क्या है एवं आज के परिवेश में उसकी उपादेयता क्या है ।

मंगल ग्रह की ओर भागती ये सभ्यता तथा देश भर में तेजी से प्रभावना में साधना रत दिगम्बर साधुगणों का भारतीय सभ्यता में जुड़ना आकलन के योग्य है । आचार्य विद्यानंद व आचार्य विमलसागर जी महाराज सहित, तरुण पीढ़ी के युवा तपस्वी आचार्य विद्यासागर जी महाराज जैसे लगभग ३००-४०० दिगम्बर मुनिराजों ने इस आण्विक सभ्यता व बौद्धिक उन्माद से ग्रस्त व्यवस्था के बीच अपनी वीतरागता, दिगम्बरत्व एवं अपरिग्रहिता व शांति, समता, सहिष्णुता सम भाव की अहिंसक शैली ने चुनौती प्रस्तुत कर दी है ।

यह कृति दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि उक्त परिप्रेक्ष्य में पठन, चिंतन, व मनन योग्य है । लेखक स्वर्गीय बाबू कामता प्रसाद जी ने इस कृति में जो परिश्रम एवं पुरुषार्थ किया गया है वह अतुलनीय है, एवं इसके पुर्न-प्रकाशन हेतु सर्वोदय तीर्थ समिति अमरकण्टक के पदाधिकारी गणों ने जो रुचि प्रदर्शित की है वह प्रशंसनीय है।

मैं ज्ञान ध्यान व तप में निरत् मानव उत्क्रांति के महाचेता, आत्म अनुसंधान के वीतरागी यात्री आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के युगल चरणों में त्रय बार नमोऽस्तु करते हुये भारतीय संस्कृति के प्रागंण में वर्तमान में वीतरागमार्ग की साधना में रत् उन समस्त मुनिराजों व साधुगणों को नमन करता हूं जो मानव की अन्तरंग एवं बहिरंग उत्क्रांति हेतु आत्म कल्याण केसाथ मानव कल्याण हेतु साधना रत हैं ।

और क्या कहूं - क्या लिखूं ?

अजित जैन

सांस्कृतिक चेतना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका गौरव, स्वाभिमान, उसकी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, साहित्य, स्थापत्य, वास्तु, शिल्प कला में निहित है। प्राचीन स्मारक, तीर्थ, वैभव सम्पन्न शिल्प मनुष्य की प्रतिष्ठा से जुड़े हुए तथ्य हैं।

प्राचीनता इतिहास की कच्ची सामग्री है। इतिहास रूपी भवन का निर्माण प्राचीनता की नींव पर ही होता है। जो समाज/जाति अपनी प्राचीनता की रक्षा नहीं कर पाई, उसका नाम इतिहास के पृष्ठों में या तो मिलता ही नहीं और यदि मिलता है तो कपोल-कल्पना के आधार पर विकृत इतिहास ही जन-मानस के सामने आता है, उस जाति का दार्शनिक, सैद्धान्तिक, तात्विक स्वरूप ही बदल जाता है। अतः पूर्वजों, संस्थापकों, स्थिति पालकों की समूची साधना व्यर्थता को प्राप्त हो जाती है तथा उस जाति की स्थिति विश्व में सदैव बौनी ही रहेगी। भले ही आर्थिक, औद्योगिक स्थिति विकासशील उन्नत हो।

प्रत्येक समाज/जाति अपनी परम्पराओं/संस्कृति को उच्च प्राचीन रहस्यपूर्ण सत्य के निकट आदर्श मोक्षमार्ग युक्त सिद्ध करने का प्रयास करती है तथा अन्य समाज/जाति की संस्कृति रीति अव्यावहारिक, अकल्याणकारी सिद्ध करने का प्रयास करती है और जब वह इस प्रयास में सफल नहीं होती तब वह जाति/समाज अन्य संस्कृति पर आक्रमण के तेवर अपनाती है। आक्रमण के प्रथम चरण में प्राचीनता को नष्ट करना तथा साहित्य को समाप्त करना होता है।

दिगम्बर संस्कृति सर्वप्राचीन विकसित अहिंसा, अपरिग्रह, तप, त्याग को पूर्ण व्यावहारिक रूप देने वाली एवं तीर्थ, शिलालेख, शिल्प, वैभव तथा साहित्य सम्पन्न वीतराग भावना युक्त तत्वनिष्ठ, निश्छल, शाकाहारी, करुणामय संस्कृति है। इसी कारण यह ईर्ष्या आक्रमण की पात्र रही

है। इस संस्कृति पर दो प्रकार के आक्रमण हुए हैं। प्रत्यक्ष आक्रमण व परोक्ष आक्रमण। प्रथम आक्रमण का स्वरूप विध्वंसकारी, हिंसक, अपमानजनक रहा है। यह आक्रमण विधर्मियों द्वारा हुआ है तथा द्वितीय आक्रमण का स्वरूप इतिहास तथा आगम में परिवर्तन करके रीति-रिवाज, तत्व, तथ्य में संदेह पैदा करना रहा है। यह आक्रमण योजनाबद्ध प्रेम मिश्रित छल, भाईचारे एवं एकता की आड़ में धन के बल पर महावीर के शिष्यों ने अपनी हठपूर्ण शिथिलता के समर्थन में किया है।

हमारी संस्कृति को जनमत का समर्थन प्राप्त है तथा यह संस्कृति आज भी विश्व को आश्चर्यचकित करने वाली प्राचीन धरोहर की धनी है। किन्तु आक्रमण से बची हुई सामग्री हमारी असावधानी, उपेक्षा, अनेकाग्रता, फूट, मत-भेद, जाति-भेद, पंथ-भेद के कारण सुरक्षा की आशा छोड़ चुकी है तथा जिनालय के अवशेष खंडहर, अथवा हस्तलिखित जिनवाणी दीमक की ग्रास कहीं बीहड़ जंगल में पड़े जिनबिम्ब अपने उन लाड़लों का स्मरण कर रहे हैं जिन्होंने अपने प्राणों की आहुति देकर कभी उनकी रक्षा की थी। इनकी सम्पूर्ण आशा भावी युवाओं पर टिकी हैं, जो अपने आपसी जाति, पंथगत भेद मिटा कर प्रेम, त्याग, समर्पणपूर्ण संगठन की भावना दिगम्बर समाज में जागृत करके शारीरिक, आर्थिक, बौद्धिक, राजनैतिक शक्ति को संचित करके 'दिगम्बराःसहोदराः सर्वे' सूत्र वाक्य के आधार पर रक्षा कर सकते हैं।

अतः दिगम्बर संस्कृति की मौलिकता प्रामाणिकता सिद्ध करने हेतु एवं ऐतिहासिक पुरातात्विकता, शौर्यता, सत्यता की वास्तविक जानकारी कराने हेतु यह पुस्तक बाबू कामता प्रसाद जी की अमूल्य निधी है। इसका पुनः प्रकाशन हो ऐसी भावना परम पूज्य आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी की रही है। इस प्रकाशन में उनका आशीष वचन मौखिक रूप से प्राप्त है तथा प्रकाशक संगठन भी धन्यवाद का पात्र है।

मेरे दो शब्द

पिछली गर्मी के दिन थे। "जैन मित्र" पढ़ते हुये मैंने देखा कि श्री भा.दि.जैन शास्त्रार्थ संघ, अम्बाला दिगम्बर जैन मुनियों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक वार्ता एकत्र करने के लिये प्रयत्नशील है। यह विज्ञप्ति पढ़कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। इतिहास से मुझे प्रेम है। मैं तब इस विज्ञप्ति के फल को देखने की उत्कण्ठा में था कि एक रोज मुझे संघ के महामंत्री प्रिय राजेन्द्र कुमार जी शास्त्री का पत्र मिला। मेरी उत्कण्ठा चिन्ता में पलट गई। पत्र में शीघ्रातिशीघ्र दिगम्बर मुनियों के इतिहास विषय की एक वृहत पुस्तक लिख देने की प्रेरणा थी। उस प्रेरणा को यों ही टाल देने की हिम्मत भला कैसे होती? उस पर वह प्रेरणा वस्तुतः समय की आवश्यकता और धर्म की पुकार थी। मुनि धर्म मोक्ष का द्वार है, दिगम्बरत्व उस धर्म की कुञ्जी है। नासमझ लोग उस कुञ्जी को तोड़ने के लिये वार करने को उतारू हों, तो भला एक धर्मवत्सल कैसे चुप रहे? बस, सामर्थ्य और शक्ति का ध्यान न करके बड़े संकोच के साथ मैंने संघ का उक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उस स्वीकृति का ही फल प्रस्तुत पुस्तक है।

पुस्तक क्या है? कैसी है? इन प्रश्नों का उत्तर देना मेरा काम नहीं है। मैंने तो मात्र धर्म भाव से प्रेरित होकर 'सत्य' के प्रचार के लिये उसको लिख दिया है। हिन्दू-मुसलमान-ईसाई-यहूदी-सब ही प्रकार के लोग उसे पढ़ें और अपनी बुद्धि को तर्क/तराजू पर तौलें और फिर देखें, दिगम्बरत्व मनुष्य समाज की भलाई के लिये कितनी जरूरी और उपयोगी चीज है। इस रत्न की परख ही उन्हें इस पुस्तक की उपयोगिता बता देगी। हाँ, यह लिख देना मैं अनुचित नहीं समझता कि अखिल भारतीय दिगम्बर मुनि रक्षक कमेटी ने इस पुस्तक को अपने काम में सहायक पाया है। 'असेम्बली' में दिगम्बर मुनिगण के निर्बाध विहार विषयक 'बिल' को उपस्थित कराने के भाव से इस पुस्तक से अंग्रेजी में 'नोट्स' तैयार कराकर माननीय असेम्बली मेम्बरों में वितरण किये गये थे। विश्वास है, उपर्युक्त वातावरण में कमेटी का उक्त

प्रयत्न सफल हो जायेगा और उस दशा में, मैं अपने श्रम को सफल हुआ समझूंगा।

अन्त में, मैं अपने उन मित्रों का आभार स्वीकार करता हूं जिन्होनें मुझे इस पुस्तक को लिखने में किसी न किसी तरह उत्साहित किया है। संघ ने काफी साहित्य मेरे सामने उपस्थित कर दिया और पुस्तक को शीघ्र ही प्रकाशित होने दिया, इसके लिये मैं उपकृत हूं। यह सब कुछ भाई राजेन्द्र कुमार जी के उत्साह का परिणाम है। इम्पीरियल लायब्रेरी, कलकत्ता आदि से मुझे जरूरी पुस्तकें पढ़ने को मिली हैं, इसलिये यहाँ उनको भी मैं भुला नहीं सकता हूँ। "चैतन्य" प्रेस के मैनजर भाई शान्तिचन्द्र ने आशा से अधिक शुद्ध और सुन्दर रूप में पुस्तक को छापा है। अतः उनका भी उल्लेख कर देना मैं आवश्यक समझता हूं। उन सबका मैं आभारी हूं।

आशा है, पुस्तक अपने उद्देश्य को सिद्ध हुआ प्रकट करने में सफल होगी।

इति शम् ।

अलीगंज (एटा)
२५-२-१९३२

विनीत
कामताप्रसाद जैन

संकेताक्षर-सूची

नोट- प्रस्तुत पुस्तक को लिखने में जिन ग्रंथों से सहायता ली गई है, उनका उल्लेख निम्नलिखित संकेताक्षरों में यथास्थान कर दिया गया है। पाठकगण संकेताक्षर का भाव इससे जान लें। उक्त प्रकार सहायता लेने के लिये इन ग्रंथों के लेखकों के हम आभारी हैं : -

हस्तलिखित ग्रन्थ

१. **आठकर्मनी १४८ प्रकृतिनो विचार**-मुनि वैराग्यसागर कृत (श्री दि. जैन मंदिर, अलीगंज)।

२. **उत्तरपुराण भाषा**-कवि खुसालचन्द कृति (श्री दि. जैन मंदिर भंडार, अलीगंज)।

३. **पंचकल्याणक पूजा पाठ-** मुनि श्रीभूषण कृत (श्री दि. जैन मंदिर, अलीगंज)।

४. **भक्तामर चरित-** कवि विनोदीलाल कृत (श्री दि. जैन मंदिर, अलीगंज)।

५. **भावत्रिभंगी-** जैन मंदिर, अलीगंज (एटा)।

६. **मैनपुरी जैन गुटका**-बड़ा पंचायती मंदिर, मैनपुरी में विराजमान।

७. **यशोधर चरित-** कवि पद्मनाभ कायस्थ विरचित (श्री दि. जैन मंदिर, मैनपुरी)।

८. **श्री जिनसहस्रनाम**-मुनि श्री धर्मचन्द्र कृत (श्री दि. जैन मंदिर, अलीगंज)।

९. **श्री पद्मपुराण भाषा**-कवि खुसालचन्द कृत (श्री दि. जैन मंदिर, अलीगंज)।

१०. **श्री यशोधर चरित**-श्री सोमकीर्ति कृत। (श्री दि. जैन मंदिर, अलीगंज)।

संस्कृत-हिन्दी-गुजराती आदि के मुद्रित ग्रंथ

१. **अष्ट०- अष्टपाहुड**, श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत (श्री अनन्तकीर्ति ग्रंथमाला, बम्बई)।

२. **आईन-ई-अकबरी**(फारसी)-नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ (१८९३)।

३. **आचा०-आचारांग**-सूत्र, श्वेताम्बर आगमग्रंथ, श्वे. मुनि अमोलक ऋषि के हिन्दी अनुवाद सहित (हैदराबाद दक्षिण संस्करण)।

४. **आरोग्य०**-आरोग्यदिग्दर्शन, ले. महात्मागाँधी (बम्बई, १९७३)।

५. **ईशाद्य०**–ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद Ed. W.L.Shastri–Paniskar (3rd.ed, Nirnaya–Sagar Press, 1925)।

६. **जैध०**– जैन धर्म, प्रो. ग्लाजेनाप्प के जर्मन ग्रंथ का गुजराती अनुवाद, (भावनगर, १९८७)।

७. **जैप्र०**–जैन धर्म प्रकाश, ले.ब्र.शीतलप्रसाद जी (बिजनौर, १९२७)।

८. **जैप्रयलेसं०**– जैन प्रतिमा और यंत्र लेख संग्रह, ले.बाबू छोटेलाल(कलकत्ता, १९२३)।

९. **जैम०**–जैन धर्म का महत्व, सं. श्री सूरजमल जी (बम्बई, १९११)।

१०. **जैशिसं०** –जैन शिलालेख संग्रह, ले.प्रो. हीरालाल (मा.ग्र.बम्बई)।

११. **ठाणा०**–ठाणांग–सूत्र, श्वेताम्बर आगम ग्रंथ; श्वे. मुनि अमोलक ऋषि कृत हिन्दी अनुवाद सहित (हैदराबाद संस्करण)।

१२. **द्रसं०**–द्रव्यसंग्रह, श्री नेमिचन्द्राचार्य कृत (S.B.J.Arrah 1917)।

१३. **दाठा०**– दाठावंसो (बौद्धग्रंथ), Ed Dr.B.C.Law (Lahore 1925)।

१४. **दाम०**–दानवीर माणिकचन्द, ब्र.शीतलप्रसाद (सूरत)।

१५. **दिजैडा०**– दिगम्बर जैन डायरेक्टरी (श्री खेमराज कृष्णदास बम्बई, १९१४)।

१६. **दिमु०** –दिगम्बर मुद्रा की सर्वमान्यता, के.भुजबलि शास्त्री (आरा, २४५६)।

१७. **दिमुनि०** –दिगम्बर मुनि, ले.बा.कामताप्रसाद जैन (दिल्ली, १९३१ ई.)।

१८. **दीघ०**– दीघनिकाय (बौद्ध ग्रंथ)–(Pali Texts Society Series)।

१९. **देजै०**–देवगढ़ के जैन मंदिर, ले. श्री विश्वम्भरदास गार्गीय।

२०. **प्राजैलेसं०**–प्राचीन जैन लेख संग्रह, लेख. बा.कामताप्रसाद जैन (वर्धा १९२६)।

२१. **पंत०**–पंचतंत्र (इण्डियन प्रेस लि. प्रयाग)।

२२. **फाह्यान**–फाह्यान का भारत भ्रमण (इण्डियन प्रेस लि. प्रयाग)।

२३. **बवि०** –बनारसी विलास, कविवर बनारसीदास कृत (बम्बई, २४३२ वी.नि.सं.)।

२४. **बंप्राजैस्मा०**–बम्बई प्रान्त के जैन स्मारक, ब्र. शीतलप्रसाद कृत (सूरत १९२५)।

२५. **बंबिओजैस्मा०**–बंगाल बिहार ओड़ीसा के जैन स्मारक, ब्र. शीतलप्रसाद जी कृत।

२६. **भद्र०**–भद्रबाहुचरित, श्री उदयलाल जी, (बनारस, २४३७ वी.)।

२७. **भपा०**–भगवान पार्श्वनाथ, ले.बा. कामताप्रसाद जैन (सूरत, २४५०)।

२८. **भम०**–भगवान महावीर, ले.बा.कामताप्रसाद जैन (सूरत २४५५)।

२९. **भमबु०**–भगवान महावीर **और** **म.** बुद्ध, ले.बा. कामताप्रसाद जैन (सूरत, २४५३)।

३०. **भमी०**–भट्टारक मीमांसा (गुजराती) (सूरत, २४३८)।

३१. **भाइ०**–भारतवर्ष का इतिहास, प्रो. ईश्वरीप्रसाद कृत (इण्डियन प्रेस)।

३२. **भाप्रारा०**–भारतवर्ष के प्राचीन राजवंश, सा. श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ कृत भाग १–३ (बम्बई, १९२० व १९२५)।

३३. **मजैई०**–मराठी जैन लोंकाचे इतिहास, श्री अनन्ततनय कृत (बेलगांव, १९१८ ई.)।

३४. **मज्झिम०** –मज्झिमनिकाय (बौद्ध ग्रंथ), (Pali Texts Society Series)।

३५. **मप्राजैस्मा०**–मध्यप्रांतीय जैन स्मारक, ब्र. शीतलप्रसाद जी कृत (सूरत)।

३६. **मजैस्मा०**–मद्रास मैसूर प्रान्तीय जैन स्मारक, ब्र. शीतलप्रसाद जी कृत (सूरत, २४५४)।

३७. **मूला०**–मूलाचार, श्री वट्टकेरस्वामी कृत

३८. **रश्रा०**–रत्नकरण्डक श्रावकाचार, सं. श्री जुगलकिशोर मुख्तार (मा.ग्र., बम्बई, १९८२)।

३९. **राइ०**–राजपूताने का इतिहास, रा.ब. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (अजमेर, १९८२)।

४०. **लाटी०**–लाटीसंहिता, श्री पं. दरबारीलाल द्वारा संपादित (मा.ग्र.बम्बई, १९८४)।

४१. **विर०** –विद्वद्रत्नमाला, श्री नाथूराम प्रेमी कृत (बम्बई १९१२ ई.)।

४२. **विको०** –विश्वकोष, सं. श्री नगेन्द्रनाथ बसु (कलकत्ता)।

४३. **वृजैश०**–वृहत् जैन शब्दार्णव भा. १, ले. श्री बा.बिहारीलाल जी [illegible] (बाराबंकी, १९२५ ई.)।

४४. **वेजै०**– वेद पुराणादि ग्रंथो में जैनधर्म का अस्तित्व, श्री मक्खनलाल कृत (दिल्ली, १९३०)।

४५. **सजै०**–सनातन जैन धर्म, श्री चम्पतराय कृत।

४६. **सागार०**–सागार धर्मामृत, सं. श्री लालाराम जी (सूरत, २४४२)।

४७. **संप्राजैस्मा०**–संयुक्तप्रान्तीय जैन स्मारक, श्री ब्र. शीतलप्रसाद जी कृत (प्रयाग, १९२३)।

४८. **सूस०**–सूरीश्वर और सम्राट, ले.श्री कृष्णलाल (आगरा, १९८०)।

४९. **श्रुता०**–श्रुतावतार कथा, श्री इन्द्रनन्दि कृत (बम्बई, २४३४ वीर नि. सं.।

५०. **हुभा०**–हुयेनसांग का भारतभ्रमण, श्री ठाकुरप्रसाद शर्मा (इण्डियन प्रेस, प्रयाग, १९२९ ई.)।

पत्र–पत्रिकायें

५१. **अ०**– अनेकान्त–मासिक पत्र, संपादक श्री जुगलकिशोर मुख्तार (दिल्ली)।

५२. **जैमि०** –जैनमित्र, बम्बई प्रा.दि.जैन सभा का मुखपत्र (सूरत)।

५३. **जैसासं०**–जैन साहित्य संशोधक, त्रैमासिक पत्र, सं. श्री जिनविजय (पूना)।

५४. **जैसिभा०** –जैन सिद्धान्त भास्कर, सं. श्री पद्मराज जैन।

५५. **जैहि०** –जैन हितैषी, सं. श्री नाथूराम–श्री जुगलकिशोर जी (बम्बई)।

५६. **दिजै०** –दिगम्बर जैन, सं. श्री मूलचन्द किसनदास कापड़िया (सूरत)।

५७. **पुरातत्व**–गुजराती त्रैमासिक पत्र, सं. श्री जिनविजयजी (अहमदाबाद)।

५८. **वीर०**–भा.दि. जैन परिषद् का मुखपत्र, सं. बा. कामता प्रसाद जैन व पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल (बिजनौर)।

अंग्रेजी भाषा के ग्रन्थ

59. **ADJB** = 'A Dictionary of Jain Bibliography' by V.S. Tank.(Arrah, 1916).

60. **AGT** = 'A Guide to Taxilla'– by Sir John Marshall (Calcutta, 1918).

61. **AI** = 'Ancient India' by J.W.Mc. Crindle (1877 & 1901).

62. **AISJ** ='An Indian Sect of the Jainas' by Prof. Buhler (London, 1903).

63. **AIT** = 'Ancient Indian Tribes' by Dr. B.C.Law (Lahore, 1926).

64. **AR** = 'Asiatic Researches', ed. Sir William Jones., Vol. III (1799) & Vol. IX (1809).

65. **ASM** = 'A Study of the Mahavastu' by Dr.B.C. Law (Calcutta, 1930).

66. **Bernier** ='Travels in the Mogul Empire' by Dr.Francis Bernier (Oxford, 1914).

67. **BS** = 'Buddhistic Studies' by Dr.B.C.Law (Calcutta, 1931).

68. **CHI** = 'Cambridge History of India' Vol. I, ed. Prof. E.J.Rapson, 1922.

69. DJ ='Der Jainismus' (German) by Prof. Dr. Helmuth Von Glassenapp, Ph.D.Berlin, 1925.

70. EB = 'Encyclopaedia Britabica' 11th ed. Vol. XV).

71. EHI = 'Early History of India' 4th, ed; by Sir Vincient Smith (Oxford, 1924).

72. Elliot = 'History of India as told by its Historians' by Sir H.M. Elliot & Prof. John Dowson. Vol. 1 (1867) & III (London, 1871).

73. HARI = 'History of Aryan Rule in India', by E.B.Havell.

74. HDW = 'Hindu Dramatic Works' by H.H. Wilson (Calcutta, 1901).

75. HG = 'Historical Gleanings' by Dr. B.C. Law (Calcutta, 1922).

76. HKL = 'History of Kanarese Literature', by E. P. Ria (Calcutta, 1921).

77. IA = Indian Antiquary (Bombay).

78. IHQ = 'Indian Historical Quarterly' ed. Dr. N.N.Law (Calcutta).

79. JBORS. = 'Journal of Bihar & Orissa Research society' ed. K.P. Jayaswal M.A.(Patna).

80. JG = 'Jaina Gazette', ed. Mr.C.S. Mallinath (Madras).

81. JOAM = 'Jaina & other Antiquities of Mathura' by Sir V. Smith.

82. JRAS = 'Journal of the Royal Asiatic Society' (London).

83. JS. = 'Jaina Sutras' ed. Prof. H.Jacobi (S.B.E., XLV).

84. KK = Key of Knowledge, by Mr. C.R.Jain (3rd ed. 1928).

85. LWB = 'Life & Work of Buddhaghosha' by Dr. B.C.Law (Calcutta).

86. NJ = 'Nudity of the Jaina Saints' by Mr. C.R.Jain (Delhi, 1931).

87. OII = 'Original Inhabitants of India' by G.Oppert (Madras, 1893).

88. Oxford = 'Oxford History of India' by Sir Vincent A.Smith (Oxford. 1917).

89. PB = 'Psalms of Brethren', ed. Mrs. Rhys Davids (London, 1913).

90. PS = 'Panchastikaya-sara (S.B.J., Arrah) ed. Prof. A.Chakraverty.

91. QJMS = 'Quarterly Journal of the Mythic society' (Bangalore).

92. QKM ='Questions of King Milinda' by T.W.Rhy Davids (S.BE., VOL XXXV)

93. Rishabh = 'Rishabhadeo, the Founder of Jainism' by Mr. C.R. Jain (Allahabad, 1929).

94. SAI = 'Ancient India' by Prof. S.K. Aiyangar. M.A.(London 1911).

95. S.C. = 'Some Contributions of South Indian Culture' by Prof. S.K. Aiyangar (1923).

96. SPCIV = 'Survival of the Prehistoric Civilisation of the Indus Valley' by R.B.Ramprasad Chanda B.A. (Calcutta, 1929).

97. SSIJ = 'Studies in South Indian Jainism' by Prof. M.S. Ramaswami Ayyangar M.A. & B. Seshagiri Rao M.A.(Madras, 1922).

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि

[१]

दिगम्बरत्व

(मनुष्य की आदर्श स्थिति)

●

"मनुष्य मात्र की आदर्श स्थिति दिगम्बर ही है। आदर्श मनुष्य सर्वथा निर्दोष होता है-विकारशून्य होता है।" -महात्मा गाँधी

"प्रकृति की पुकार पर जो लोग ध्यान नहीं देते, उन्हें तरह-तरह के रोग और दुःख घेर लेते हैं, परन्तु पवित्र प्राकृतिक जीवन बिताने वाले जंगल के प्राणी रोगमुक्त रहते हैं और मनुष्य के दुर्गुणों और पापाचारों से बचे रहते हैं।" -रिटर्न टु नेचर

●

दिगम्बरत्व प्रकृति का रूप है। वह प्रकृति का दिया हुआ मनुष्य का वेष है। आदम और हव्वा इसी रूप में रहे थे। दिशायें ही उनके अम्बर थे-वस्त्रविन्यास उनका वही प्रकृतिदत्त नग्नत्व था। वह प्रकृति के अंचल में सुख की नींद सोते और आनन्द रेलियाँ करते थे। इसलिये कहते हैं कि मनुष्य की आदर्श स्थिति दिगम्बर है। नग्न रहना ही उनके लिये श्रेष्ठ है। इसमें उसके लिये अशिष्टता और असभ्यता की कोई बात नहीं है, क्योंकि दिगम्बरत्व अथवा नग्नत्व स्वयं अशिष्ट अथवा असत्य वस्तु नहीं है। वह तो मनुष्य का प्राकृत रूप है। ईसाई मतानुसार आदम और हव्वा नंगे रहते हुए कभी न लजाये और न वे विकार के चंगुल में फंसकर अपने सदाचार से हाथ धो बैठे। किन्तु जब उन्होंने बुराई-भलाई, पाप-पुण्य का वर्जित फल खा लिया तो वे अपनी प्राकृत दशा को खो बैठे और उनकी सरलता जाती रही। वे संसार के साधारण प्राणी हो गये। बच्चे को लीजिये, उसे कभी भी अपने नग्नत्व के कारण लज्जा का अनुभव नहीं होता और न उसके माता-पिता अथवा अन्य लोग ही उसकी नग्नता पर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। अशक्त रोगी की परिचर्या स्त्री या धाय

करती है- वह रोगी अपने कपड़ों की सार-संभाल स्वयं नहीं कर पाता, किन्तु स्त्री या धाय रोगी की सब सेवा करते हुए जरा भी अशिष्टता अथवा लज्जा का अनुभव नहीं करती। यह कुछ उदाहरण हैं जो इस बात को स्पष्ट करते हैं कि नग्नत्व वस्तुतः कोई बुरी चीज नहीं है। प्रकृति भला कभी किसी जमाने में बुरी हुई भी है? तो फिर मनुष्य नंगेपन से क्यों झिझकता है? क्यों आज लोग नंगा रहना सामाजिक मर्यादा के लिये अशिष्ट और घातक समझते हैं? इन प्रश्नों का एक सीधा सा उत्तर है-"आज मनुष्य का नैतिक पतन चरम सीमा को पहुँच चुका है, वह पाप में इतना सना हुआ है कि उसे मनुष्य की आदर्श-स्थिति दिगम्बरत्व पर घृणा आती है। अपनेपन को गँवाकर पाप के पर्दे में कपड़ों की आड़ लेना ही उसने श्रेष्ठ समझा है।" किन्तु वह भूलता है, पर्दा पाप की जड़ है-वह गंदगी का ढेर है। बस, जो जरा सी समझ या विवेक से काम लेना जानता है, वह गंदगी को नहीं अपना सकता और न ही अपनी आदर्श स्थिति दिगम्बरत्व से चिढ़ सकता है।

वस्त्रों का परिधान मनुष्य के लिए लाभदायक नहीं है और न वह आवश्यक ही है। प्रकृति ने प्राणीमात्र के शरीर का गठन इस प्रकार किया है कि यदि वह प्राकृत वेश में रहे तो उसका स्वास्थ्य नीरोग और श्रेष्ठ हो तथा उसका सदाचार भी उत्कृष्ट रहे। जिन विद्वानों ने उन भील आदिकों को अध्ययन की दृष्टि से देखा है, जो नंगे रहते हैं, वे इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि उन प्राकृत वेष में रहने वाले 'जंगली' लोगों का स्वास्थ्य शहरों में बसने वाले सभ्यताभिमानी 'लोगों' से कहीं अच्छा होता है, और आचार-विचार में भी वे शहरवालों से बढ़े-चढ़े होते हैं। इस कारण वे एक वस्त्र परिधान की प्रधानता युक्त सभ्यता को उच्चकोटि पर पहुँचते स्वीकार नहीं करते।[१] उनका यह कथन है भी ठीक, क्योंकि प्रकृति की होड़ कृत्रिमता नहीं कर सकती। महात्मा गाँधी के निम्न शब्द भी इस विषय में दृष्टव्य हैं-

"वास्तव में देखा जाय तो कुदरत ने चर्म के रूप में मनुष्य को योग्य पोशाक पहनाई है। नग्न शरीर कुरूप दिखाई पड़ता है, ऐसा मानना हमारा भ्रम मात्र है। उत्तम-उत्तम सौन्दर्य के चित्र तो नग्न दशा में ही दिखाई पड़ते हैं। पोशाक से साधारण अंगों को ढककर हम मानों कुदरत के दोषों को दिखला रहे हैं। जैसे-जैसे हमारे पास ज्यादा पैसे होते जाते हैं, वैसे ही वैसे हम सजावट बढ़ाते जाते हैं। कोई किसी भाँति और कोई किसी भाँति रूपवान बनना चाहते हैं और बन-ठन कर काँच

---

१. "Having given some study to the subject, I may say that Rev. J.F. Wilkinson's remarks upon the superior morality of the races that do not wear clothes is fully borne out by the testimony of the travellers...It is true that wearing of clothes goes with a higher state of the arts and to that extent with civilisation: but it is on the other hand attended by a lower state of health and morality so that no clothed civilisation can expect to attain to a high rank." — "Daily News, London" of 18th April, 1913.

में मुँह देख प्रसन्न होते हैं कि 'वाह! मैं कैसा खूबसूरत हूं! बहुत दिनों के ऐसे ही अभ्यास से अगर हमारी दृष्टि खराब न हो गई हो तो हम तुरन्त देख सकेंगे कि मनुष्य का उत्तम से उत्तम रूप उसकी नग्नावस्था में ही है और उसी में उसका आरोग्य है।"[१]

इस प्रकार सौन्दर्य और स्वास्थ्य के लिए दिगम्बरत्व अथवा नग्नत्व एक मूल्यमयी वस्तु है, किन्तु उसका वास्तविक मूल्य तो मानव-समाज में सदाचार की सृष्टि करने में है। नग्नता और सदाचार का अविनाभावी सम्बन्ध है। सदाचार के बिना नग्नता कौड़ी मोल की नहीं है। नंगा मन और नंगा तन ही मनुष्य की आदर्श स्थिति है। इसके विपरीत गन्दा मन और नंगा तन तो निरी पशुता है। उसे कौन बुद्धिमान स्वीकार करेगा?

लोगों का ख्याल है कि कपड़े-लत्ते पहनने से मनुष्य शिष्ट और सदाचारी रहता है। किन्तु बात वास्तव में इसके बरअक्स (विपरीत) है। कपड़े-लत्ते के सहारे तो मनुष्य अपने पाप और विकार को छुपा लेता है। दुर्गुणों और दुराचार का आगार बना रहकर भी वह कपड़े की ओट में पाखण्ड रूप बना सकता है, किन्तु दिगम्बर वेष में यह असम्भव है। श्री शुक्राचार्य जी के कथानक से यह बिल्कुल स्पष्ट है-**शुक्राचार्य युवा थे, पर दिगम्बर वेष में रहते थे। एक रोज वह वहाँ से जा निकले जहाँ तालाब में कई देव-कन्यायें नंगी होकर जल-क्रीड़ा कर रही थीं। उनके नंगे तन ने देव-रमणियों में कुछ भी क्षोभ उत्पन्न न किया। वे जैसी की तैसी नहाती रहीं और शुक्राचार्य निकले अपनी धुन में चले गये। इस घटना के थोड़ी देर बाद शुक्राचार्य के पिता वहाँ आ निकले। उनको देखते ही देव-कन्यायें नहाना-धोना भूल गईं। वे झटपट जल के बाहर निकलीं और उन्होंने अपने वस्त्र पहन लिये। एक नंगे युवा को देखकर तो उन्हें ग्लानि और लज्जा न आई किन्तु एक वृद्ध शिष्ट से दिखते 'सज्जन' को देखकर वे लजा गईं।** भला इसका क्या कारण? यही न कि नंगा युवा अपने मन में भी नंगा था। उसे विकार ने नहीं आ घेरा था। इसके विपरीत उसका वृद्ध और शिष्ट पिता विकार से रहित न था। वह अपने शिष्ट वेष (?) में इस विकार को छिपाये रखने में सफल था। किन्तु दिगम्बर युवा के लिए वैसा करना असंभव था। इसी कारण वह निर्विकारी और सदाचारी था। अतः कहना होगा कि सदाचार की मात्रा नंगे रहने में अधिक है। **नंगापन दिगम्बरत्व का आभूषण है।** विकार-भाव को जीते बिना ही कोई नंगा रहकर प्रशंसा नहीं पा सकता। विकारी होना दिगम्बरत्व के लिए कलंक है, न वह सुखी हो सकता है और न उसे विवेक-नेत्र मिल सकता है। इसीलिये **भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य** कहते हैं-

णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसारसागरे भमई।
णग्गो ण लहई बोहिं, जिणभावणवज्जिओ सुदूरं।।[२]

---

१. आरोग्य, पृ. ५७

२. भाव पाहुड़ ६८ गाथा-अष्ट., पृ. २०९-२१०।

भावार्थ– नंगा दुःख पाता है, वह संसार–सागर में भ्रमण करता है, उसे बोधि, विज्ञान दृष्टि प्राप्त नहीं होती, क्योंकि नंगा होते हुए भी वह जिन–भावना से दूर है। इसका मतलब यही है कि जिन–भावना से युक्त नग्नता ही पूज्य है–उपयोगी है और जिन–भावना से मतलब रागद्वेषादि विकार भावों को जीत लेना है। इस प्रकार नगा रहना उसी के लिए उपादेय है जो रागद्वेषादि विकार–भावों को जीतने में लग गया है–प्रकृति का होकर प्राकृत वेष में रह रहा है। संसार के पाप–पुण्य, बुराई–भलाई का जिसे भान तक नहीं है, वही दिगम्बरत्व धारण करने का अधिकारी है और चूंकि सर्वसाधारण गृहस्थों के लिये इस परमोच्च स्थिति को प्राप्त कर लेना सुगम नहीं है, इसलिये भारतीय ऋषियों ने इसका विधान गृहत्यागी अरण्यवासी साधुओं के लिये किया है। दिगम्बर मुनि ही दिगम्बरत्व को धारण करने के अधिकारी हैं, यद्यपि यह बात जरूर है कि दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति होने के कारण मानव–समाज के पथ–प्रदर्शक **श्री भगवान ऋषभदेव** ने गृहस्थों के लिये भी पहिले के पर्व दिनों में नंगे रहने की आवश्यकता का निर्देश किया था[1] और भारतीय गृहस्थ उनके इस उपदेश का पालन एक बड़े जमाने तक करते थे।

इस प्रकार उक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि **दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति है–आरोग्य और सदाचार का वह पोषक ही नहीं जनक है।** किन्तु आज का संसार इतना पाप ताप से झुलस गया है कि उस पर एकदम दिगम्बर वारि (जल) डाला नहीं जा सकता। जिन्हें विज्ञान–दृष्टि नसीब हो जाती है, वही अभ्यास करके एक दिन निर्विकारी दिगम्बर मुनि के वेष में विचरते हुए दिखाई पड़ते हैं। उनको देखकर लोगों के मस्तक स्वयं झुक जाते हैं। वे प्रज्ञा–पुञ्ज और तपोधन लोक–कल्याण में निरत रहते हैं। स्त्री–पुरुष, बालक–वृद्ध, अंध–नाथ, पशु–पक्षी सब ही प्राणी उनके दिव्य रूप में सुख–शान्ति का अनुभव करते हैं। भला प्रकृति प्यारी क्यों न हो? दिगम्बरत्व साधु प्रकृति के अनुरूप हैं। उनका किसी से द्वेष नहीं, वे तो सबके हैं, और सब उनके हैं, **वे सर्वप्रिय और सदाचार की मूर्ति होते हैं।**

यदि कोई दिगम्बर होकर भी इस प्रकार जिन–भावना से युक्त नहीं है तो जैनाचार्य कहते हैं कि उनका नग्न वेष धारण करना निरर्थक है–परमोद्देश्य से वह भटका हुआ है। इस लोक और परलोक, दोनों ही उसके नष्ट हैं।[2] बस, दिगम्बरत्व वहीं शोभनीय है, जहाँ परमोद्देश्य दृष्टि से ओझल नहीं किया गया है। तब ही तो वह मनुष्य की आदर्श स्थिति है।

---

१. सागार; अ. ७ श्लोक ७ व भमबु. पृ. २०५–२०७।

२. निरट्ठिया नग्गरूई उ तस्स, जे उत्तमट्ठं विवज्जासमेइ।
इमे विसे नत्थि परे विलोए, दुहओ विसे झिज्जइ तत्थ लोए। ४९।"

–उत्तराध्ययन सूत्र व्या. २०

"In vain he adopts nakedness, who errs about matters of paramount interest, neither this world nor the next will be his. He is a loser in both respects in the world."

–Js.II P. 106

[२]

धर्म और दिगम्बरत्व

णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे॥१०॥[1]

अर्थात्—अच्चेलक—नग्नरूप और हाथों को भोजनपात्र बनाने का उपदेश जिनेन्द्र ने दिया है। यही एक मोक्ष—धर्म मार्ग है। इसके अतिरिक्त शेष सब अमार्ग हैं।

'**धम्मो वत्थु सहावो**' — धर्म वस्तु का स्वभाव है और दिगम्बरत्व मनुष्य का निजरूप है, उसका प्राकृत स्वभाव है। इस दृष्टि से मनुष्य के लिये दिगम्बरत्व परमोपादेय धर्म है। धर्म और दिगम्बरत्व में यहां कुछ भेद ही नहीं रहता। सम्यक् सदाचार के आधार पर टिका हुआ दिगम्बरत्व धर्म के सिवा और कुछ हो भी क्या सकता है?

जीवात्मा अपने धर्म को गमाये हुये है। लौकिक दृष्टि से देखिये या आध्यात्मिक से, जीवात्मा भवभ्रमण के चक्कर में पड़कर अपने स्वभाव से हाथ धोये बैठा है। लोक में वह नंगा आया है फिर भी समाज—मर्यादा के कृत्रिम भय के कारण वह अपने रूप (नग्नत्व) को खुशी—खुशी छोड़ बैठता है। इसी तरह जीवात्मा स्वभाव में सच्चिदानन्द रूप होते हुये भी संसार की माया—ममता में पड़कर उस स्वानुभवानन्द से वंचित है। इसका मुख्य कारण जीवात्मा की राग—द्वेष जनित परिणति है। राग—द्वेषमयी भावों से प्रेरित होकर वह अपने मन, वचन और काय की क्रिया तद्वत् करता है। इसका परिणाम यह होता है कि उस जीवात्मा में लोक में भरी हुई पौद्गलिक कर्म—वर्गणायें आकर चिपट जाती हैं और उनका आवरण जीवात्मा के ज्ञान—दर्शन आदि गुणों को प्रकट नहीं होने देता। जितने अंशों में ये आवरण कम या ज्यादा होते हैं उतने ही अंशों में आत्मा के स्वाभाविक गुणों का कम या ज्यादा प्रकाश प्रकट होता है। यदि जीवात्मा अपने स्वभाव को पाना चाहता है तो उसे इन सब ही कर्म सम्बन्धी आवरणों को नष्ट कर देना होगा, जिनका नष्ट कर देना असम्भव है।

इस प्रकार जीवात्मा के धर्म—स्वभाव के घातक उसके पौद्गलिक सम्बन्ध हैं। जीवात्मा को आत्म—स्वातंत्र्य प्राप्त करने के लिए इस पर—सम्बन्ध को बिल्कुल छोड़ देना होगा। पार्थिव संसर्ग से उसे अछूता ही रहना होगा। लोक और आत्मा दोनों ही क्षेत्रों में वह एकमात्र अपने उद्देश्य—प्राप्ति के लिये सतत उद्योगी रहेगा। बाहरी और भीतरी सब ही प्रपंचों से उसका कोई सरोकार न होगा। परिग्रह नाममात्र को वह न रख सकेगा। यथाजातरूप में रहकर वह अपने विभावमयी रागादि कषाय शत्रुओं को

---

१. अष्ट., सूत्रपाहुड – १०

नष्ट करने पर तुल पड़ेगा। ज्ञान और ध्यान रूपी शस्त्र लेकर वह कर्म-सम्बन्धों को बिल्कुल नष्ट कर देगा और तब वह अपने स्वरूप को पा लेगा। किन्तु यदि वह सत्य-मार्ग से जरा भी विचलित हुआ और बाल बराबर परिग्रह के मोह में जा पड़ा तो उसका कहीं ठिकाना नहीं।

इसीलिये कहा गया है कि-

बालग्गकोडिमत्तं परिग्गहगहणं ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि ।।१७।।[1]

भावार्थ-बाल के अग्रभाग (नोंक) के बराबर भी परिग्रह का ग्रहण साधु के नहीं होता है। वह आहार के लिये भी कोई बर्तन नहीं रखता-हाथ ही उसके भोजनपात्र हैं और भोजन भी वह दूसरे का दिया हुआ, एक स्थान पर और एक बार ही ऐसा ग्रहण करता है जो प्रासुक है-स्वयं उसके लिये न बनाया गया हो।

अब भला कहिये, जब भोजन से भी कोई ममता न रखी गई-दूसरे शब्दों में, जब शरीर से ही ममत्व हटा लिया गया तब अन्य परिग्रह दिगम्बर साधु कैसे रखेगा? उसे रखना भी नहीं चाहिये, क्योंकि उसे तो प्रकृतिरूप आत्म-स्वातंत्र्य प्राप्त करना है, जो संसार के पार्थिव पदार्थो से सर्वथा भिन्न है। इस अवस्था में वह वस्त्रों का परिधान भी कैसे रखेगा? वस्त्र तो उसके मुक्ति-मार्ग में अर्गला बन जायेंगे। फिर वह कभी भी कर्म-बन्धन से मुक्त न हो पायेगा। इसीलिये तत्वज्ञाओं ने साधुओं के लिये कहा है कि-

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्तेसु।
जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं ।।१८।।[2]

अर्थात्-मुनि यथाजातरूप है-जैसा जन्मता बालक नग्नरूप होता है वैसा नग्नरूप दिगम्बर मुद्रा का धारक है-वह अपने हाथ में तिल-तुष मात्र भी कुछ ग्रहण नहीं करता। यदि कुछ भी ग्रहण कर ले तो वह निगोद में जाता है।

परिग्रहधारी के लिये आत्मोन्नति की पराकाष्ठा पा लेना असंभव है। एक लंगोटीवत् के परिग्रह के मोह से साधु किस प्रकार पतित हो सकता है, यह धर्मात्मा सज्जनों की जानी-सुनी बात है। प्रकृति तो कृत्रिमता की सर्वाहुति चाहती है, तब ही वह प्रसन्न होकर अपने पूरे सौन्दर्य को विकसित करती है। चाहे पैगम्बर हो या तीर्थंकर ही क्यों न हो, यदि वह गृहस्थाश्रम में रह रहा है, समाज-मर्यादा के आत्मविमुख बन्धन में पड़ा हुआ है तो वह भी अपने आत्मा के प्रकृत रूप को नहीं पा सकता। इसका एक कारण है। वह यह कि धर्म एक विज्ञान है। उसके नियम प्रकृति के अनुरूप अटल और निश्चल हैं। उनसे कहीं किसी जमाने में भी किसी कारण से

---

१. अष्ट., सूत्रपाहुड - १७

२. वही - १८

रंचमात्र अन्तर नहीं पड़ सकता है। धर्म विज्ञान कहता है कि आत्मा स्वाधीन और सुखी तब ही हो सकता है जब वह पर–सम्बन्ध पुद्गल के संसर्ग से मुक्त हो जावे। अब इस नियम के होते हुये भी पार्थिव वस्त्र–परिधान को रखकर कोई यह चाहे कि मुझे आत्म–स्वातंत्र्य मिल जाये तो उसकी यह चाह आकाश कुसुम को पाने की आशा से बढ़कर न कही जायगी ? इसी कारण जैनाचार्य पहले ही सावधान करते हैं कि–

णवि सिज्झइ वत्थधारो जिणसासणे जइ वि होई तित्थयरो।
णग्गो विमोखमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे।।२३।।[1]

भावार्थ– जिन–शासन में कहा गया है कि वस्त्रधारी मनुष्य मुक्ति नहीं पा सकता है, जो तीर्थंकर होते तो वह भी गृहस्थ दशा में मुक्ति को नहीं पाते हैं–मुनि दीक्षा लेकर जब दिगम्बर वेष धारण करते हैं तब ही मोक्ष पाते हैं। अतः नग्नतत्व ही मोक्षमार्ग है–बाकी सब लिंग उन्मार्ग हैं।

धर्म के इस वैज्ञानिक नियम के कायल संसार के प्रायः सब ही प्रमुख प्रवर्तक रहे हैं, जैसा कि आगे के पृष्ठों में व्यक्त किया गया है और उनका इस नियम–दिगम्बरत्व–को मान्यता देना ठीक भी है, क्योंकि दिगम्बरत्व के बिना धर्म का मूल्य कुछ भी शेष नहीं रहता–वह धर्म स्वभाव रह ही नहीं पाता है। इस प्रकार धर्म और दिगम्बरत्व का सम्बन्ध स्पष्ट है।

---

१. अष्ट., सूत्रपाहुड–२३

दिगम्बरत्व के आदि प्रचारक ऋषभदेव

भुवनाम्भोजमार्तण्डं धर्मामृतपयोधरम् ।
योगिकल्पतरुं नौमि देवदेवं वृषभध्वजम् । —ज्ञानार्णव

दिगम्बरत्व प्रकृति का एक रूप है। इस कारण उसका आदि और अन्त कहा ही नहीं जा सकता। वह तो एक सनातन नियम है। किन्तु उस पर भी इस परिच्छेद के शीर्षक में **श्री ऋषभदेव जी** को दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक लिखा है। इसका एक कारण है। विवेकी सज्जन के निकट दिगम्बरत्व केवल नग्नता मात्र का द्योतक नहीं है, पूर्व परिच्छेदों को पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो गई है। वह रागादि विभाव भाव को जीतने वाला यथाजातरूप है और नग्नता के इस रूप का संस्कार कभी न कभी किसी महापुरुष द्वारा जरूर हुआ होगा। जैन शास्त्र कहते हैं कि इस कल्पकाल में धर्म के आदि प्रचारक श्री ऋषभदेव जी ने ही दिगम्बरत्व का सबसे पहले उपदेश दिया था।

यह ऋषभदेव अन्तिम **मनु नाभिराय** के सुपुत्र थे और वह एक अत्यन्त प्राचीन काल मे हुये थे, जिसका पता लगा लेना सुगम नहीं है। हिन्दू शास्त्रों में जैनों के इन पहले तीर्थंकर को ही विष्णु का आठवां अवतार माना गया है और वहां भी इन्हें दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक बताया गया है। जैनाचार्य उन्हें **योगिकल्पतरु** कहकर स्मरण करते हैं।

हिन्दुओं के श्रीमद्भागवत में इन्हीं ऋषभदेव का वर्णन है और उसमें उन्हें परमहंस दिगम्बर धर्म का प्रतिपादक लिखा है, यथा—

'एवमनुशास्यात्मजान् स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद् भगवानृषभो देव उपशमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं **पारमहंस्यधर्ममुपशिक्ष्यमाणः** स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणीपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरित **शरीरमात्र- परिग्रह** उन्मत्त इव **गगनपरिधानः** प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिता हवनीयो ब्रह्मावर्तात् प्रवव्राज ।।२९।।'

—भागवतस्कंध ५, अ. ५

अर्थात्—"इस भांति महायशस्वी और सबके सुहृद् ऋषभ भगवान् ने यद्यपि उनके पुत्र सब भांति से चतुर थे, परन्तु मनुष्यों को उपदेश देने हेतु, प्रशांत और कर्मबन्धन से रहित महामुनियों को भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के दिखाने वाले **परमहंस आश्रम की शिक्षा देने हेतु,** अपने सौ पुत्रों में ज्येष्ठ परम भागवत, हरिभक्तों के सेवक भरत को पृथ्वीपालन हेतु, राज्याभिषेक कर तत्काल ही संसार को

छोड़ दिया और आत्मा में होमाग्नि का आरोप कर केश खोल उन्मत्त की भांति नग्न हो, केवल शरीर को संग ले, ब्रह्मावर्त से संन्यास धारण कर चल निकले।"

इस उद्धरण के मोटे टाइप के अक्षरों से ऋषभदेव का परमहंस दिगम्बर धर्म शिक्षक होना स्पष्ट है।

तथा इसी ग्रंथ के स्कंध २, अध्याय ७, पृष्ठ ७६ में इन्हें **दिगम्बर और जैन मत को चलाने वाला** उसके टीकाकार ने लिखा है[१]। मूल श्लोक में उनके दिगम्बरत्व को ऋषियों द्वारा वंदनीय बताया है –

नाभेरसा वृषभ आससु देव सूनु–
र्योवैव चारसमदृग्जड़योगचर्याम्।
यत् पारमहंस्यमृषयः पदमामनंति
स्वस्थः प्रशांतकरणः परिमुक्तसंगः ॥१०॥

उधर हिन्दुओं के प्रसिद्ध योगशास्त्र "हठयोगप्रदीपिका" में सबसे पहले मंगलाचरण के तौर पर आदिनाथ ऋषभदेव की स्तुति की गई और वह इस प्रकार है–[२]

श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै,
येनोपदिष्टा हठयोगविद्या।
विभ्राजते प्रोन्नतराजयोग
मारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव ॥१॥

अर्थात्–"श्री आदिनाथ को नमस्कार हो, जिन्होंने उस हठयोग विद्या का सर्वप्रथम उपदेश दिया जो कि बहुत ऊँचे राजयोग पर आरोहण करने के लिये नसैनी के समान है।"

हठयोग का श्रेष्ठतम रूप दिगम्बर है। परमहंस मार्ग ही तो उत्कृष्ट योगमार्ग है। इसी से **'नारद परिव्राजकोपनिषद्'** में **'योगी परमहंसाख्यः साक्षान्मोक्षैकसाधनम्'** इस वाक्य द्वारा परमहंस योग को साक्षात् मोक्ष का एकमात्र साधन बतलाया है। सचमुच "अजैन शास्त्रों में जहाँ कहीं श्री ऋषभदेव आदिनाथ का वर्णन आया है, उनको परमहंस मार्ग का प्रवर्तक बतलाया गया है।[३]

किन्तु मध्यकालीन साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण अजैन विद्वानों को जैन धर्म से ऐसी चिढ़ हो गई कि उन्होंने अपने धर्म शास्त्रों में जैनों के महत्त्वसूचक वाक्यों का या तो लोप कर दिया अथवा उनका अर्थ ही बदल दिया।[४] उदाहरण के रूप में उपर्युक्त

---

१. जितेन्द्रमत दर्पण, प्रथम भाग, पृ. १०।
२. अनेकान्त, वर्ष १, पृ. ५३८।
३. अनेकान्त, वर्ष १, पृ. ५३९।
४. श्री टोडरमलजी द्वारा उल्लिखित हिन्दू शास्त्रों के अवतरणों का पता आजकल के छपे हुये ग्रंथों में नहीं चलता, किन्तु उन्हीं ग्रंथों की प्राचीन प्रतियों में उनका पता चलता है, यह बात पं. मक्खनलाल जी जैन अपने 'वेदपुराणादि ग्रंथों में जैन धर्म का अस्तित्व' नामक ट्रैक्ट (पृ. ४१–५०) में प्रकट करते हैं। प्रो. शरच्चन्द्र घोषाल एम.ए.काव्यतीर्थ आदि ने भी हिन्दू 'पद्मपुराण' के विषय में यही बात प्रकट की थी। (देखो J.G.XIV, 90)।

'हठयोग प्रदीपिका' के श्लोक में वर्णित आदिनाथ को उसके टीकाकार 'शिव'(महादेव जी) बताते हैं, किन्तु वास्तव में इसका अर्थ ऋषभदेव ही होना चाहिये, क्योंकि प्राचीन 'अमरकोषादि' किसी भी कोष ग्रंथ में महादेव का नाम 'आदिनाथ' नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्री ऋषभदेव के ही सम्बन्ध में यह वर्णन जैन और अजैन शास्त्रों में मिलता है, किसी अन्य प्राचीन मत प्रर्वतक के सम्बन्ध में नहीं- कि वह स्वयं दिगम्बर रहे थे और उन्होंने दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। उस पर 'परमहंसोपनिषद्' के निम्न वाक्य इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि परमहंस के स्थापक कोई जैनाचार्य थे-

"तदेतद्विज्ञाय ब्राह्मणः **पात्रं कमण्डलुं कटिसूत्रं कौपीनं च तत्सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरश्चरेदात्मानमन्विच्छेत्। यथाजातरूपधरो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहस्तत्वब्रह्ममार्गे** सम्यक् संपन्नः शुद्धमानसः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले पंचगृहेषु **करपात्रेणायाचिताहारमाहरन्** लाभालाभे समो भूत्वा निर्ममः **शुक्लध्यानपरायणोऽध्यात्मनिष्ठः** शुभाशुभकर्मनिर्मूलनपरः **परमहंसः** पूर्णानन्दैकबोधस्तद्ब्रह्मोऽहमस्मीति ब्रह्मप्रणवमनुस्मरन्-भ्रमरकीटकन्यायेन शरीरत्रयमुत्सृज्य देहत्यागं करोति स कृतकृत्यो भवतीत्युपनिषद्।"[1]

अर्थात-"ऐसा जानकर ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) पात्र, कमण्डलु, कटिसूत्र और लंगोटी इन सब चीजों को पानी में विसर्जन कर जन्म-समय के वेष को धारण कर अर्थात् बिल्कुल नग्न होकर विचरण करे और आत्मान्वेषण करे। जो यथाजातरूपधारी (नग्न-दिगम्बर), निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह, तत्वब्रह्ममार्ग में भली प्रकार सम्पन्न, शुद्ध हृदय, प्राणधारण के निमित्त यथोक्त समय पर अधिक से अधिक पांच घरों में विहार कर करपात्र में अयाचित भोजन लेने वाला तथा लाभालाभ में समचित्त होकर निर्ममत्व रहने वाला, **शुक्लध्यान परायण**, अध्यात्मनिष्ठ, शुभाशुभ कर्मो के निर्मूलन करने में तत्पर, परमहंस योगी, पूर्णानन्द का अद्वितीय अनुभव करने **वाला यह ब्रह्म मैं हूँ, ऐसे ब्रह्म प्रणव का स्मरण करता हुआ भ्रमरकीटक न्याय से** (कीड़ा भ्रमरी का ध्यान करता हुआ स्वयं भ्रमर बन जाता है, इस नीति से) तीनों शरीरों को छोड़कर देहत्याग करता है, वह कृतकृत्य होता है, ऐसा उपनिषदों में कहा गया है।"

१. अनेकान्त, वर्ष १ पृ. ५३९-५४०।

इस अवतरण का प्रायः सारा ही वर्णन दिगम्बर जैन मुनियों की चर्या के अनुसार है, किन्तु इसमें विशेष ध्यान देने योग्य विशेषण **शुक्लध्यानपरायणः**है, जो जैन-धर्म की एक खास चीज है। "जैन के सिवाय और किसी भी योग-ग्रन्थ में शुक्लध्यान का प्रतिपादन नहीं मिलता। पतंजलि ऋषि ने भी शुक्लध्यान आदि भेद नहीं बतलाये। इसलिए योग ग्रन्थों में आदि-योगाचार्य के रूप में जिन आदिनाथ का उल्लेख मिलता है वे जैनियों के आदि तीर्थंकर श्री आदिनाथ से भिन्न और कोई नहीं जान पड़ते।"[१]

अथर्ववेद के 'जाबालोपनिषद्' (सूत्र ६) में परमहंस संन्यासी का एक विशेषण **'निर्ग्रंथ'**[२] भी दिया है और यह हर कोई जानता है कि इस नाम से जैनी ही प्राचीनकाल से प्रसिद्ध हैं। बौद्धों के प्राचीन शास्त्र इस बात का खुला समर्थन करते हैं।[३] जैन धर्म के ही मान्य शब्द को उपनिषद्कार ने ग्रहण और प्रयुक्त करके यह अच्छी तरह दर्शा दिया है कि दिगम्बर साधुमार्ग का मूल स्तोत्र जैनधर्म है और उधर हिन्दू पुराण इस बात को स्पष्ट करते ही हैं कि ऋषभदेव, जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ने ही परमहंस दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि श्री ऋषभदेव-उपनिषद् ग्रंथों के रचे जाने के बहुत पहले हो चुके थे। वेदों में स्वयं उनका और १६ वें अवतार वामन का उल्लेख मिलता है।[४] अतः निस्संदेह भगवान् ऋषभदेव ही वह महापुरुष हैं जिन्होंने इस युग के प्रारम्भ में स्वयं दिगम्बर वेष धारण करके[५] सर्वज्ञता प्राप्त की थी[६] और सर्वज्ञ होकर दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। वही दिगम्बरत्व के आदि प्रचारक हैं।

---

१. अनेकान्त, वर्ष १, पृ. ५४१।
२. "यथाजातरूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहः" इत्यादि - दिमु., पृ. ८।
३. जैकोबी प्रभृति विद्वानों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है। (Js.Pt.II Intro.)
४. भपा. की प्रस्तावना तथा 'सजै' देखो।
५. "विष्णुपुराण" में भी श्री ऋषभदेव को दिगम्बर लिखा है।
["Rishabha Deva.....naked, went the way of the great road. (महाप्स्थानम्)
—Wilso's Vishnu Purana. Vol. II, [Book II. Ch.I.] pg. 103-104].
६. श्रीमद्भागवत में ऋषभदेव को 'स्वयं भगवान् और कैवल्यपति' बताया है।
(विको., भा. ३, पृ. ४४४)।

[४]

हिन्दू धर्म और दिगम्बरत्व

"संयासः षड्विधो भवति कुटिचक-बहुदक-हंस-परमहंस-तुरियातीत-अवधूतश्चेति।"
—संन्यासोपनिषद् १३

भगवान् ऋषभदेव जब दिगम्बर होकर वन में जा रमे, तो उनकी देखादेखी और भी बहुत से लोग नंगे होकर इधर–उधर घूमने लगे। दिगम्बरत्व के मूल तत्व को वे समझ न सके और अपने मनमाने ढंग से उदरपूर्ति करते हुये व साधु होने का दावा करने लगे। जैन शास्त्र कहते हैं कि इन्हीं संन्यासियों द्वारा सांख्य आदि जैनेतर सम्प्रदायों की सृष्टि हुई थी[१] और तीसरे परिच्छेद में स्वयं हिन्दू शास्त्रों के आधार से यह प्रकट किया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव द्वारा ही सर्वप्रथम दिगम्बरत्व रूप धर्म का प्रतिपादन हुआ था। इस अवस्था में हिन्दू ग्रंथों में भी दिगम्बरत्व का सम्माननीय वर्णन मिलना आवश्यक है।

यह बात जरूर है कि हिन्दू धर्म के वेद और प्राचीन तथा वृहत् उपनिषदों में साधु के दिगम्बरत्व का वर्णन प्रायः नहीं मिलता। किन्तु उनके छोटे–मोटे उपनिषदों एवं अन्य ग्रंथों में उसका खास ढ़ंग से प्रतिपादन किया गया मिलता है। भिक्षुक उपनिषद्,[२] सात्यानीय उपनिषद्[३], [illegible] उपनिषद्, परमहंस–परिव्राजक उपनिषद् आदि में यद्यपि संन्यासियों के चार भेद–(१) कुटिचक, (२) बहुदक, (३) हंस, (४) परमहंस – बताये गये हैं, परन्तु संन्यासोपनिषद् में उनको छः प्रकार का बताया गया है अर्थात् उपर्युक्त चार प्रकार के संन्यासियों के अतिरिक्त (१) तूरियातीत और (२) अवधूत प्रकार के संन्यासी और गिनाये हैं।[४] इन छहों में पहले तीन प्रकार के संन्यासी त्रिदण्ड धारण करने के कारण त्रिदण्डी कहलाते हैं और शिखा या जटा तथा वस्त्र कौपीन आदि धारण करते हैं।[५] परमहंस परिव्राजक, शिखा और

---

१. आदिपुराण, पर्व १८, श्लो. ६२ (Rishabh.p.112)

२. "अथ भिक्षुणां मोक्षार्थीनां कुटीचक–बहुदक–हंस–परमहंसाश्चेति चत्वारः।"

३. कुटिचको–बहुदकः–हंस–परमहंस–इत्येति परिव्राजकाः चतुर्विधा भवन्ति।

४. स संन्यासः षड्विधो भवति–कुटीचक–बहुदक–हंस–परमहंस तुरीयातीतावधूताश्चेति।

५. कुटीचकः शिखायज्ञोपवीती दण्डकमण्डलुधरः कौपीनशाटीकन्थाधरः पितृमातृ गुर्वाराधनपरः पिठरखनित्रशिक्यादिमात्रसाधनपरः एकत्रान्नादनपरः श्वेतोर्ध्वपुण्ड्र धारीत्रिदण्डः। बहूदकः शिखादिकन्थाधरस्त्रिपुण्ड्रधारी कुटीचकवत्सर्वसमो मधुकर–वृत्याष्टकवलाशी।हंसो जटाधारी त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रधारी असंक्लृप्तमाधूकरान्नाशी कौपीनखण्डतुण्डधारी।

यज्ञोपवीत जैसे द्विजचिह्न धारण नहीं करता और वह एक दण्ड ग्रहण करता तथा एक वस्त्र धारण है अथवा अपनी देह में भस्म रमा लेता है।[१]

हाँ तूरियातीत परिव्राजक बिल्कुल दिगम्बर होता है और वह संन्यास के नियमों का पालन करता है।[२] अन्तिम अवधूत पूर्ण दिगम्बर और निर्द्वन्द्व है– वह संन्यास नियमों की भी परवाह नहीं करता।[३] तूरियातीत अवस्था में पहुंचकर परमहंस परिव्राजक को दिगम्बर ही रहना पड़ता है किन्तु उसे दिगम्बर जैन मुनि की तरह केशलुंच नहीं करना होता–वह अपना सिर मुंडाता (मुण्ड) है और अवधूत पद तो तूरियातीत की मरण अवस्था है।[४] इस कारण इन दोनों भेदों का समावेश परमहंस भेद में ही गर्भित किन्हीं उपनिषदों में मान लिया गया है। इस प्रकार उपनिषदों के इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि एक समय हिन्दू धर्म में भी दिगम्बरत्व को विशेष आदर मिला था और वह साक्षात् मोक्ष का कारण माना गया था। उस पर कापालिक संप्रदाय में तो वह खूब ही प्रचलित रहा, किन्तु वहाँ वह अपनी धार्मिक पवित्रता खो बैठा, क्योंकि वहाँ वह भोग की वस्तु रहा। अस्तु,

यहाँ पर उपनिषदादि वैदिक साहित्य में जो भी उल्लेख दिगम्बर साधु के सम्बन्ध में मिलते हैं, उनको उपस्थित कर देना उचित है। देखिये "जाबालोपनिषद्" में लिखा है–

"तत्र परमहंसानामसंवर्तकारुणिश्वेतकेतुदुर्वास ऋभुनिदाघजडभरत–दत्तात्रेयरैवतकप्रभृतयोऽव्यक्तलिंगा अव्यक्ताचारा अनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरन्तस्त्रिदण्डं कमण्डलुं शिक्यं पात्रं जलपवित्रं शिखां यज्ञोपवीतं च इत्येतत्सर्वं भूः स्वाहेत्यप्सु परित्यज्यात्मानमन्विच्छेद् **यथाजातरूपधरो निर्ग्रंथो निष्परिग्रहस्तत्तद्ब्रह्ममार्गे** सम्यक्संपन्नः इत्यादि।"[५]

इसमें संवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु आदि को यथाजातरूपधर निर्ग्रंथ लिखा है अर्थात् इन्होंने दिगम्बर जैन मुनियों के सामान आचरण किया था।

'परमहंसोपनिषद्' में निम्न प्रकार उल्लेख है–

---

१. परमहंसः शिखायज्ञोपवीतरहितः पञ्चगृहेषु करपात्री एककौपीनधारी शाटीमेकामेकं वैणवं दण्डमेकशाटीधरो व भस्मोद्धलनपरः।

२. सर्वत्यागी तुरीयातीतो गोमुखवृत्त्यो फलाहारी अन्नाहारी चेद्गृहत्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बरः कुणपवच्छरीरवृत्तिकः।

३. अवधूतस्त्वनियमः पतिताभिशस्तवर्जनपूर्वकं सर्वं वर्णेष्वजगरवृत्त्याहारपरः स्वरूपानुसंधानपरः।

४. सर्वं विस्मृत्य तुरीयातीतावधूतवेषेणाद्वैतनिष्ठापरः प्रणवात्मकत्वेन देहत्यागं करोति यः सोऽवधूतः।

५. ईशाद्य०, पृ. १३१।

"इदमन्तरं ज्ञात्वा स परमहंस आकाशाम्बरो न नमस्कारो न स्वाहाकारो न निन्दा न स्तुतियादृच्छिको भवेत्स भिक्षुः।[1]

सचमुच दिगम्बर (परमहंस) भिक्षु को अपनी प्रशंसा–निन्दा अथवा आदर–अनादर से सरोकार ही क्या? आगे "नारदपरिव्राजकोपनिषत्" में भी देखिये–

यथाविधिश्चेज्जातरूपधरो भूत्वा....जातरूपधरश्चरेदात्मानमन्विच्छेद्यथा–जातरूपधरो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहस्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्यक् सम्पन्नः ८६–तृतीयोपदेशः।[2]

"तुरीयः परमो हंसः साक्षान्नारायणो यतिः। एकरात्रं वसेत् ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् ।।१४।। वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत् । ....मुनिः कौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः ।३२। .....जातरूपधरो भूत्वा....दिगम्बरः चतुर्थोपदेशः।"[3]

इन उल्लेखों में भी परिव्राजक को नग्न होने का तथा वर्षा ऋतु में एक स्थान में रहने का विधान है। "मुनि कौपीनवासा" आदि वाक्य में छहों प्रकार के सारे ही परिव्राजकों का मुनि 'शब्द' से ग्रहण कर लिया गया है इसलिये उनके सम्बन्ध में वर्णन कर दिया कि चाहे जिस प्रकार का मुनि अर्थात् प्रथम अवस्था का अथवा आगे की अवस्थाओं का। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मुनि वस्त्र भी पहिन सकता है और नग्न भी रह सकता है, जिससे कि नग्नता पर आपत्ति की जा सके। यह पहले ही परिव्राजकों के षड्भेदों में दिखाया जा चुका है कि उत्कृष्ट प्रकार के परिव्राजक नग्न ही रहते हैं और वह श्रेष्ठतम फल को भी पाते हैं, जैसे कि कहा है–

आतुरो जीवतिचेत्क्रमसंन्यासः कर्तव्यः।......आतुरकुटीचकयोर्भूलोक–भुवर्लोकौ। बहूदकस्य स्वर्गलोकः।

हंसस्य तपोलोकः। परमहंसस्य सत्यलोकः। तुरीयातीतावधूतयोः स्वस्मन्येव कैवल्यं स्वरूपानुसंधानेन भ्रमर–कीटन्यायवत् ।[4]

अर्थात्–"आतुर यानि संसारी मनुष्य का अन्तिम परिणाम (निष्ठा) भूलोक है, कुटीचक संन्यासी का भुवलोक, स्वर्गलोक हंस संन्यासी का अन्तिम परिणाम है, परमहंस के लिये वही सत्यलोक है और कैवल्य तुरीयातीत और अवधूत का परिणाम है।"

अब यदि इन संन्यासियों में वस्त्र–परिधान और दिगम्बरत्व का तात्त्विक भेद न होता तो उनके परिणाम में इतना गहरा अन्तर नहीं हो सकता। दिगम्बर मुनि ही वास्तविक योगी है और वही कैवल्य–पद का अधिकारी है। इसीलिये उसे 'साक्षात्

---

१. ईशाद्य०, पृ. १५०
२. ईशाद्य०, पृ. २६७–२६८
३. ईशाद्य०, पृ. २६८–२६९
४. ईशाद्य०, पृ. ४१५। संन्यासोपनिषत् ५९।

नारायण' कहा गया है। 'नारद परिव्राजकोपनिषद्' में आगे और भी उल्लेख निम्न प्रकार है–

"ब्रह्मचर्येण संन्यस्य संन्यासाज्जातरूपधरो वैराग्यसंन्यासी।"[१]

"तुरीयातीतो गोमुखः फलाहारी। अन्नाहारी चेद् गृहत्रये देहमात्रावशिष्टो दिगम्बरः कुणपवच्छरीरवृत्तिकः। अवधूतस्त्वनियमोऽभिशप्तपतितवर्जनपूर्वकं सर्ववर्णेष्वजगरवृत्त्याहारपरः स्वरूपानुसंधानपरः .... **परमहंसादित्रयाणां न कटिसूत्रं न कौपीनं न वस्त्रं न कमण्डलुर्न दण्डः सार्ववर्णैकभैक्षाटनपरत्वं** जातरूपधरत्वं विधिः...। सर्वं परित्यज्य तत्प्रसक्तं मनोदण्डं करपात्रं दिगम्बरं दृष्ट्वा परिव्रजेद्भिक्षुः ।।१।। ....अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्वा चरति यो मुनिः। न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित्।।१६।।.......... आशानिवृत्तो भूत्वा आशाम्बरधरो भूत्वा सर्वदा मनोवाक्कायकर्मभिः सर्वसंसारमुत्सृज्य प्रपञ्चावाङ् मुखः स्वरूपानुसन्धानेन भ्रमरकीटन्यायेन मुक्तो भवतीत्युपनिषद् ।। पञ्चमोपदेशः।"

दिगम्बरं परमहंसस्य एककौपीनं वा तुरीयातीतावधूतयोर्थाजातरूपधरत्वं हंस–परमहंसयोरजिनं न त्वन्येषाम् ....सप्तमोपदेशः।[२]

वैराग्य संन्यासी का भेद एक अन्य प्रकार से किया गया है। इस प्रकार से परिव्राजक संन्यासियों के चार भेद किये गए हैं– (१) वैराग्य संन्यासी, (२) ज्ञान संन्यासी, (३) ज्ञान वैराग्य संन्यासी और (४) कर्म संन्यासी। इनमें से ज्ञान वैराग्य संन्यासी को भी नग्न होना पड़ता है।[३]

"भिक्षुकोपनिषद्" में भी लिखा है–

अथ जातरूपधरा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः शुक्लध्यानपरायणा आत्मनिष्ठाः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले भैक्षमाचरन्तः शून्यागारदेवगृहतृणकूटवल्मीकवृक्षमूलकुलाल–शालाग्निहोत्र–शालानदी–पुलिनगिरिकन्दर–कुहर–कोटर–निर्झरस्थण्डिले तत्र ब्रह्ममार्गे सम्यक्संपन्नाः शुद्धमानसाः परमहंसाचरणेन संन्यासेन देहत्यागं कुर्वन्ति ते परमहंसा नामेत्युपनिषत्।[४]

'तुरीयातीतोपनिषद्' में उल्लेख इस प्रकार है–

"संन्यस्य दिगम्बरो भूत्वा विवर्णजीर्णवल्कलाजिनपरिग्रहमपि संत्यज्य तदूर्ध्वममन्त्रवदाचरन्क्षौराभ्यंगस्नानोर्ध्वपुण्ड्रादिकं विहाय लौकिकवैदिकमप्युपसंहृत्य

---

१. ईशाद्य., पृ. २७१।

२. ईशाद्य., पृ. २७२।

३. क्रमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञानवैराग्याभ्यां स्वरूपानुसंधानेन देहमात्राविशिष्टः संन्यस्य जातरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्यसंन्यासी।

– नारदपरिव्राजकोपनिषद् १ ।।५।। तथा संन्यासोपनिषद्।

४. ईशाद्य., पृ. ३६८।

सर्वत्र पुण्यापुण्यवर्जितो ज्ञानाज्ञानमपि विहाय शीतोष्णसुखदुःखमानावमानं निर्जित्य वासनात्रयपूर्वकं निन्दानिन्दागर्वमत्सरदम्भदर्पद्वेषकामक्रोधलोभमोह- हर्षामर्षासूयात्मसंरक्षणादिकं दग्ध्वा...इत्यादि।[१]

'संन्यासोपनिषद्' में और भी उल्लेख इस प्रकार है-

वैराग्य-संन्यासी, ज्ञान-संन्यासी, ज्ञान-वैराग्य-संन्यासी, कर्मसंन्यासीति चतुर्विध्यमुपागतः। तद्यथेति दृष्टानुश्रविकविषयवैतृष्ण्यमेत्य प्राक्पुण्यकर्मविशेषात्संन्यस्तः स वैराग्यसंन्यासी। (.....) क्रमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञानवैराग्याभ्यां स्वरूपानुसंधानेन देहमात्रावशिष्टः संन्यस्य जातरूपधरो भवति स ज्ञानवैराग्यसंन्यासी।[२]

'परमहंसपरिव्राजकोपनिषद्' में भी दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है-

"**शिखामुत्कृष्य यज्ञोपवीतं** छित्वा वस्त्रमपि **भूमौ वाप्सु वा विसृज्य ॐ** भूः स्वहा ॐ भुवः स्वाहाः स्वाह ॐ सुवः स्वाहेत्या तेन **जातरूपधरो** भूत्वा स्वं रूपं ध्यायन्पुनः पृथक् प्रणवव्याहृतिपूर्वकं मनसा वचसापि संन्यस्तं मया....।

यदालंबुद्धिर्भवेत्तदा कुटीचको वा बहूदको वा हंसो वा परमहंसो वा तत्रन्मन्त्रपूर्वकं कटिसूत्रं कौपीनं दण्डं कमण्डलूं सर्वमप्सु विसृज्याथ **जातरूपधरश्चरेत्**।[३]

'याज्ञवल्क्योपनिषद्' में दिगम्बर साधु का उल्लेख करके उसे परमेश्वर होता बताया है, जैसे कि जैनों की मान्यता है-

यथा जातरूपधरा **निर्द्वन्द्वा** निष्परिग्रहास्तत्त्वब्रह्ममार्गे सम्यक् संपन्नाः शुद्धमानसाः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले विमुक्तो भैक्षमाचरन्नुदरपात्रेण लाभालाभौ समो भूत्वा करपात्रेण मा कमण्डलूदकयो भैक्षमाचरन्नुदरमात्रसंग्रहः। ....आशाम्बरो न नमस्कारो न दारपुत्राभिलाषी लक्ष्यालक्ष्यनिर्वर्तकः परिव्राट् **परमेश्वरो** भवति।[४]

'दत्तात्रेयोपनिषद्' में भी है-

दत्तात्रेय हरे कृष्ण उन्मत्तानन्द दायक। दिगम्बर मुने बालपिशाच ज्ञानसागर।[५]

---

१. ईशाद्य., पृ. ४१०।
२. ईशाद्य., पृ. ४१२।
३. ईशाद्य., पृ. ४१८-४१९।
४. ईशाद्य., पृ. ५२४।
५. ईशाद्य., पृ. ५४२।

'भिक्षुकोपनिषद्' आदि में संवर्तक, आरुणी, श्वेतकेतु, जड़भरत दत्तात्रेय, शुक, वामदेव, हारीतिकी आदि को दिगम्बर साधु बताया है। **"याज्ञवल्क्योपनिषद्"** में इनके अतिरिक्त दुर्वासा, ऋभु, निदाघ को भी तुरियातीत परमहंस बताया है।[१] इस प्रकार उपनिषदों के अनुसार दिगम्बर साधुओं का होना सिद्ध है।

किन्तु यह बात नहीं है कि मात्र उपनिषदों में ही दिगम्बरत्व का विधान हो, बल्कि वेदों में भी साधु की नग्नता का साधारण सा उल्लेख मिलता है। देखिये 'यजुर्वेद' अ.१९, मंत्र १४ में[२] .....

"आतिथ्यरूपं मासरम् महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुपसदामेतस्त्रिस्त्रो रात्री सुरासुता।।

अर्थ- (आतिथ्यरूपं) अतिथि के भाव (मासरं) महीनों तक रहने वाले (महावीरस्य) पराक्रमशील व्यक्ति के (नग्नहुः) नग्नरूप की उपासना करो जिससे (एतत्) ये (तिस्रो) तीनों (रात्रीः) मिथ्या ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूपी (सुरा) मद्य (असुता) नष्ट होती है।

इस मन्त्र का देवता अतिथि है। इसलिये यह मन्त्र अतिथियों के सम्बन्ध में ही लग सकता हैं, क्योंकि वैदिक देवता का मतलब वाच्य है, जैसा कि निरुक्तकार का भाव है-

"याते नोच्यते सा देवताः।" इसके अतिरिक्त 'अथर्ववेद' के पन्द्रहवें अध्याय में जिन व्रात्य और महाव्रात्य का उल्लेख है, उनमें महाव्रात्य दिगम्बर साधु के अनुरूप है। किन्तु यह व्रात्य एक वेदवाह्यसंप्रदाय था, जो बहुत कुछ निर्ग्रंथ संप्रदाय से मिलता-जुलता था। बल्कि यूं कहना चाहिये कि वह जैन-मुनि और जैन तीर्थंकर का ही द्योतक है।[३]इस अवस्था में यह मान्यता और भी पुष्ट होती है कि जैन तीर्थंकर ऋषभदेव द्वारा दिगम्बरत्व का प्रतिपादन सर्वप्रथम हुआ था और जब उसका प्राबल्य बढ़ गया और लोगों को समझ पड़ गया कि परमोच्च पद पाने के लिए दिगम्बरत्व आवश्यक है तो उन्होंने उसे अपने शास्त्रों में भी स्थान दे दिया। यही कारण है कि वेद में भी इसका उल्लेख सामान्य रूप से मिल जाता है।

अब हिन्दू पुराणादि ग्रंथों में जो दिगम्बर साधुओं का वर्णन मिलता है, वह भी देख लेना उचित है। **श्री भागवत पुराण में ऋषभ अवतार के सम्बंध में कहा गया है-**

वर्हिषी तस्मिन्नेव विष्णुभगवान् परमर्षिभिः प्रसादतो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितु कामो वातरशनानां श्रमणानां ऋषीणामूर्ध्वा मन्थिना शुक्लया तनु वावततार।

---

१. IHO, III.259-260

२. मालूम होता है कि इस मंत्र द्वारा वेदकार ने जैन तीर्थंकर महावीर के आदर्श को ग्रहण किया है। दूसरे धर्मों के आदर्श को इस तरह ग्रहण करने के उल्लेख मिलते हैं।

IHQ, III, 472-485।

३. देखो भपा., प्रस्तावना, पृ. ३२-४९।

अर्थ–"हे राजन्! परीक्षित वा यज्ञ में परम ऋषियों करके प्रसन्न हो नाभि के प्रिय करने की इच्छा से वाके अन्तःपुर में मरुदेवी में धर्म दिखायवे की कामना करके दिगम्बर रहिवेवारे तपस्वी ज्ञानी नैष्ठिक ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेता ऋषियों को उपदेश देन को शुक्लवर्ण की देह धार श्री ऋषभदेव नाम का (विष्णु ने) अवतार लिया।"[1]

"**लिंग पुराण**" (अ. ४७, पृ. ६८) में भी नग्न साधु का उल्लेख है[2]–

"सर्वात्मनात्मनिस्थाप्य परमात्मानमीश्वरं।
नग्नो जटो निराहारो चीरीध्वांतगतो हि सः।।२५।।

"**स्कंधपुराण–प्रभासखंड**"(अ.१६, पृ. २२१) शिव को दिगम्बर लिखा है[3]–

"वामनोपि ततश्चक्रे तत्र तीर्थावगाहनम्।
यादृग्रूपः शिवो दिष्टः सूर्यबिम्बे दिगम्बरः।।९४।।

श्री भर्तृहरि जी '**वैराग्यशतक**' में कहते हैं[4]–

'एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ।।५८।।

अर्थ–"हे शम्भो! मैं अकेला, इच्छारहित, शांत, पाणिपात्र और दिगम्बर होकर कर्मों का नाश कब कर सकूंगा।" वह और भी कहते हैं[5]–

अशीमहि वयं भिक्षामाशावासो वसीमहि।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः।।९०।।

अर्थ– अब हम भिक्षा ही करके भोजन करेंगे, दिशा के ही वस्त्र धारण करेंगे अर्थात् नग्न रहेंगे और भूमि पर ही शयन करेंगे। फिर भला धनवानों से हमें क्या मतलब?

सातवीं शताब्दी में जब चीनी यात्री ह्वेनसांग बनारस पहुंचा तो उसने वहाँ हिन्दूओं के बहुत से नंगे साधु देखे। वह लिखता है कि "महेश्वर भक्त साधु बालों को बांधकर जटा बनाते है तथा वस्त्र परित्याग करके दिगम्बर रहते हैं और शरीर में भस्म का लेप करते हैं। ये बड़े तपस्वी हैं।[6] इन्हीं को परमहंस परिव्राजक कहना ठीक है। किन्तु ह्वेनसांग से बहुत पहिले ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी में जब सिकन्दर महान् ने भारत पर आक्रमण किया था, तब भी नंगे हिन्दू साधु यहाँ मौजूद थे।

अरस्तु का भतीजा स्यिडो कल्लिस्थेनस (Pseudo Kallisthenes) सिकन्दर महान् के साथ यहाँ आया था और वह बताता है कि "ब्राह्मणों का श्रमणों की

---

१. वेजै. पृ. ३।
२. वेजै. पृ. ९।
३. वेजै. पृ. ३४।
४. वेजै. पृ. ४६।
५. वेजै. पृ. ४७।
६. हुभा. पृ. ३२०।

तरह कोई संघ नहीं है। उनके साधु प्रकृति की अवस्था में (State of nature) नग्न नदी किनारे रहते हैं और नंगे ही घूमते हैं। (Go about naked) उनके पास न चौपाहे हैं, न हल है, न लोहा–लंगड़ है, न घर है, न आग है, न रोटी है, न सुरा है – गर्ज यह कि उनके पास श्रम और आनन्द का कोई सामान नहीं है। इन साधुओं की स्त्रियाँ गंगा की दूसरी ओर रहती हैं, जिनके पास जुलाई और अगस्त में वे जाते हैं। वैसे जंगल में रहकर वे वनफल खाते हैं।"[१]

सन् ८५१ में अरब देश से सुलेमान सौदागर भारत आया था। उसने यहाँ एक ऐसे नंगे हिन्दू योगी को देखा था जो सोलह वर्ष तक एक आसन से स्थित था।[२]

बादशाह औरंगजेब के जमाने में फ्रांस से आये हुए डा. बर्नियर ने भी हिन्दुओं के परमहंस (नंगे) संन्यासियों को देखा था। वह इन्हें 'जोगी' कहता है और इनके विषय में लिखता है–

'I allude particulary to the people called "Jaugis" a name which signifies "united to God" Numbers are seen, day and night, seated or laying on ashes entirely naked, Frequently under the large trees near talabs or tanks of water or in the galleries round the 'Deuras' or idol temples. Some have hair hanging down to the calf of the leg, twisted and entangled into Knots, like the coat of our shaggy dogs. I have seen several who hold one and some who hold both arms, perpetually lifted up above the head, the nails of their hands being twisted and longer than half my little finger, with which I measured them. Their arms are as small and thin as the arms of persons who die in a decline, because in so forced and unnatural a position they receive not sufficient nourishment nor can they be lowered so as to supply the mouth with food, the muscles having become contracted and the articulation dry and stiff. Novices wait upon these fanatics and pay them the utmost respect, as persons endowed with extraordinary sanctity. No 'fury' in the infernal regions can be conceived more horrible than the 'Jaugise' with their naked and black skin, long, hair spindle arms, long twisted nails and fixed in the posture which I have mentioned".

---

1. Al.,p.181.
2. Elliot., I, p–4.
3. Bernier, p.316.

भाव यही है कि बहुत से ऐसे जोगी थे जो तालाब अथवा मंदिरों में नंगे रात-दिन रहते थे। उनके बाल लम्बे-लम्बे थे। उनमें से कोई अपनी बाहें ऊपर उठाये रहते थे। नाखून उनके मुड़कर दूभर हो गये थे जो मेरी छोटी अंगुली के आधे के बराबर थे। सूखकर वे लकड़ी हो गये थे। उन्हें खिलाना भी मुश्किल था। क्योंकि उनकी नसें तन गयीं थीं। भक्तजन इन नागों की सेवा करते हैं और इनकी बड़ी विनय करते हैं। वे इन जोगियों से पवित्र किसी दूसरे को नहीं समझते और इनके क्रोध से भी बेढब डरते हैं। इन जोगियों की नंगी और काली चमड़ी है, लम्बे बाल हैं, सूखी आंखें हैं, लम्बे मुड़े हुए नाखून हैं और वे एक जगह पर ही उस आसन में जमे रहते हैं, जिसका मैंने उल्लेख किया है। यह हठयोग की पराकाष्ठा है। परमहंस होकर वह यह न करते तो करते भी क्या?

सन् १६२३ ई.में पिटर डेल्ला वॉल्ला नामक यात्री आया था। उसने अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे और शिवालों में अनेक नागा साधु देखे थे, जिनकी लोग बड़ी विनय करते थे।[१]

आज भी प्रयाग में कुम्भ के मेले के अवसर पर हजारों नागा संन्यासी वहाँ देखने को मिलते हैं। वे कतार बांधकर शरह-आम नंगे निकलते हैं।

इस प्रकार हिन्दु शास्त्रों और यात्रियों की साक्षियों से हिन्दु धर्म में दिगम्बरत्व का महत्व स्पष्ट हो जाता है। दिगम्बर साधु हिन्दुओं के लिये भी पूज्य पुरुष हैं।

---

१. पुरातत्व, वर्ष २, अंक ४, पृ. ४४०।

[५]

इस्लाम और दिगम्बरत्व

"I am no apostle of new doctrines". said Muhammad."neither know I what will be done with me or you". Koran, XLVI

पैगम्बर हजरत मुहम्मद ने खुद फरमाया है कि "मैं किन्हीं नये सिद्धान्तों का उपदेशक नहीं हूँ और मुझे यह नहीं मालूम कि मेरे या तुम्हारे साथ क्या होगा ?" सत्य का उपासक और कह ही क्या सकता है ? उसे तो सत्य को गुमराह भाइयों तक पहुंचाना पड़ता है। मुहम्मद साहब को अरब के असभ्य लोगों में सत्य का प्रकाश फैलाना था। वह लोग ऐसे पात्र न थे कि एकदम ऊँचे दर्जे का सिद्धान्त उनको सिखाया जाता। उस पर भी हजरत मुहम्मद ने उनको स्पष्ट शिक्षा दी कि–

'The love of the world is the root of all evil.'

'The world is as a prison and as a famine to Muslims; and when they leave it you may say they leave famine and a prison१

(Sayings of Mohammad)

अर्थात्– "संसार का प्रेम ही सारे पाप की जड़ है। संसार मुसलमान के लिए एक कैदखाना और कहत के समान है और जब वे इसको छोड़ देते हैं तब तुम कह सकते हो कि उन्होंने कहत और कैदखाने को छोड़ दिया।" त्याग और वैराग्य का इससे बढ़िया उपदेश और हो भी क्या सकता है ? हजरत मुहम्मद ने स्वयं उसके अनुसार अपना जीवन बनाने का यथासंभव प्रयत्न किया था। उस पर भी उनके कम से कम वस्त्रों का परिधान और हाथ की अंगूठी उनकी नमाज में बाधक हुई थी। [२]

किन्तु यह उनके लिये इस्लाम के उस जन्मकाल में संभव नहीं था कि वह खुद नग्न होकर त्याग और वैराग्य–तर्के दुनिया का श्रेष्ठतम उदाहरण उपस्थित करते। यह कार्य उनके बाद हुये इस्लाम के सूफी तत्ववेत्ताओं के भाग में आया। उन्होंने 'तर्क' अथवा त्याग धर्म का उपदेश स्पष्ट शब्दों में यूं दिया–

"To abandon the world, its comforts and dress, all thigs now and to come, –conformably with the Hadees of the Prophet."[3]

अर्थात्– "दुनिया का सम्बन्ध त्याग देना–तर्क कर देना–उसकी आराइशों और पोशाक–सब ही चीजों को अब की और आगे की–पैगम्बर साहब की हदीस के मुताबिक।"

---

१. K.K., p. 738.

२. Religious Attitude & Life in Islam, p. 298 & K.K. 793.

इस उपदेश के अनुसार इस्लाम में त्याग और वैराग्य को विशेष स्थान मिला। उसमें ऐसे दरवेश हुये जो दिगम्बरत्व के हिमायती थे और तुर्किस्तान में 'अब्दल'(Abdal), नामक दरवेश मादरजात नंगे रहकर अपनी साधना में ली रहते बताये गये है।[१] इस्लाम के महान् सूफी तत्ववेत्ता और सुप्रसिद्ध 'मनस्वी' नामक ग्रन्थ के रचयिता श्री जलालुद्दीन रूमी दिगम्बरत्व का खुला उपदेश निम्न प्रकार देते हैं–

१. "गुफ्त मस्त ऐ महतब बगुजार रव–अज बिरहना के तवां बुरदन गरव।"

(जिल्द २ सफा २६२)

२. "जामा पोशांरा नजर पागाज रास्त–जामै अरियाँ रा तजल्ली जेवर अस्त।"

(जिल्द २ सफा ३८२)

३. "याज अरियानान बयकसू बाज रव–या चूँ ईशां फारिग व बेजामा शव!"

४. "वरनमी तानी कि कुल अरियाँ शवी–जामा कम कुन ता रह औरत रवी!"

(जिल्द २ सफा ३८३)[२]

इनका उर्दू में अनुवाद 'इल्हामे मन्जूम' नामक पुस्तक में इस प्रकार दिया हुआ है–

१. मस्त बोला, महतब, कर काम जा, होगा क्या नंगे से तू अहदे वर आ।

२. है नजर धोबी पै जामै–पोश की है, तजल्ली जेवर अरियाँ तनी!!

३. या बिरहनों से हो यकसू वाकई, या हो उनकी तरह बेजामै अखी!

४. मुतलकन अरियाँ जो हो सकता नहीं, कपड़े कम यह है कि औसत के करीं!!

भाव स्पष्ट है कोई तार्किक मस्त नंगे दरवेश से आ उलझा। उसने सीधे से कह दिया कि जा अपना काम कर, तू नंगे के सामने टिक नहीं सकता। वस्त्रधारी को हमेशा धोबी की फिकर लगी रहती है, किन्तु नंगे तन की शोभा दैवी प्रकाश है। बस, या तो तू नंगे दरवेशों से कोई सरोकार न रख अथवा उनकी तरह आजाद और नंगा हो जा! और अगर तू एकदम दूसरे कपड़े नहीं उतार सकता तो कम से कम कपड़े पहन और मध्यमार्ग को ग्रहण कर। क्या अच्छा उपदेश है। एक दिगम्बर जैन साधु भी तो यही उपदेश देता है। इससे दिगम्बरत्व का इस्लाम से सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

---

१. "The higher saints of Islam, called 'Abdals' generally went about perfectly naked; as described by Miss Lucy M.Garnet in her excellent account of the lives of Muslim Dervishes. entitled "Mysticism & Magic in Turkey." N.J., p. 10

२. जिल्द और पृष्ठ के नम्बर "मस्नवी" के उर्दू अनुवाद "इल्हामे मन्जूम" के हैं।

इस्लाम के इस उपदेश के अनुरूप सैकड़ों मुसलमान फकीरों ने दिगम्बर वेष को गतकाल में धारण किया था। उनमें अबुलकासिम गिलानी[१] और सरमद शहीद उल्लेखनीय हैं।

सरमद बादशाह औरंगजेब के समय में दिल्ली से होकर गुजरा है और उसके हजारों नंगे शिष्य भारत भर में बिखरे पड़े थे। वह मूल में कज़हान (अरमेनिया) का रहने वाला एक ईसाई व्यापारी था। विज्ञान और विद्या का भी वह विद्वान था। अरबी अच्छी खासी जनता था और व्यापार के निमित्त भारत में आया था। ठट्ठा (सिंध) में एक हिन्दू लड़के के इश्क में पड़कर मजूनं बन गया।[२] तदोपरांत इस्लाम के सूफी दरवेशों की संगति में पड़कर मुसलमान हो गया। मस्त नंगा वह शहरों और गलियों में फिरता था। वह अध्यात्मवाद का प्रचारक था। घूमता–घामता वह दिल्ली जा डटा। शाहजहाँ का वह अन्त समय था। दाराशिकोह, शाहजहाँ बादशाह का बड़ा लड़का, उसका भक्त हो गया। सरमद आनन्द से अपने मत का प्रचार दिल्ली में करता रहा। उस समय फ्रांस से आये हुए डा. बर्नियर ने खुद अपनी आंखों से उसे नंगा दिल्ली की गलियों में घूमते देखा था।[३] किन्तु जब शाहजहाँ और दारा को मारकर औरंगजेब बादशाह हुआ तो सरमद की आजादी में भी अडंगा पड़ गया। एक मुल्ला ने उसकी नग्नता के अपराध में उसे फांसी पर चढ़ाने की सलाह औरंगजेब को दी, किन्तु औरंगजेब ने नग्नता को इस दण्ड की वस्तु न समझा[४] और सरमद से कपड़े पहनने की दरख्वास्त की। इसके उत्तर में सरमद ने कहा–

"आँकस कि तुरा कुलाह सुल्तानी दाद,
मारा हम ओ अस्बाब परेशानी दाद,
पोशानीद लबास हरकरा ऐबे दीद,
बे ऐबा रा लबास अर्यानी दाद।"

यानि "जिसने तुमको बादशाही ताज दिया, उसी ने हमको परेशानी का सामान दिया। जिस किसी में कोई ऐब पाया, उसको लिबास पहनाया और जिनमें ऐब न पाये उनको नंगेपन का लिबास दिया।"

---

१. K.K., p.739 and N.J., pp. 8-9

२. J.G., XX PP. 158-159

३. Bernier remarks : 'I was for a long time disgusted with a celebrated Fakire named Sarmet. Who paraded the streets of Delhi as naked as when he came into the world etc.' (Berniers Travels in the Mogul Empire, p. 317).

४. Emperor told the Ulema that 'Mere nudity cannot be a reason of execution - J.G. XX, p. 158

बादशाह इस रुबाई को सुनकर चुप हो गया, लेकिन सरमद उसके क्रोध से बच न पाया। अब के सरमद फिर अपराधी बनाकर लाया गया। अपराध सिर्फ यह था कि वह 'कलमा' आधा पढ़ता है जिसके माने होते है कि 'कोई खुदा नहीं है।' इस अपराध का दण्ड उसे फांसी मिला और वह वेदान्त की बातें करता हुआ शहीद हो गया। उसको फांसी दिये जाने में एक कारण यह भी था कि वह दारा का दोस्त था।[१]

सरमद की तरह न जाने कितने नंगे मुसलमान दरवेश हो गुजरे हैं। बादशाह ने उसे मात्र नंगे रहने के कारण सजा न दी, यह इस बात का द्योतक है कि वह नग्नता को बुरी चीज नहीं समझता था और सचमुच उस समय भारत में हजारों नंगे फकीर थे। ये दरवेश अपने नंगे तन में भारी-भारी जंजीरें लपेट कर बड़े लम्बे-लम्बे तीर्थाटन किया करते थे।[२]

सारांशतः इस्लाम मजहब में दिगम्बरत्व साधु पद का चिह्न रहा है और उसको अमली शक्ल भी हजारों मुसलमानों ने दी है और चूँकि हजरत मुहम्मद किसी नये सिद्धान्त के प्रचार का दावा नहीं करते, इसलिये कहना होगा कि ऋषभाचल से प्रकट हुई दिगम्बरत्व-गंगा की एक धारा को इस्लाम के सूफी दरवेशों ने भी अपना लिया था।

---

१. जैम., पृ. ४।

J.G., Vol. XX p. 159. "There is no God" said Sarmad omitting "but, Allah and Muhammad is His apostle."

२. "Among the vast number and endless variety of Fakires or Dervishes....some carried a club like to Hercules, others had a dry & rough tiger-skin thrown over their shoulders ....Several of these Fakires take long pilgrimages, not only naked, but laden with heavy iron chain such as are put about the legs of elephants."-Bernier.,p.317

ईसाई मज़हब और दिगम्बर साधु

"And he stripped his clothes also, and prophesied before Samuel in like manner, and lay down naked all that day and all that night. Wherefore they said, is Saul also among the Prophets?"

—Samuel XIX, 24

"At the same time spoke the Lord, by Isaiah the son of Amoz, saying, 'Go and loose the sackcloth from off the loins, and put off thy shoe from thy foot. And he did so, walking naked and bare foot."

—Isaiah XX, 2

ईसाई मज़हब में भी दिगम्बर का महत्व भुलाया नहीं गया है, बल्कि बड़े मार्के के शब्दो में उसका वहाँ प्रतिपादन हुआ मिलता है। इसका एक कारण है। **जिस महानुभाव द्वारा ईसाई धर्म का प्रतिपादन हुआ था वह जैन श्रमणों के निकट शिक्षा पा चुका था।**[१] उसने जैन धर्म की शिक्षा को ही अलंकृत-भाषा में पाश्चात्य देशों में प्रचलित कर दिया। इस अवस्था में ईसाई मजहब दिगम्बरत्व के सिद्धान्त से खाली नहीं रह सकता और सचमुच बाईबिल में स्पष्ट कहा गया है कि-

"और उसने अपने वस्त्र उतार डाले और सैमुयल के समक्ष ऐसी ही घोषणा की और उस सारे दिन तथा सारी रात वह नंगा रहा। इस पर उन्होंने कहा, क्या साल भी पैगम्बरों में से है?"-सैमुयल १९/२४

उसी समय प्रभु ने अमोज के पुत्र ईसाईया से कहा- जा और अपने वस्त्र उतार डाल और अपने पैरों से जूते निकाल डाल, ... और उसने यही किया नंगा और नंगे पैरों वह विचरने लगा।- ईसाय्या २०/२

इन उद्धरणों से यह सिद्ध है कि बाईबिल भी मुमुक्षु को दिगम्बर मुनि हो जाने का उपदेश देती है और कितने ही ईसाई साधु दिगम्बर वेष में रह भी चुके हैं। ईसाईयों के इन नंगे साधुओं में एक सेन्टमेरी (St. Marry of Egypt.) नामक साध्वी भी थी। यह मिश्र देश की सुन्दर स्त्री थी, किन्तु इसने भी कपड़े छोड़कर नग्न-वेष में ही सर्वत्र विहार किया था।[२]

---

१. विको., भा. ३, पृ. १२८।

२. The History of European Morals, ch. 4 & N.J., p.6.

यहूदी (Jews) लोगों की प्रसिद्ध पुस्तक "The Ascension of Isaiah" (p.32) में लिखा है–

"(Those) who belive in the ascension into heaven withdrew settled on the mountain...

–They were all prophets (Saints) and they had nothing with them and were naked." ।[1]

अर्थात्–वह जो मुक्ति की प्राप्ति में श्रद्धा रखते थे एकान्त में पर्वत पर जा जमे। –वे सब सन्त थे और उनके पास कुछ नहीं था और वे नंगे थे।

अपॉसल पीटर ने नंगे रहने की आवश्यकता और विशेषता को निम्न शब्दों में बड़े अच्छे ढंग पर "Clementine Homilies" में दर्शा दिया है–

"For we, who have chosen the future things, in so far as we possess more goods than these, whether they be clothings, or ....any other thing, possess sins, because we ought not to have anything....To all of us possessions are sins.....The deprivation of these, in whatever way it may take place is the removal of sins.[2]

अर्थात– क्योंकि हम जिन्होंने भविष्य की चीजों को चुन लिया है, यहाँ तक कि हम उनसे ज्यादा सामान रखते हैं, चाहे वे फिर कपड़े–लत्ते हों या दूसरी कोई चीज़, पाप को रखें हुये है, क्योंकि **हमें कुछ भी अपने पास नहीं रखना चाहिये। हम सबके लिये परिग्रह पाप है। जैसे भी हो वैसे इनका त्याग करना पापों को हटाना है।**

दिगम्बरत्व की आवश्यकता पाप से मुक्ति पाने के लिये आवश्यक ही है। ईसाई ग्रंथकार ने इसके महत्व को खूब दर्शा दिया है। यही वजह है कि ईसाई मज़हब के मानने वाले भी सैकड़ो दिगम्बर साधु हो गुजरे है।

---

१. N.J., p.6.

२. Ante Nicene Christian Library, XVII, 240 & N.J., p.7.

[७]

दिगम्बर जैन मुनि

"जधजादरुवजादं उप्पाडिद केसमंसुगं सुद्धं।
रहिदं हिंसादीदो अप्पडिकम्मं हवदि लिंगं।।५।।
मुच्छारंभविजुत्तं जुत्तं उवजोग जोग सुद्धीहिं।
लिंगं ण परावेक्खं अपुणब्भव कारणं जोण्हं।।६।।"

–प्रवचनसार

दिगम्बर जैन मुनि के लिये जैन शास्त्रों में लिखा गया है कि उनका लिंग अथवा वेश यथाजातरूप नग्न है– सिर और दाढ़ी केश उन्हें नहीं रखने होते। वे इन स्थानों के बालों को हाथ से उखाड़ कर फेंक देते है–यह उनकी केश लुञ्चन क्रिया है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर जैन मुनि का वेश शुद्ध, हिंसादिरहित, श्रृंगाररहित, ममता–आरम्भ रहित, उपयोग और योग की शुद्धि सहित, पर द्रव्य की अपेक्षा रहित मोक्ष का कारण होता है। सारांश रूप में दिगम्बर जैन मुनि का वेष यह है, किन्तु यह इतना दुर्द्धर और गहन है कि संसार–प्रपंच में फंसे हुए मनुष्य के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह एकदम इस वेश को धारण कर ले, तो फिर क्या वेश अव्यवहार्य है? जैन शास्त्र कहते है, 'कदापि नहीं।" और यह है भी ठीक क्योंकि उनमें दिगम्बरत्व को धारण करने के लिये मनुष्य को पहले से ही एक वैज्ञानिक ढंग पर तैयार करके योग्य बना लिया जाता है और दिगम्बर पद में भी उसे अपने मूल उद्देश्य की सिद्धि के लिये एक वैज्ञानिक ढंग पर ही जीवन व्यतीत करना होता है। जैनेतर शास्त्रों में यद्यपि दिगम्बर वेश का प्रतिपादन हुआ मिलता है, किन्तु उनमें जैनधर्म जैसे वैज्ञानिक नियम–प्रवाह की कमी है और यही कारण है कि परमहंस वानप्रस्थ भी उनमें सपत्नीक मिल जाते है।[१] जैन धर्म के दिगम्बर साधुओं के लिये ऐसी बातें बिल्कुल असंभव हैं।

अच्छा तो, दिगम्बर वेष धारण करने के पहले जैन धर्म मुमुक्षु के लिए किन नियमों का पालन करना आवश्यक बतलाया है? जैन शास्त्रों में सचमुच इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि एक गृहस्थ एकदम छलांग मारकर दिगम्बरत्व के उन्नत

१. यूनानी लेखकों ने उनका उल्लेख किया है। देखो A.I.p.181.

शैल पर नहीं पहुंच सकता। उसको वहाँ तक पहुंचने के लिए कदम–ब–कदम आगे बढ़ना होगा। इसी क्रम के अनुरूप जैन शास्त्रों में एक गृहस्थ के लिए ग्यारह दर्जे नियत किये गये हैं। पहले दर्जे में पहुँचने पर कहीं गृहस्थ एक श्रावक कहलाने के योग्य होता है। यह दर्जे गृहस्थ की आत्मोन्नति के सूचक हैं और इनमें पहले दर्जे से दूसरे में आत्मोन्नति की विशेषता रहती है। इनका विशद वर्णन जैन ग्रंथों में जैसे 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' में खूब मिलता है। यहां इतना बता देना ही काफी है कि इन दर्जों से गुजर जाने पर ही एक श्रावक दिगम्बर मुनि होने के योग्य होता है। दिगम्बर मुनि होने के लिये यह उनकी 'ट्रेनिंग' है और सचमुच प्रोषधोपवासव्रत प्रतिमा से उसे नंगे रहने का अभ्यास करना प्रारंभ कर देना होता है। मात्र पर्व–अष्टमी और चतुर्दशी के दिनों में वह अनारंभी हो, घर बाहर का काम–काज छोड़कर, व्रत–उपवास करता तथा दिगम्बर होकर ध्यान में लीन होता है।[१] ग्यारहवीं प्रतिमा में पहुंचकर वह मात्र लंगोटी का परिग्रह अपने पास रहने देता है और गृहत्यागी वह इसके पहले हो जाता है।[२] ग्यारहवीं प्रतिमा का धारी वह 'ऐलक या क्षुल्लक' आदरपूर्वक विधि सहित प्रासुक भोजन, यदि गृहस्थ के यहाँ मिलता है ग्रहण कर लेता है। भोजनपात्र का रखना भी उसकी खुशी पर अवलिम्बित है।बस, यह श्रावक–पद की चरम–सीमा है। 'मुण्डकोपनिषद्' के 'मुण्डक श्रावक' इसके समतुल्य होते हैं किन्तु वहाँ वह साधु का श्रेष्ठ रूप है।[३] इसके विपरीत जैन धर्म में उसके आगे मुनि पद और है। मुनि पद में पहुंचने के लिये ऐलक–श्रावक को लाजमी तौर पर दिगम्बर–वेष धारण करना होता है और मुनि धर्म का पालन करने के लिये मूल और उत्तर गुणों का पालन करना होता है। मुनियों के मूल गुण जैन शास्त्रों में इस प्रकार बताए गए हैं–

> 'पंचय महव्वमाहं समिदीओ पच जिणवरोद्दिट्ठा'।
> पंचेविंदियरोहा छप्पि य आवासया लोचो ।।२।।
> अच्चेल कमण्हाणं खिदिसयणमदंतघस्सण चेव।
> ठिदिभोयणेभत्तं मूल गुणा अट्ठवीसा दु ।।३।। मूलाचार।।

अर्थात्– "पाँच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह), जिनवर कर उपदेशी हुई पाँच समितियाँ (ईर्या समिति, भाषासमिति, एषणा समिति, आदाननिक्षेपण समिति, मूत्रविष्ठादिक का शुद्ध भूमि में क्षेपण अर्थात् प्रतिष्ठापना समिति), पाँच इन्द्रियों का निरोध (चक्षु, कान, नाक, जीभ, स्पर्शन)–इन पाँच इन्द्रियों के विषयों का निरोध करना), छह आवश्यक (सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग), लोच, आचेलक्य,

---

१. भमवु., पृ. २०५ तथा बौद्धों के 'अंगुत्तर निकाय' में भी इसका उल्लेख है।
२. वीर, वर्ष ८, पृ. २५१–२५५।

अस्नान, पृथ्वीशयन, अंदतघर्षण, स्थिति भोजन, एक भक्त– ये जैन साधुओं के अट्ठाइस मूल गुण हैं।"

संक्षेप में दिगम्बर मुनि के इन अट्ठाइस मूल गुणों का विवेचनात्मक वर्णन यह है–

(१) अहिंसा महाव्रत– पूर्णतः मन–वचन–कायपूर्वक अहिंसा धर्म का पालन करना।

(२) सत्य महाव्रत– पूर्णतः सत्य धर्म का पालन करना।

(३)अस्तेय महाव्रत– अस्तेय धर्म का पालन करना।

(४) ब्रह्मचर्य महाव्रत– ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करना।

(५) अपरिग्रह महाव्रत– अपरिग्रह धर्म का पालन करना।

(६) ईर्या समिति– प्रयोजनवश निर्जीव मार्ग से चार हाथ जमीन देखकर चलना।

(७)भाषा समिति– पैशून्य, व्यर्थ हास्य, कठोर वचन, परनिंदा, स्वप्रशंसा, स्त्री कथा, भोजन कथा, राज कथा, चोर कथा इत्यादि वार्ता छोड़कर मात्र स्वपरकल्याणक वचन बोलना।

(८)एषणा समिति– उद्गमादि छियालीस दोषों से रहित, कृतिकारित नौ विकल्पों से रहित, भोजन में रागद्वेषरहित– समभाव से– बिना निमंत्रण स्वीकार करे, भिक्षा–वेला पर दातार द्वारा पड़गाहने पर इत्यादि रूप भोजन करना।

(९)आदाननिक्षेपण समिति– ज्ञानोपकरणादि–पुस्तकादि का यत्नपूर्वक देखभाल कर उठाना–धरना।

(१०)प्रतिष्ठापना समिति एकान्त, हरित व त्रसकायरहित, गुप्त, दूर, बिल–रहित, चौड़े, लोकनिन्दा व विरोध रहित स्थान में मल–मूत्र क्षेपण करना।

(११)चक्षुर्निरोध व्रत– सुन्दर व असुन्दर दर्शनीय वस्तुओं में राग–द्वेषादि तथा आसक्ति का त्याग।

(१२)कर्णेन्द्रिय निरोध व्रत– सात स्वर रूप जीवशब्द (गान) और वीणा आदि से उत्पन्न अजीव शब्द रागादि के निमित्त कारण है, अतः इनका न सुनना।

(१३)घ्राणेन्द्रिय निरोध व्रत– सुगन्धि और दुर्गन्ध में राग–द्वेष नहीं करना।

(१४)रसनेन्द्रिय निरोध व्रत– जिह्वालम्पटता के त्याग सहित और आकांक्षा रहित परिणामपूर्वक दातार के यहाँ मिले भोजन को ग्रहण करना।

(१५) स्पर्शनेन्द्रिय निरोध व्रत– कठोर, नरम आदि आठ प्रकार का दुःख अथवा सुख रूप स्पर्श में हर्ष– विषाद न रखना।

(१६) सामायिक- जीवन-मरण, संयोग-वियोग, मित्र-शत्रु, सुख-दुःख, भूख-प्यास आदि बाधाओं में राग-द्वेष रहित समभाव रखना,

(१७)चतुर्विंशति-स्तव- ऋषभादि, चौबीस तीर्थंकरों की मन-वचनकाय की शुद्धतापूर्वक स्तुति करना।

(१८)वन्दना- अरहंतदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिन शास्त्र को मन-वचन-काय की शुद्धि सहित बिना मस्तक नयाये नमस्कार करना।

(१९)प्रतिक्रमण- द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव रूप किये गये दोष को शोधना और अपने आप प्रकट करना।

(२०)प्रत्याख्यान-नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव-इन छहों में शुभ मन, वचन, काय से आगामी काल के लिये अयोग्य का त्याग करना।

(२१)कायोत्सर्ग-निश्चित क्रियारूप एक नियत काल के लिये जिन गुणों की भावना सहित देह में ममत्व को छोड़कर स्थिति होना।

(२२)केशलोंच-दो, तीन या चार महीने बाद प्रतिक्रमण व उपवास सहित दिन में अपने हाथ से मस्तक, दाढ़ी, मूंछ के बालों का उखाड़ना।

(२३)अचेलक-वस्त्र, चर्म, टाट, तृण आदि से शरीर को नहीं ढ़कना और आभूषणों से भूषित न होना।

(२४)अस्नान- स्नान-उबटन-अञ्जन-लेपन आदि का त्याग।

(२५)क्षितिशयन- जीव बाधा रहित गुप्त प्रदेश में डण्डे अथवा धनुष के समान एक करवट से सोना।

(२६)अदन्तधावन-अंगुली, नख, दातून, तृण आदि से दन्त-मल को शुद्ध नहीं करना।

(२७) स्थिति भोजन-अपने हाथों को भोजनपात्र बनाकर भीत आदि के आश्रय रहित चार अंगुली के अन्तर से समपाद खड़े रहकर तीन भूमियों की शुद्धता से आहार ग्रहण करना।

(२८) एक भक्त-सूर्य के उदय और अस्त काल की तीन घड़ी समय छोड़कर एक बार भोजन करना।

इस प्रकार एक मुमुक्षु दिगम्बर मुनि के श्रेष्ठपद को तब ही प्राप्त कर सकता है जब वह उपर्युक्त अट्ठाइस मूल गुणों का पालन करने लगे। इनके अतिरिक्त जैन मुनि के लिए और भी उत्तर गुणों का पालन करना आवश्यक है, किन्तु ये अट्ठाइस मूल गुण ही ऐसे व्यवस्थित नियम हैं कि मुमुक्षु को निर्विकारी और योगी बना दें। यही कारण है कि आज तक दिगम्बर जैन मुनि अपने पुरातन वेष में देखने को नसीब

हो रहे हैं। यदि यह वैज्ञानिक नियम प्रवाह जैन धर्म में न होता तो अन्य मतान्तरों के नग्न साधुओं के सदृश आज दिगम्बर जैन साधुओं के भी दर्शन होना दुर्लभ हो जाते। दिगम्बर साधु- नंगे जैन साधु के लिये 'दिगम्बर साधु' पद का प्रयोग करना ही हम उचित समझते हैं- ये उपर्युक्त प्रारम्भिक गुणों को देखते हुये, जिनके बिना वह मुनि ही नहीं हो सकता, दिगम्बर मुनि के जीवन के कठिन श्रम, इन्द्रिय निग्रह, संयम, धर्म भाव, परोपकार वृत्ति, निशंक रूप इत्यादि का सहज ही पता लग जाता है। इस दशा में यदि वे जगद्वन्द्य हो तो आश्चर्य क्या!

दिगम्बर मुनियों के सम्बन्ध में यह जान लेना भी जरूरी है कि उनके (१) आचार्य, (२) उपाध्याय और (३) साधु रूप तीन भेदों के अनुसार कर्त्तव्य में भी भेद है। आचार्य साधु के गुणों के अतिरिक्त सर्वकाल सम्बन्धी आचार को जानकर स्वयं तद्वत् आचरण करे तथा दूसरों से करावे, जैन धर्म का उपदेश देकर मुमुक्षुओं का संग्रह करें और उनकी सार-संभार रखे। उपाध्याय का कार्य साधु कर्म के साथ-साथ जैन शास्त्रों का पठन-पाठन करना है। जो मात्र उपर्युक्त गुणों को पालता हुआ ज्ञान-ध्यान में लीन रहता है, वह साधु है। इस प्रकार दिगम्बर मुनियों को अपने कर्त्तव्य के अनुसार जीवनयापन करना पड़ता है। आचार्य महाराज जी का जीवन संघ केउद्योत में ही लगा रहता है, इस कारण कोई-कोई आचार्य विशेष ज्ञान-ध्यान करने की नियत से अपने स्थान पर किसी योग्य शिष्य को नियुक्त करके स्वयं साधु-पद में आ जाते हैं। मुनि-दशा ही साक्षात् मोक्ष का कारण है।

---

[८]

दिगम्बर मुनि के पर्यायवाची नाम

दिगम्बर मुनि के लिये जैनशास्त्रों में अनेक शब्द व्यवहृत हुये मिलते हैं, तथापि जैनेतर साहित्य में भी वह एक से अधिक नामों से उल्लिखित हुये हैं। संक्षेप में उनका साधारण सा उल्लेख कर देना उचित है, जिससे किसी प्रकार की शंका को स्थान न रहे। साधारणतः दिगम्बर मुनि के लिये व्यवहृत शब्द निम्न प्रकार देखने को मिलते हैं–

अकच्छ, अकिञ्चन, अचेलक (अचेलव्रती), अतिथि, अनगारी, अपरिग्रही, अह्रीक, आर्य, ऋषि, गणी, गुरु, जिनलिंगी, तपस्वी, दिगम्बर, दिग्वास, नग्न, निश्चेल, निर्ग्रंथ, निरागार, पाणिपात्र, भिक्षुक, महाव्रती, माहण, मुनि, यति, योगी, वातवसन, विवसन, संयमी (संयत), स्थविर, साधु, सन्यस्थ, श्रमण, क्षपणक।

संक्षेप में इनका विवरण इस प्रकार है–

१. **अकच्छ**[१] – लंगोटी रहित जैन मुनि।

२. **अकिञ्चन**[२] –जिनके पास किंचित् मात्र (जरा भी)परिग्रह न हो वह जैन मुनि।

३. **अचेलक या अचेलव्रती–** चेल अर्थात् वस्त्र रहित साधु। इस शब्द का व्यवहार जैन और जैनेतर साहित्य में हुआ मिलता है।'मूलचार'[३] में कहा है–

"अच्चेलकं लोचो वासट्ठसरीरदा य पडिलिहणं।
एसो हु लिंगकप्पो चदुव्विधो होदिणादव्वो।।९०८।।"

अर्थ–'आचेलक्य अर्थात् कपड़े आदि सब परिग्रह का त्याग, केशलोंच, शरीर संस्कार का अभाव, मोर पीछी–यह चार प्रकार लिंगभेद जानना।'

श्वेताम्बर जैन ग्रंथ "आचारांगसूत्र" में भी अचेलक शब्द प्रयुक्त हुआ मिलता है–

"जे अचेले परि वुसिए तस्सणं भिक्खुस्सणो एवभवद्"[४]
"अचेलए ततो चाई, तं वोसज्ज वत्थमणगारे।"[५]

उनके 'ठाणांगसूत्र में हैं "पंचहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे अचेलए सचेलयाहि निग्गंथीहिं सद्धिं सेवसयाणे नाइक्कमई।"

---

१. बृजेश०, पृ. ४।
२. Ibid।
३. पृष्ठ ३२६।
४. आचा., पृ. १५१।
५. अध्याय १, उद्देश्य १, सूत्र ४।

अर्थात्—"और भी पाँच कारण से वस्त्र रहित साधु वस्त्र सहित साध्वी साथ रहकर जिनाज्ञा का उल्लंघन करते हैं।"[१]

बौद्ध शास्त्रों में भी जैन मुनियों का उल्लेख 'अचेलक' रूप में हुआ मिलता है। जैसे "पाटिकपुत्त अचेलो"— अचेलक पाटिक पुत्र, यह जैन साधु थे।[२] चीनी त्रिपिटक में भी जैन साधु "अचेलक" नाम से उल्लिखित हुए हैं।[३] बौद्ध टीकाकार बुद्धघोष 'अचेलक' से भाव नग्न के लेते हैं।[४]

४. अतिथि— ज्ञानादि सिद्धर्थ्य तनुस्थित्यर्थान्नाय यः स्वयम्, यत्नेनातति गेहं वा न तिथिर्यस्य सोऽतिथिः।

—सागार धर्मामृत, अ.५, श्लो. ४२

जिनके उपवास, व्रत आदि करने की गृहस्थ श्रावक के समान अष्टमी आदि कोई खास तिथि (तारीख) नियत न हो, जब चाहे करें।

५. अनगार[५] —आगाररहित, गृहत्यागी दिगम्बर मुनि।

इस शब्द का प्रयोग अणयारमहरिसीणं—मूलाचार, अनगार भावनाधिकार, श्लो. २ में, अनगार महर्षिणां इसकी श्लोक की संस्कृत छाया और "न विद्यतेऽगारं गृहं स्त्रयादिकं येषांतेऽनगार" इसी श्लोक की संस्कृत टीका में मिलता है।

श्वेताम्बरीय आचारांग सूत्र में हैं "तं वोसज्ज वत्थ—मणगारे।"[६]

६. अपरिग्रही— तिलतुषपात्र परिग्रह रहित दिगम्बर मुनि।

७. अह्रीक— लज्जाहीन, नंगे मुनि। इस शब्द का प्रयोग अजैन ग्रंथकारों ने दिगम्बर मुनियों के लिए घृणा प्रकट करते हुए किया है, जैसे बौद्धों के 'दाठावंश में' है[७]—

'इमे अहिरिका सब्बे सद्धादिगुणवज्जिता।
श्रद्धा सठाच दुप्पञ्चा सग्गमोक्ख विबन्धका।।८८।।'

बौद्ध नैयायिक कमलशील ने भी जैनों का 'अह्रीक' नाम से उल्लेख किया है (अह्रीकादयश्चोदयन्ति, स्याद्वाद परीक्षा प्र. 'तत्वसंग्रह', पृ. ४८६)। वाचस्पति अभिधानकोष में भी 'अह्रीक' को दिगम्बर मुनि कहा गया है—"अह्रीक क्षपणके तस्य दिगम्बरत्वेन लज्जाहीनत्वात् तथात्वम्।" 'हेतुबिन्दुतर्कटीका' में भी जैन मुनि के धर्म का उल्लेख 'क्षपणक' और 'अह्रीक' नाम से हुआ है तथा श्वेताम्बराचार्य श्री वादिदेवसूरि ने भी अपने 'स्याद्वाद—रत्नाकर' ग्रंथ में दिगम्बर जैनों का उल्लेख अह्रीक नाम से किया है। (स्याद्वादरत्नाकर, पृ. २३०)[८]

---

१. ठाणा०, पृ ५६१।
२. भमबु०, पृ १०, २५५।
३. "वीर", वर्ष ४, पृ. ३५३।
४. अचेलकोऽतिनिच्चेलो नग्गो।' I.HO. III. p. 245।
५. वृजेश०, पृ. ४।
६. आचा०, पृ. २१०।
७. दाठा०, पृ १४।
८. पुरातत्व वर्ष ५, अंक ४, पृ. २६६, २६७।

८.आर्य– दिगम्बर मुनि। दिगम्बराचार्य शिवार्य अपने दिगम्बर गुरुओं का उल्लेख इसी नाम से करते हैं[१] –

"अज्ज जिणणंदिगणि, सव्वगुत्तगणि अज्जमित्तणंदीणं।
अवगमिय पादमूले सम्मंसुत्तं च अत्थं च।।
पुव्वायरिय णिवद्धा उपजीवित्ता इमा ससत्तीए।
आराधण सिवज्जेण पाणिदल भोजिणा रइदा।"

यह सब आर्य (साधु) पाणिपात्रभोजी दिगम्बर थे।

९.ऋषि– दिगम्बर साधु का एक भेद है (यह शब्द विशेषतया ऋद्धिधारी साधु के लिए व्यवहृत होता है) श्री कुन्दकुन्दाचार्य इसका स्वरूप इस प्रकार निर्दिष्ट करते हैं[२] –

'णय, राय, दोस, मोहो, कोहो, लोहो, य जस्स आयत्ता।
पंच महव्वयधारा आयदणं महरिसी भणियं ।।६।।'

अर्थात्– मद, राग, दोष, मोह, क्रोध, लोभ, माया आदि से रहित जो पंचमहाव्रतधारी हैं, वह महाऋषि हैं।

१०.गणी–मुनियों के गण में रहने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से प्रसिद्ध होते हैं। 'मूलाचार' में इसका उल्लेख निम्न प्रकार हुआ है–

"विस्समिदो तद्दिवसं मीमंसित्ता णिवेदयदि गणिणो।"[३]

११.गुरु– शिष्यगण–मुनि श्रावकादि के लिये धर्मगुरु होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से भी अभिहित है। उल्लेख यूं मिलता है–

"एवं आपुच्छित्ता सगवर गुरुणा विसज्जिओ संतो।"[४]

१२.जिनलिंगी– [५]जिनेन्द्र भगवान् द्वारा उपदिष्ट नग्न वेष का पालन करने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

१३.तपस्वी–विशेषतर तप में लीन होने के कारण दिगम्बर मुनि तपस्वी कहलाते हैं। 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में इसकी व्याख्या निम्न प्रकार की गई है–

"विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञान–ध्यान–तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते।।१०।।"[६]

१४.दिगम्बर– दिशायें उनके वस्त्र हैं इसलिये जैन मुनि दिगम्बर हैं। मुनि कनकामर अपने को जैन मुनि हुआ दिगम्बर शब्द से ही प्रकट करते हैं–

---

१. जैहि., भा. १२, पृ. ३६०।
२. अष्ट., पृ. ११४।
३. मूला., पृ. ७५।
४. मूला, पृ.६७।
५. वृजेश., पृ. ४।
६. र.श्रा., पृ. ८।

"वइरायहं हुवइं दियंबरेण।
सुप्रसिद्ध णाम कणयामरेण।।[1]

हिन्दू पुराणादि ग्रन्थों में भी जैन मुनि इस नाम से उल्लिखित हुए हैं।[2]

१५. **दिग्वास**– यह भी नं. १४ के भाव में प्रयुक्त हुआ जैनेतर साहित्य में मिलता है। 'विष्णु पुराण' में (५ । १०) में हैं–दिग्वाससामयं धर्मः।

१६. **नग्न**–यथाजातरूप जैन मुनि होते है, इसलिये वह नग्न कहे गए हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी ने इस शब्द का उल्लेख यों किया है–

"भावेण होइ णग्गो, वाहिरलिंगेण किं च णग्गेण।"[3]

वराहमिहिर कहते हैं–"नग्नान् जिनानां विदुः।[4]

१७. **निश्चेल**– वस्त्र रहित होने के कारण यह नाम है। उल्लेख इस प्रकार हैं–

"णिच्चेल पाणिपत्तं उवइट्ठं परम जिणवरिंदेहिं।"[5]

१८. **निर्ग्रंथ**– ग्रंथ अर्थात् अन्तर–बाहर सर्वथा परिग्रह रहित होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध हैं। "धर्मपरीक्षा" में निर्ग्रंथ साधु को बाह्याभ्यन्तर ग्रन्थ (परिग्रह) रहित नग्न ही लिखा है–

'त्यक्तबाह्यान्तरग्रंथो निःकषायो जितेन्द्रियः।
परीषहसहः साधुर्जातरूपधरो मतः ।।१८।।७६।।'

"मूलाचार" में भी अचेलक मूल गुण की व्याख्या करते हुये साधु को निर्ग्रंथ भी कहा गया है–

"वत्थाजिणवक्केण य अहवा पत्तादिणा असंवरणं।[6]
णिब्भूसण णिग्गंथं अच्चेलक्कं जगदि पूज्जं।।३०।।"

'भद्रबाहु चरित्र' के निम्न श्लोक भी 'निर्ग्रंथ शब्द का भाव दिगम्बर प्रकट करते हैं[7]–

'निर्ग्रंथ–मार्गमुत्सृज्य सग्रन्थत्वेन ये जडाः।
व्याचक्षन्ते शिवं नृणां तद्वचो न घटामटेत ।।९५।।'

अर्थ–"जो मूर्ख लोग निर्ग्रंथ मार्ग के बिना परिग्रह के सद्भाव में भी मनुष्यों को मोक्ष का प्राप्त होना बताते हैं। उनका कहना प्रमाणभूत नहीं हो सकता।"

---

१. वीर, वर्ष ४, पृ. २०१।

२. विष्णु पुराण में है 'दिगम्बरो मुण्डो बर्हपत्रधरः' (५–२), पद्मपुराण (भूमिखण्ड, अध्याय ६६), प्रबोधचन्द्रोदयनाटक, अंक ३ (दिगम्बर सिद्धान्तः, पंचतन्त्रः "एकाकी गृहसंत्यक्त पाणिपात्रो दिगम्बरः।" –पंचतन्त्र

३. अष्ट., पृ. २००।

४. वराहमिहिर, १९ ।६१।

५. अष्ट. पृ. ६३।

६. मूला. पृ. १३।

७. भद्र., ७८ व ८६।

"अहो निर्ग्रंथता शून्यं किमिदं नौतनं मतम्।
न मेऽत्र युज्यते गन्तुं पात्रदण्डादिमण्डितम्।।१४५।।"

अर्थ–"अहो। निर्ग्रंथतारहित यह दण्ड पात्रादि सहित नवीन मत कौन है? इनके पास मेरा जाना योग्य नहीं है।"

'भगवन्मदाग्रहादग्न्या गृहणीतामर–पूजिताम्।
निर्ग्रंथपदवीं पूतां हित्वा संगं मुदाऽखिलम्।।१४९।।

अर्थ–"भगवन! मेरे आग्रह से आप सब परिग्रह छोड़करपहले ग्रहण की हुई देवताओं से पूजनीय तथा पवित्र निर्ग्रंथ अवस्था ग्रहण कीजिये।" 'संग' शब्द का अर्थ अगले श्लोक में 'संगं वस्त्रादिकम्-अखिलं' लिखा है। अतः यह स्पष्ट है कि निर्ग्रंथ अवस्था वस्त्रादिरहित दिगम्बर है। किन्तु दुर्भाग्य से जैन–समाज में कुछ ऐसे लोग हो गए हैं जिन्होंने शिथिलाचार के पोषण के लिए वस्त्रादि परिग्रहयुक्त अवस्था को भी निर्ग्रंथ मार्ग घोषित कर दिया है। आज उनका संप्रदाय **'श्वेताम्बरजैन'** नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि उनके पुरातन ग्रंथ दिगम्बर वेष को प्राचीन और श्रेष्ठ मानते हैं, किन्तु अपने को प्राचीन संप्रदाय प्रकट करने के लिये वह वस्त्रादि युक्त भी निर्ग्रंथ मार्ग प्रतिपादित करते हैं। यह मान्यता पुष्ट नहीं है। इसलिये संक्षेप में इस पर यहाँ विचार कर लेना समुचित है।

श्वेताम्बर ग्रंथ इस बात को प्रकट करते हैं कि दिगम्बर (नग्न) धर्म को भगवान् ऋषभदेव ने पालन किया था–वह स्वयं दिगम्बर रहे थे[१] और दिगम्बर वेष इतर वेषों से श्रेष्ठ हैं[२], तथापि भगवान् महावीर ने निर्ग्रंथ श्रमण और दिगम्बरत्व का प्रतिपादन किया था और आगमी तीर्थंकर भी उसका प्रतिपादन करेंगे, यह भी श्वेताम्बर शास्त्र प्रकट करते हैं।[३] अतः स्वयं उनके अनुसार भी वस्त्रादियुक्त वेष श्रेष्ठ और मूल निर्ग्रंथ धर्म नहीं हो सकता।

"श्वेताम्बराचार्य श्री आत्माराम जी ने भी अपने "तत्त्वनिर्णयप्रासाद" में 'निर्ग्रंथ' शब्द की व्याख्या दिगम्बर भावपोषक रूप में दी है, यथा–

---

१. 'कल्पसूत्र'–J.S.Pt.I.,P.285।

२. आचारांग सूत्र में कहा है–

Those are called naked, who in this world, never returning (to a worldy state), (follow) my religion according to the commandment. This highest doctrine has here been declared for men"–J.S.I,P.56.

"आवरण वज्जियाणं विसुद्धजिणकप्पियाणन्तु।"

अर्थ–"वस्त्रादि आवरणयुक्त साधु से रहित जिनकल्पि साधु विशुद्ध है। संवत् १९३४ में मुद्रित प्रवचनसारोद्धार, भाग ३, पृ. १३।

३. "सजहानामए अज्जोमए समणाणं निग्गंथाणं नग्गभावे मुण्ड भावे अण्हाणए अदन्तवणे अच्छत्तए अणुवाहणए भूमिसेज्जा फलग–सेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे

'कथा कौपीनोत्तरा संगादीनाम् त्यागिनों यथा जातरूपधरा निर्ग्रंथा निष्परिग्रहाः।' जैनेतर साहित्य और शिलालेखीय साक्षी भी उक्त व्याख्या की पुष्टि करती है। वैदिक साहितत्य में 'निर्ग्रंथ' शब्द का व्यवहार 'दिगम्बर' साधु के रूप में ही हुआ मिलता है। टीकाकार उत्पल कहते हैं[1]–

"निर्ग्रंथों नग्नः क्षपणकः।"

इसी तरह सायणाचार्य भी निर्ग्रंथ शब्द को दिगम्बर मुनि का द्योतक प्रकट करते हैं[2]–

"कथा कौपीनोत्तरा संगादिनाम् त्यागिना, यथाजातरूपधरा निर्ग्रंथा निष्परिग्रहाः। इति संवर्तश्रुतिः।

हिन्दूपद्मपराण' में दिगम्बर जैन मुनि के मुख से कहलाया गया है–

"अर्हन्तो देवता यत्र, निर्ग्रंथो गुरुरुच्यते।"

अब यदि निग्रंथ के भाव वस्त्रधारी साधु के होते तो दिगम्बर मुनि उसे अपने धर्म का गुरु न बताते। इससे स्पष्ट है कि यहाँ भी निर्ग्रंथ शब्द दिगम्बर मुनि के रूप में व्यवहृत हुआ है।

"ब्रह्माण्डपुराण" के उपोद्घात ३, अ. १४, पृ. १०४ में है–

"नग्नादयो न पश्येयुः श्राद्धकर्म–व्यवस्थितम्।।३४।।"

अर्थात–"जब श्राद्धकर्म में लगे तब नग्नादिकों को न देखे।" और आगे इसी पृष्ठ पर ३९ वें श्लोक में लिखा है कि नग्नादिक कौन हैं?

"वृद्ध श्रावक निर्ग्रंथाः इत्यादि"।[3]

वृद्ध श्रावक शब्द क्षुल्लक–ऐलक का द्योतक है तथा निर्ग्रंथ शब्द दिगम्बर मुनि का द्योतक है अर्थात् जैन धर्म के किसी भी गृहत्यागी साधु को श्राद्धकर्म के समय

लद्धावलद्ध वित्तीओ जाव पण्णत्ताओ एवामेव महा पउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं नग्गभावे जाव लद्धावलद्ध वित्तीओ जाव पन्नवेहित्ति।" अर्थात्–भगवान महावीर कहते हैं कि श्रमण निर्ग्रंथ को नग्नभाव, मुण्डभाव, अस्नान, छत्र नहीं करना, पगरखी नहीं पहनना, भूमिशैया, केशलोंच, ब्रह्मचर्य पालन, अन्य के ग्रह में भिक्षार्थ जाना, आहार की वृत्ति जैसे मैंने कहीं वैसे महापद्म अरहंत भी कहेंगे। ठाणा, पृ. ८१३।

'नगिणापिंडोलगाहमा। मुण्डाकण्डू विणट्ठण ।।७२।। –सयडांग

'अहाइ भगवं एवं–से दंते दविए वोसट्ठकाएत्रिवच्चे–माहणोत्ति व, समणेत्ति वा, 'भिक्खूलित्रा, णिग्गंथेत्ति वा पडिभाह भेते।' –सूयडांग, २५८

१. I.H.Q.III., 245.

२. तत्वनिर्णयप्रसाद, पृ. ५२३ व दि. जै. १०–१–४८.

३. वे जै. पृ. १४।

नहीं देखना चाहिये, क्योंकि संभव है कि वह उपदेश देकर उसकी निस्सारता प्रकट कर दें। अतः वैदिक साहित्य के उल्लेखों से भी निर्ग्रंथ शब्द नग्न साधु के लिये प्रयुक्त हुआ सिद्ध होता है।

बौद्ध साहित्य भी इस ही बात का पोषण करता है।उसमें 'निर्ग्रंथ' शब्द साधु रूप में सर्वत्र नग्न मुनि के भाव में प्रयुक्त हुआ मिलता है। भगवान् महावीर को बौद्ध साहित्य में उनके कुल अपेक्षा निग्रंथ नातपुत्त कहा है[१] और श्वेताम्बर जैन साहित्य से भी यह प्रकट है कि निर्ग्रंथ महावीर दिगम्बर रहे थे। बौद्ध शास्त्र भी उन्हें निर्ग्रंथ और अचेलक[२] प्रकट करते हैं। इससे स्पष्ट है कि बौद्धों ने 'निर्ग्रंथ' और 'अचेलक' शब्दों को एक ही भाव (Sense) में प्रयुक्त किया है अर्थात् नग्न साधु के रूप में , तथापि बौद्ध साहित्य के निम्न उद्धरण भी इस ही बात के द्योतक हैं–

'दीघनिकाय ग्रंथ (१ । ७८–७९ में लिखा है कि[३]–

"Pasendi, King of Kosal saluted Niganthas."

अर्थात्–कौशल का राजा पसनदी (प्रसेनजित) निर्ग्रंथो (नग्न जैन मुनियों) को नमस्कार करता था।

बौद्धों के 'महावग्ग' नामक ग्रंथ में लिखा है कि "एक बड़ी संख्या में निर्ग्रंथगण वैशाली में सड़क–सड़क और चौराहे–चौराहे पर शोर मचाते दौड़ रहे थे।" इस उल्लेख से दिगम्बर मुनियों का उस समय निर्बाध रूप मे राज मार्गों से चलने का समर्थन होता है। वे अष्टमी और चतुर्दशी को इकट्ठे होकर धर्मोपदेश भी दिया करते थे।[४]

'विशाखावत्थु' में भी निर्ग्रंथ साधु को नग्न प्रकट किया गया है।[५] 'दीघनिकाय' के 'पासादिक सुत्तन्त' में है कि "जब निगन्ठ नातपुत्त का निर्वाण हो गया तो निग्रंथ मुनि आपस में झगड़ने लगे। उनके इस झगड़े को देखकर श्वेत वस्त्रधारी गृही श्रावक बड़े दुःखी हुये।[६] अब यदि निर्ग्रंथ साधु भी श्वेत वस्त्र पहनते होते तो श्रावकों के लिये एक विशेषण रूप में न लिखे जाते। अतः इससे भी 'निर्ग्रंथ साधु' का नग्न होना प्रकट है।

---

१. मज्झिमनिकाय १ । ९२, अंगुत्तरनिकाय १ । २२० ।

२. जातक भा. २, पृ. १८२, भमबु. २४५ ।

३. Indian Historical Quarterly. Vol. I. p. 153.

४. महावग्ग २।१।१ और भ. महावीर और म. बुद्ध, पृ २४० ।

५. भमबु. पृ. २५२ ।

६. "तस्स कालकिरियाय भिन्ना निगण्ठ द्वेधिक जाता, भण्डन जाता कलह जाता वधो एवं खोमञ्ञेनिगण्ठेसु नाथ पुत्तियेसु वत्तति ये पि निगण्ठस्स नाथपुत्तस्स सावका गिही ओदातवसना...दु रक्खाते इत्यादि। (PTS.III.117 । 18) भमबु, पृ २१४।

'दाठावंसो' में अहिरिक' शब्द के साथ–साथ **निगण्ठ** शब्द का प्रयोग जैन साधु के लिये हुआ मिलता है[1] और 'अहीक' या 'अहिरिक' शब्द नग्नता का द्योतक है। इसलिये बौद्ध साहित्यानुसार भी निर्ग्रंथ साधु को नग्न मानना ठीक है।

शिलालेखीय साक्षी भी इसी बात को पुष्ट करती है। कदम्बवंशी महाराज श्री विजयशिवमृगेश वर्मा ने अपने एक ताम्रपत्र में अर्हंत भगवान और श्वेताम्बर महाश्रमण संघ तथा निर्ग्रंथ अर्थात् दिगम्बर महाश्रमण संघ के उपभोग के लिये कालवंग नामक ग्राम को भेंट में देने का उल्लेख किया है।[2]

यह ताम्रपत्र ई. पाँचवी शताब्दी का है। इससे स्पष्ट है कि तब के श्वेताम्बर भी अपने को निर्ग्रंथ न कहकर दिगम्बर संघ को ही निर्ग्रंथ संघ मानते थे। यदि यह बात न होती तो वह अपने को 'श्वेतपट' और दिगम्बर को 'निर्ग्रंथ' न लिखाने देते।

कदम्ब ताम्रपत्र के अतिरिक्त विक्रम सं. ११६१ का ग्वालियर से मिला एक शिलालेख भी इसी बात का समर्थन करता है। उसमें दिगम्बर जैन यशोदेव को 'निर्ग्रंथनाथ' अर्थात् दिगम्बर मुनियों के नाथ श्री जिनेन्द्र का अनुयायी लिखा है। अतः इससे भी स्पष्ट है कि 'निर्ग्रंथ' शब्द दिगम्बर मुनि का द्योतक है।[3]

चीनी यात्री ह्वेनसांग के वर्णन से भी यही प्रकट होता है कि 'निर्ग्रंथ' का भाव नग्न अर्थात् दिगम्बर मुनि हैं–

The Li-hi (Nigranth's) distinguish themselves by leaving their bodies naked and pulling out their hair" (St. Julien, Vienna, p.224).

अतः इन सब प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि 'निर्ग्रंथ' शब्द का ठीक भाव दिगम्बर (नग्न) मुनि का है।

१९. **निरागार**– आगार–घर आदि परिग्रह रहित दिगम्बर मुनि। 'परिगहरहिओ निरायारो'।

---

१. 'इसमें अहिरिका सव्वे सद्धादिगुण वज्जिता। यद्धा सठाच दुप्पज्जासग्गमोक्ख विबन्धका ।।८८।। इति सो चिन्तयित्वान गुहसीवो नराधिपो। पव्वाजेसि सकारट्ठा निगण्ठे ते अपेसके।।८९।। –दाठावंसो, पृ. १४

२. कदम्बनां श्री विजयशिवमृगेशं वर्मा कालवगं ग्रामं त्रिधा विभज्य दत्तवान् अत्रपूर्व्वमर्हच्छाला परमपुष्कलस्थान निवासिभ्यः भगवदर्हन्महाजिनेन्द्र देवताभ्य एकोभागः द्वितीयोर्हत्प्रोक्तसद्धर्मकरण परस्य श्वेतपट महाश्रमणसंघोपभोगाय तृतीयो निर्ग्रंथमहाश्रमणसंघोपभोगायेति... । –जैहि., भा. १४, पृ. २२९।

3. The Gwalior inscrips of Vik. 1161 (1104 A.D.).

"It was composed by a Jaina Yasodeva, who was an adherent of the digambara or nude sect (Nigranthanatha)."–Catalogue of Archaeological Exhibits in the U.P.P. Museum, Lucknow, Pt.I (1915), p. 44.

२०. **पाणिपात्र–** करपात्र ही जिनका भोजनपात्र है, वह दिगम्बरमुनि।

'णिच्चेल पाणिपत्तं उवइट्ठं परम जिणवरिंदेहिं।'

२१. **भिक्षुक–** भिक्षावृत्ति का धारक होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से प्रसिद्ध होता है। इसका उल्लेख 'मूलाचार' में मिलता है–

'मणवचकायपउत्ती भिक्खू सावज्जकज्जसंजुत्ता।
खिप्पं णिवारयंतो तिहि दु गुत्तो हवदि एसो।।३३१।।

२२. **महाव्रती**[2]–पंच महाव्रतों को पालन करने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से प्रगट हैं।

२३. **माहण**–ममत्व त्यागी होने के कारण माहण नाम से दिगम्बर मुनि अभिहित होता है।

२४. **मुनि–** दिगम्बर साधु श्री कुन्दकुन्दाचार्य इस का उल्लेख यूँ करते हैं[3]–

"पंच महव्वयजुत्ता पंचिंदिय संजमा णिरावेक्खा।
सज्झायझाणजुत्ता मुणिवर वसहा णिइच्छांति।।'

२५. **यति–** दिगम्बर मुनि कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं–

"सुद्धं संजमचरणं जइधम्मं णिक्कलं वोच्छे"[4]

२६. **योगी–**योगनिरत होने के कारण दिगम्बर साधु का यह नाम है। यथा[5]–

"जं जाणियूण जोई जो अत्थो जोइ ऊण अणवरयं।
अव्वाबाहमणंतं अणोवयं लहइ णिव्वाणं।।"

२७. **वातवसन**–वायुरूपी वस्त्रधारी अर्थात् दिगम्बर मुनि।

"श्रमण दिगम्बराः श्रमण वातवसनाः" –इतिनिघण्टुः

२८. **विवसन–** वस्त्र रहित मुनि। वेदान्तसूत्र की टीका में दिगम्बर जैन मुनि 'विवसन' और 'विसिच्' कहे गए हैं।[6]

२९. **संयमी(संयत)**–यमनियमों का पालक सो दिगम्बर मुनि। उल्लेख यूं है–

"पंचमहव्वय जुत्तो तिहि गुत्तिहिं जो स संजदो होइ।"[7]

३०. **स्थविर–** दीर्घ तपस्वी रूप दिगम्बर मुनि। 'मूलाचार' में उल्लेख इस प्रकार है[8] –

"तत्थ ण कप्पइ वासोजत्थ इमे णत्थि पंच आधारा।

---

१. वृजेश, पृ. ४।
२. अष्ट. पृ.१४२।
३. अष्ट., पृ.९९।
४. अष्ट., पृ. २९०।
५. अष्ट., पृ. २९०।
६. वेदान्तसूत्र २–२–३३ – शंकरभाष्य–वीर, वर्ष २, पृ. ३१७।
७. अष्ट., पृ.७१।
८. मूला., पृ.७१।

आइरियउवज्झाया पवत्त थेरा गणधरा य।।"

३१. साधु–आत्मसाधना में लीन दिगम्बर मुनि। इनको भी कुछ परिग्रह न रखने का विधान है[१]–

३२. संन्यस्त[२]– संन्यास ग्रहण किये हुए होने के कारण दिगम्बर मुनि इस नाम से भी प्रख्यात हैं।

३३. श्रमण–अर्थात् समरसी भाव सहित दिगम्बर साधु। उल्लेख यूँ है–

'वंदे तव समणाणं' (वन्दे तव श्रमणान्)[४]

'**समणोमेत्ति** य पढमं विदियं सव्वत्थ संजदो मेत्ति।'[५]

३४. क्षपणक–नग्न साधु। दिगम्बराचार्य योगीन्द्र देव ने यह शब्द दिगम्बर साधु के लिए प्रयुक्त किया है[६]–

"तरुणउ बूढउ रूयडउ सूरउ पंडिउ दिव्वु।
खवणउ वंदउ सेवडउमूढ़उ मण्णइ सव्वु।।८३।।

श्वेताम्बर जैन ग्रंथो में भी दिगम्बरमुनियों के लिये यह शब्द व्यवहृत हुआ है[७]–

"खोमाणराजकुलजोऽपिसमुद्र सूरि
र्गच्छं शशास किल दपवण प्रमाण (?)।
जित्वा तदा क्षपणकान्स्ववशं वितेने
नागेंद्रदे (?) भुजगनाथनमस्य तीर्थं।"

श्री मुनिसुन्दर सुरि ने अपनी गुर्वावली में इस श्लोक के भाव में 'क्षपणकान्' की जगह '**दिगवसनान्**' पद का प्रयोग करके इसे दिगम्बर मुनि के लिये प्रयुक्त हुआ स्पष्ट कर दिया है।[८] श्वेताम्बराचार्य हेमचन्द्र ने अपने कोष में 'नग्न' का पर्यायवाची शब्द '**क्षपणक**'भी दिया है।[९] यही बात श्रीधरसेन के कोष से भी प्रकट है।[१०] अजैन शास्त्रों में भी 'क्षपणक' शब्द दिगम्बर जैन साधुओं के लिए व्यवहत हुआ मिलता है। 'उत्पल'कहताहै?[१]–

"निर्ग्रंथो नग्नः क्षपणकः।"

"अद्वैतब्रह्मसिद्ध" (पृ.१६९) से भी यही प्रकट है–

---

१. अष्ट पृ. ६७।
२. वृजेश. पृ.४।
३. अष्ट, पृ. ३७।
४. मूला., पृ. ४५।
५. 'परमात्म प्रकाश'– रश्रा. पृ. १४०
६. रश्रा., पृ.१३९।
७. रश्रा., पृ. १४०।
८. 'नग्नो विवाससि मागधे च क्षपणके।'
९. 'नग्नस्त्रिषु विवस्त्रे स्यात्पुंसि क्षपणवन्दिनोः।'

"क्षपणका जैनमार्गसिद्धान्तप्रवर्तका इति केचित्।"

"प्रबोधचंद्रोदय नाटक" (अंक ३) में भी यही निर्दिष्ट किया गया है[२]–

"क्षपणकवेशो दिगम्बरसिद्धान्तः।"

"पंचतंत्र–अपरीक्षितकारकतंत्र"[३] "दशकुमार चरित्र"[४]" था"मुद्राराक्षस–नाटक"[५] में भी "क्षपणक" शब्द दिगम्बर मुनि के लिए व्यवहृत हुआ मिलता है। मोनियर विलियम्स के 'संस्कृत कोष' में भी इसका अर्थ यही लिखा है।[६]

इस प्रकार उपर्युक्त नामों से दिगम्बर जैन मुनि प्रसिद्ध हुये मिलते हैं। अतएव इनमें से किसी भी शब्द का प्रयोग दिगम्बर मुनि का द्योतक ही समझना चाहिये।

---

१. IHQ.III,245, 13 J.G.,XIV,48.

२. J.G., XIV,48.

३. (क्षपणक विहार गत्वा)–'एकाकीगृहसंत्यक्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।'

४. द्वितीय उच्छ्‌वास, वीर, वर्ष २, पृ. ३१७।

५. मुद्राराक्षस, अंक ४–वीर, वर्ष ५, पृ. ४३०

6. " kaspnaka is a religious mendicant, specially a Jain mendicant who wears no garment." – Monier William's, Sanskrit Dictionary, p.326.

इतिहासातीत काल में दिगम्बर मुनि

"आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः
रूपमुपसदा मेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता।"

–यजुर्वेद, अ.१९.मंत्र १४

भारतवर्ष का ठीक-ठीक इतिहास ईस्वी पूर्व आठवीं शताब्दी तक माना जाता है। इसके पहले की कोई भी बात विश्वसनीय नहीं मानी जाती, यद्यपि भारतीय विद्वान अपनी-अपनी धार्मिक-वार्ता इस काल से भी बहुत प्राचीन मानते और उसे विश्वसनीय स्वीकार करते हैं। उनकी यह वार्ता 'इतिहासातीत काल' की वार्ता समझनी चाहिये। दिगम्बर मुनियों के विषय में भी यही बात है। भगवान ऋषभदेव द्वारा एक अज्ञात अतीत में दिगम्बर मुद्रा का प्रचार हुआ और तब से वह ईस्वी पूर्व आठवीं शताब्दी तक ही नहीं बल्कि आज तक निर्बाध प्रचलित है। दिगम्बर मुद्रा के इस इतिहास की एक सामान्य रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत करना अभीष्ट है।

इतिहासातीत काल में प्राचीन जैन शास्त्र अनेक जैन-सम्राट और जैन तीर्थंकरों का होना प्रकट करते है और उनके द्वारा दिगम्बर मुद्रा का प्रचार भारत में ही नहीं बल्कि दूर-दूर देशों तक हो गया था। दिगम्बर जैन आम्नाय के प्रथमानुयोग सम्बन्धी शास्त्र इस कथा-वार्ता से भरे हुये हैं, उनको हम यहाँ दुहराना नहीं चाहते, प्रत्युत जैनेतर शास्त्रों के प्रमाणों को उपस्थित करके हम यह सिद्ध करना चाहते हैं कि दिगम्बर मुनि प्राचीन काल से होते आये हैं और उनका विहार सर्वत्र निर्बाध रूप से होता रहा है।

भारतीय साहित्य में वेद प्राचीन ग्रंथ माने गये हैं। अतः सबसे पहिले उन्हीं के आधार से उक्त व्याख्या को पुष्ट करना श्रेष्ठ है। किन्तु इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि वेदों के ठीक-ठीक अर्थ आज नहीं मिलते और भारतीय धर्मों के पारस्परिक विरोध के कारण बहुत से ऐसे उल्लेख उनमें से निकाल दिये गये अथवा अर्थ बदलकर रखे गए हैं जिनमें वेद-बाह्य सम्प्रदायों का समर्थन होता था। इसी के साथ यह बात भी है कि वेदों के वास्तविक अर्थ आज ही नहीं मुद्दतों पहले लुप्त हो चुके थे[१] और यही कारण है कि एक ही वेद के अनेक विभिन्न भाष्य मिलते हैं। अतः वेदों के मूल वाक्यों के अनुसार उक्त व्याख्या की पुष्टि करना यहाँ अभीष्ट है।

---

१. ई. पूर्व. ७ वीं शताब्दि का वैदिक विद्वान कौत्स्य वेदों को अनर्थक बतलाता है। (अनर्थका हि मंत्राः। यास्क, निरुक्त १५-१) यास्क इसका समर्थन करता है। (निरुक्त १६। २ देखो 'Asur India', p.1, V)।

'यजुर्वेद (अ. १९, मंत्र १४) में, जो इस परिच्छेद के आरंभ में दिया हुआ है, अन्तिम तीर्थंकर महावीर का स्मरण नग्न विशेषण के साथ किया गया है। 'महावीर' और 'नग्न' शब्द जो उक्त मन्त्र में प्रयुक्त हुये हैं उनके अर्थ कोष ग्रंथो में अंतिम जैन तीर्थंकर और दिगम्बर ही मिलते हैं।[१] इसलिये इस मंत्र का सम्बन्ध भगवान् महावीर से मानना ठीक है। वैसे बौद्ध साहित्यादि से स्पष्ट है कि महावीर स्वामी नग्न साधु थे। इस अवस्था में उक्त मंत्र में 'महावीर' शब्द 'नग्न' विशेषण सहित प्रयुक्त हुआ, जो इस बात का द्योतक है कि उसके रचयिता को तीर्थंकर महावीर का उल्लेख करना इष्ट है। इस मंत्र में जो शेष विशेषण है वह भी जैन तीर्थंकर के सर्वथा योग्य हैं और इस मंत्र का फल भी जैन शास्त्रानुकूल है। अतः यह मंत्र भगवान् महावीर को दिगम्बर मुनि प्रकट करता है।

किन्तु भगवान महावीर तो ऐतिहासिक महापुरुष मान लिये गये हैं, इसलिये उनसे पहले के वैदिक उल्लेख प्रस्तुत करना उचित है। सौभाग्य से हमें ऋक्संहिता (१० । १३६-२) में ऐसा उल्लेख निम्न शब्दों में मिल जाता है-

"मुनयो वातवसनाः।"

भला यह वातवसन-दिगम्बर मुनि कौन थे? हिन्दू पुराण ग्रंथ बताते हैं कि वे दिगम्बर जैन मुनि थे। जैसे कि हम पहले देख चुके हैं और भी देखिये, श्रीमद्भागवत् में जैन तीर्थंकर ऋषभदेव ने जिन ऋषियों को दिगम्बरत्व का उपदेश दिया था, वे 'वातरशनानां श्रमण' कहे गये हैं।[२] ओ. अल्ब्रेट वेबर भी उक्त वाक्य को दिगम्बर जैन मुनियों के लिये प्रयुक्त हुआ व्यक्त करते हैं।[३]

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद (अ.१५) में जिन 'व्रात्य' पुरुषों का उल्लेख है, वे दिगम्बर जैन ही हैं, क्योंकि व्रात्य 'वैदिक संस्कारहीन' बताये गये हैं[४] और उनकी क्रियायें दिगम्बर जैनों के समान है। वे वेद विरोधी थे। झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, ज्ञातृ, करण, खस और द्राविड़ एक व्रात्य क्षत्री की सन्तान बताये गये हैं[५] और ये सब प्रायः जैन धर्म भुक् थे। ज्ञातृवंश में तो स्वयं भगवान महावीर का जन्म हुआ था, तथापि, मध्यकाल में भी जैनी 'व्रती' (Verteis) नाम से प्रसिद्ध रह चुके हैं, जो 'व्रात्य' से मिलता-जुलता शब्द है।[६] अच्छा तो इन जैन धर्म भुक् व्रात्यों में दिगम्बर जैन मुनि का होना लाज़मी है।[७] 'अथर्ववेद' भी इस बात को प्रकट करता है। उसमें व्रात्य के दो भेद

---

१. वेजै., पृ. ५५-६०।

२. वेजै, पृ. ३।

३. I.A., Vol. XXX, p.280.

४. अमरकोष २ । ८ व मनु., १० । २०. सायणाचार्य भी यही कहते हैं-"व्रात्यो नाम उपनयनादि संस्कारहीनः पुरुषः। सोऽर्थाद् यज्ञादिवेदविहिताः क्रियाः कर्तुं नाधिकारी। इत्यादि" -अथर्ववेद संहिता पृ. २९३

५. मनु.,१० । २२।

६. सुस. पृ. ३९८ व ३९९।

७. 'व्रात्य जैनी है, इसके लिये "भगवान् पार्श्वनाथ" की प्रस्तावना देखिए।

'हीन व्रात्य' और 'ज्येष्ठ व्रात्य' किये हैं। इनमें ज्येष्ठ व्रात्य दिगम्बर मुनि का द्योतक है, क्योंकि उसे 'समनिचमेढ्र' कहा गया है, जिसका भाव होता है 'अपेतप्रजननाः।'[1] यह शब्द 'अह्रीक' शब्द के अनुरूप हैं और इसमें ज्येष्ठ व्रात्य का दिगम्बरत्व स्पष्ट है।

इस प्रकार वेदों से भी दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व सिद्ध है।[2] अब देखिये उपनिषद् भी वेदो का समर्थन करते है। 'जाबालोपनिषद्' **निर्ग्रंथ** शब्द का उल्लेख करके दिगम्बर साधु का अस्तित्व उपनिषद् काल में सिद्ध करता है-

"यथाजातरूपधरो निर्ग्रंथो निष्परिग्रहः ....
शुक्लध्यानपरायणः।" .... (सूत्र ६)

निर्ग्रंथ साधु यथाजातरूपधारी तथा शुक्ल ध्यान परायण होता है। सिवाय निर्ग्रंथ (जैन) मार्ग के अन्यत्र कहीं भी शुक्ल ध्यान का वर्णन नहीं मिलता, यह पहले भी लिखा जा चुका है। 'मैत्रेयोपनिषद्' में 'दिगम्बर' शब्द का प्रयोग भी इसी बात का द्योतक है।[3] 'मुण्डकोपनिषद्' की रचना भृगु अंगरिस नामक एक भ्रष्ट दिगम्बर जैन मुनि द्वारा हुई थी और उसमें अनेक जैन मान्यतायें तथा पारिभाषिक शब्द मिलते हैं। 'निर्ग्रंथ' शब्द, जो खास जैनों का पारिभाषिक शब्द है, इसमें व्यवहृत हुआ है और उसका विश्लेषण केशलोंच (शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णं) दिया है[5] तथा 'अरिष्टनेमि' का स्मरण भी किया है, जो जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर हैं।[4] इससे भी उस काल में दिगम्बर मुनियों का होना प्रमाणित है।

अब 'रामायण काल' में दिगम्बरमुनियों के अस्तित्व को देखिये। **'रामायणके** 'बालकाण्ड' (सर्ग १४, श्लोक . २२) में राजा दशरथ श्रमणों को आहार देते बताये गये है ("तापसा भुञ्जते चापि श्रमण भुञ्जते तथा") और 'श्रमण' शब्द का अर्थ 'भूषणटीका'

---

१. भपा., प्रस्तावना, पृ. ४४-४५।

२. जैन ग्रन्थकार प्रातः स्मरणीय स्व. पं.टोडरमल जी ने आज से लगभग दो-ढाई सौ वर्ष पहले (१) निम्न वेद मंत्रों का उल्लेख अपने ग्रंथ 'मोक्षमार्ग प्रकाश' में किया है और ये भी दिगम्बर मुनियो के द्योतक हैं-

ऋग्वेद में आया है- "ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थंकान् ऋषभाद्या वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्य। ॐ पवित्रं नग्नमुपविप्रसामहे एषां नग्ना जातिर्येषां वीरा इत्यादि।

यजुर्वेद में है-ॐ नमो अर्हतो ऋषभो ॐ ऋषभपवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परममाह संस्तुतं वरं शत्रुं जंयतं पशुरिंद्रमाहूतिरिति स्वाहा।" ॐ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं पुरुषमर्हतमादित्य वर्णा तमसः पुरस्तात् स्वाहा।" (पृ. २०२)

३. "देशकालविमुक्तोऽस्मि दिगम्बर सुखोऽस्म्यहम्" -दिमु.पृ. १०

४. वीर, वर्ष ८, पृ. २५३।

५. स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः।' -ईशाद्य, पृ. १४

में दिगम्बर मुनि किया गया है,[१] जो ठीक है, क्योंकि दिगम्बर मुनि का एक नाम 'श्रमण' भी है, तथापि जैन शास्त्र राजा दशरथ और रामचन्द्र जी आदि का जैन भक्त प्रगट करते हैं।[२] 'योगवाशिष्ट' में रामचन्द्र जी 'जिन भगवान्' के समान होने की इच्छा प्रकट करके अपनी जैनभक्ति प्रकट करते हैं।[३] अतः रामायण के उक्त उल्लेख से उस काल में दिगम्बर मुनियों का होना स्पष्ट है।

"महाभारत" में भी 'नग्न क्षपणक' के रूप में दिगम्बर मुनियों का उल्लेख मिलता है,[४] जिससे प्रमाणित है कि "महाभारत काल" में भी दिगम्बर जैन मुनि मौजूद थे। जैन शास्त्रानुसार उस समय स्वयं तीर्थंकर अरष्टनेमि विद्यमान थे।

हिन्दू पुराण ग्रंथ भी इस विषय में वेदादिग्रंथो का समर्थन करते हैं। प्रथम जैन तीर्थंकर ऋषभदेवजी को श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण दिगम्बर मुनि प्रगट करते है, यह हम देख चुके। अब 'विष्णुपुराण' में और भी उल्लेख है वह देखिये।[५] वहाँ मैत्रेय पाराशर ऋषि से पूछते है कि 'नग्न' किसको कहते हैं? उत्तर में पाराशर कहते हैं कि " जो वेद को न माने वह नग्न है" अर्थात् वेद विरोधी नंगे साधु 'नग्न' हैं। इस संबंध में देव और असुर संग्राम की कथा कहकर किस प्रकार विष्णु के द्वारा जैन धर्म की उत्पत्ति हुई, यह वह कहते हैं। इसमें भी जैन मुनि का स्वरूप 'दिगम्बर' लिखा है–

"ततो दिगम्बरो मुंडो बर्हिपत्र धरो द्विज।"

देवासुर युद्ध की घटना इतिहासातीत काल की है। अतः इस उल्लेख से भी उस प्राचीन काल में दिगम्बर मुनि का अस्तित्व प्रमाणित होता है तथा वह निर्बाध विहार करते थे, यह भी इससे स्पष्ट है क्योंकि इसमें कहा गया है कि वह दिगम्बर मुनि नर्मदा तट पर स्थित असुरों के पास पहुंचा और उन्हें निज धर्म में दीक्षित कर लिया।[६]

'पद्मपुराण' प्रथम सृष्टि, खण्ड १३ (पृ. ३३) पर जैन धर्म की उत्पत्ति के संबंध में एक ऐसी ही कथा है, जिसमें विष्णु द्वारा मायामोह रूप दिगम्बर मुनि द्वारा जैन धर्म का निकास हुआ बताया गया है–

बृहस्पति साहाय्यार्थ विष्णुना मायामोह समुत्पादनम्
दिगम्बरेण मायामोहने दैत्यान् प्रति जैनधर्मोपदेशः दानवानां
मायामोह मोहितानां गुरुणा दिगंबर जैनधर्म दीक्षा दानम्।

---

१. "श्रमण दिगम्बराः श्रमणा वातवसनाः।"
२. पद्मपुराण देखो।
३. योग वासिष्ट, अ. १५, श्लो. ८।
४. आदिपर्व, अ. ३, श्लो. २६–२७।
५. विष्णुपुराण तृतीयांश, अ. १७–१८ वेजै., पृ. २५ व पुरातत्व ४ । १८० ।
६. पुरातत्व ४ । १७९ ।

मायामोह था। उसमें "योगी दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपत्रधरो ह्ययं" लिखा है।[1] इससे भी उक्त दोनों बातों की पुष्टि होती है।

इसी 'पद्मपुराण' में (भूमि खंड, अ. ६६)[2] में राजा वेण की कथा है। उसमें लिखा है कि एक दिगम्बर मुनि ने उस राजा को जैन धर्म में दीक्षित किया था। मुनि का स्वरूप यूं लिखा है–

"नग्नरूपो महाकायः सितमुण्डो महाप्रभः।
मार्ज्जनीं शिखिपत्राणां कक्षायां स हि धारयन्।।
गृहीत्वा पानपात्रश्च नारिकेलमनीकरे।
पठमानो मरच्छास्त्रं वेदशास्त्रविदूषकम्।।
यत्रवेणो महाराजस्तत्रोपायात्त्वरान्वितः।
सभायां तस्य वेणस्य प्रविवेश सपापवान्।।"

वह नग्न साधु महाराज वेण की राजसभा में पहुंच गया और धर्मोपदेश देने लगा।[3] इससे प्रकट है कि दिगम्बर मुनि राजसभा में भी बेरोक–टोक पहुंचते थे। वेण ब्रह्मा से छठी पीढ़ी में थे।[4] इसलिये यह एक अतीव प्राचीनकाल में हुये प्रमाणित होते हैं।

'वायुपुराण' में भी निर्ग्रंथ श्रमणों का उल्लेख है कि श्राद्ध में इनको न देखना चाहिये।[5]

'स्कंधपुराण' (प्रभासखण्ड के वस्त्रापथ क्षेत्र माहात्म्य, अ.१६ पृ. २२१) में जैन तीर्थंकर नेमिनाथ को दिगम्बर शिव के अनुरूप मानकर जाप करने का विधान है[6]–

"वामनोपि ततश्चक्रे तत्र तीर्थावगाहनम्
यादृग्रूप शिवोदृष्टः सूर्यबिम्बे दिगम्बर ।।९४।।
पद्मासनस्थितः सौम्यस्तथातं तत्र संस्मरन्।
प्रतिष्ठाप्य महामूर्ति पूजयामासवासरम् ।।९५।।
मनोभीष्टार्थ–सिद्ध्यर्थं ततः सिद्धमवाप्तमान्।
नेमिनाथ शिवेत्येवं नामचक्रे शवामनः ।।९६।।"

---

१. वेजै., पृ. १५।

२. R.C. Dutt. Hindu Shastras. Pt VIII. pp. 213–22 & J.G.XIV. 89.

३. उसने बताया कि मेरे मत में–

"अर्हतो देवता यत्र निर्ग्रंथो गुरुरुच्यते।
दया वै परमो धर्मस्तत्र मोक्षः प्रदृश्यते।"

यह सुनकर वेण जैनी हो गया। (एवं वेणस्य वै राज्ञः सुप्टिरेस्व महात्मनः। धर्माचार परित्यज्य कथं पापे मतिर्भवेत्।।) जैन सम्राट् खारवेल के शिलालेख से भी राजा वेण का जैनी होना प्रमाणित है। (जर्नल ऑफ दी बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भा. १३, पृ. २२४)।

४. J.G., XIV, 162.

५. पुरातत्त्व, पु.४, पृ. १८१।

६. वेजै., पृ.३४।

इस प्रकार हिन्दू पुराण ग्रंथ भी इतिहासातीत काल में दिगम्बर जैन मुनियों का होना प्रमाणित करते हैं।

बौद्ध शास्त्रों में भी ऐसे उल्लेख मिलते हैं जो भगवान् महावीर के पहले दिगम्बर मुनियों का होना सिद्ध करते हैं। बौद्ध साहित्य में अंतिम तीर्थंकर निग्रंथ महावीर के अतिरिक्त श्री सुपार्श्व[1] अनन्तजिन[2] और पुष्पदन्त[3] के भी नामोल्लेख मिलते हैं। यद्यपि उनके सम्बन्ध में यह स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि वे जैन तीर्थंकर और नग्न थे, किन्तु जब जैन साहित्य में उस नाम के दिगम्बर वेषधारी तीर्थंकर महामुनीश मिलते हैं, तब उन्हें जैन और नग्न मानना अनुचित नहीं है। वैसे बौद्ध साहित्य भगवान् पार्श्वनाथ के तीर्थवर्ती मुनियों का नग्न प्रकट करता है[4] अतः इस स्त्रोत से भी प्राचीन काल में दिगम्बर मुनियों का होना सिद्ध है।

इस अवस्था में जैन शास्त्रों का यह कथन विश्वसनीय ठहरता है कि भगवान् ऋषभनाथ के समय से बराबर दिगम्बर जैन मुनि होते आ रहे हैं और उनके द्वारा जनता का महत कल्याण हुआ है। जैन तीर्थंकर सब ही राजपुत्र थे और बड़े-बड़े राज्यों को त्यागकर दिगम्बर मुनि हुये थे। भारत के प्रथम सम्राट् भरत, जिनके नाम से यह देश भारतवर्ष कहलाता है, दिगम्बर मुनि हुये थे। उनके भाई श्री बाहुबलि जी अपनी तपस्या के लिए प्रसिद्ध हैं। तपस्वी रूप में उनकी महान् मूर्ति आज भी श्रवणबेलगोल में दर्शनीय वस्तु है। उनकी उस महाकाय नग्नमूर्ति के दर्शन करके स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध भारतीय तथा विदेशी अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। रामचन्द्र जी, सुग्रीव, युधिष्ठर आदि अनेक दिगम्बर मुनि इस काल में हुये हैं, जिनके भव्य चरित्रों से जैन शास्त्र भरे हुये हैं। गतकाल में भारत में दिगम्बरत्व अपनी अपूर्व छटा दर्शा चुका है।

---

१. 'महावग्ग'(१। २२-२३ SEB. p. 144) में लिखा है कि बुद्ध राजगृह में जब पहले-पहले धर्म प्रचार को आए तो लाठी वन में "सुप्पतित्थ्य" के मंदिर में ठहरे। इसके बाद इस मंदिर में ठहरने का उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण यही है कि इस जैन मंदिर के प्रबन्धकों ने जब यह जान लिया कि महात्मा बुद्ध अब जैन मुनि नहीं रहे तो उन्होंने उनका आदर करना रोक दिया। विशेष के लिये देखो भमबु, पृ. ५०-५१।

२. उपक आजीवक अनन्तजिनको अपना गुरु बताता है। आजीविकों ने जैन धर्म से बहुत कुछ लिया था। अतः यह अनन्तजिन तीर्थंकर ही होना चाहिए। आरिय-परियेषण-सुत IHQIII. 247.

३. 'महावस्तु' में पुष्पदंत को एक बुद्ध और ३२ लक्षणयुक्त महापुरुष बताया गया है। -ASM. p. 30.

४. महावग्ग (७०-३) में है कि बौद्ध भिक्षुओं ने नंगे और भोजन पात्रहीन मनुष्यों को दीक्षित कर लिया, जिस पर लोग कहने लगे कि बौद्ध भी "तिथियों" की तरह करने लगे। तिथिय महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर से प्राचीन साधु और खासकर दिगम्बर जैन साधु थे। इसलिये इन्हें पार्श्वनाथ के तीर्थ का मुनि मानना ठीक है। भमबु., पृ. २३६-२३७ व जैसिभ १। २-३। २४-२६, तथा IA., August 1930.

[१०]

भगवान् महावीर और उनके समकालीन दिगम्बर मुनि

'निगण्ठो' आवुसो नाथपुत्तो सव्वज्ञु, सव्वदस्सावी अपरिसेसं ज्ञाण दस्सनं परिजानातिः।'
– मुज्झिमनिकाय

'निगण्ठो नातुपुत्तो संघी चेव गणी च गणाचार्यो च ज्ञातो यसस्सी तित्थकरो साधु सम्मतो बहुजनस्स रत्तस्सू चिर पव्वजितो अद्धगतो वयो अनुप्पत्ता।' –दीघनिकायः

भगवान् महावीर वर्द्धमान ज्ञातृवंशी क्षत्रियों के प्रमुख राजा सिद्धार्थ और प्रियकारिणी त्रिशला के सुपुत्र थे। रानी त्रिशला वज्जियन राष्ट्रसंघ के प्रमुख लिच्छवि–अग्रणी राजा चेटक की सुपुत्री थी। लिच्छवि क्षत्रियों का आवास समृद्धिशाली नगरी वैशाली में था। ज्ञातृक क्षत्रियों की बसती भी उसी के निकट थी। कुण्डग्राम और कोल्लागसन्निवेश उनके प्रसिद्ध नगर थे। भगवान् महावीर वर्द्धमान का जन्म कुण्डग्राम में हुआ था और वह अपने ज्ञातृवंश के कारण "ज्ञातृपुत्र" के नाम से भी प्रसिद्ध थे। बौद्ध ग्रंथों मे उनका उल्लेख इसी नाम से मिलता है और वहाँ उन्हें भगवान् गौतम बुद्ध का समकालीन बताया गया है। दूसरे शब्दों में कहें तो भगवान् महावीर आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले इस धरातल को पवित्र करते थे और वह क्षत्री राजपुत्र थे।[१]

भरी जवानी में ही महावीर जी ने राज–पाट का मोह त्याग कर दिगम्बर मुनि का वेश धारण किया था और तीस वर्ष तक कठिन तपस्या करके वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी तीर्थंकर हो गये थे। 'मज्झिमनिकाय' नामक बौद्ध ग्रन्थ में उन्हें सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और अशेष ज्ञान तथा दर्शन का ज्ञाता लिखा है।[२] तीर्थंकर महावीर ने सर्वज्ञ होकर देश–विदेश में भ्रमण किया था और उनके धर्म प्रचार से लोगों का आत्म–कल्याण हुआ था। उनका विहार संघ सहित होता था और उनकी विनय हर कोई करता था। बौद्ध ग्रंथ 'दीघनिकाय' में लिखा है कि **"निर्ग्रंथ ज्ञातृपुत्र (महावीर) संघ के नेता हैं, गणाचार्य हैं, दर्शन विशेष के प्रणेता हैं, विशेष विख्यात हैं, तीर्थंकर हैं, वह**

---

१. विशेष के लिये हमारा "भगवान् महावीर और महात्मा बुद्ध" नामक ग्रंथ देखो।

२. मज्झिमनिकाय (P.T.S.) भा. १, पृ. ९२–९३।

मनुष्यों द्वारा पूज्य हैं, अनुभवशील हैं, बहुत काल से साधु अवस्था का पालन करते हैं और अधिक वय प्राप्त हैं।"[१]

जैन शास्त्र 'हरिवंशपुराण' में लिखा है कि "भगवान् महावीर ने मध्य के (काशी, कौशल, कौशल्य, कुसंध्य, अश्वष्ट, त्रिगतपञ्चाल, भद्रकार, पाटच्चार, मौक, मत्स्य, कनीय, सूरसेन एवं वृकार्थक), समुद्रतट के (कलिंग, कुरुजांगल, कैकेय, आत्रेय, कांबोज, बाल्हीक, यवनश्रुति, सिंधु, गांधार, सौवीर, सूर, भीरु, दशेरुक, वाडवान, भारद्वाज और काथतोय) और उत्तर दिशा के (तार्ण, कार्ण, प्रच्छाल आदि) देशों में विहार कर उन्हें धर्म की ओर ऋजु किया था।"[२]

भगवान् महावीर का धर्म अहिंसा प्रधान तो था ही, किन्तु उन्होंने साधुओं के लिये दिगम्बरत्व का भी उपदेश दिया था।[३] उन्होंने स्पष्ट घोषित किया था कि जैन धर्म में दिगम्बर साधु ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है। बिना दिगम्बर वेष धारण किये निर्वाण प्राप्त कर लेना असंभव है और उनके इस वैज्ञानिक उपदेश का आदर आबाल–वृद्ध–वनिता ने किया था।

विदेह में जिस समय भगवान् महावीर पहुँचे तो उनका वहाँ के लोगों ने विशेष आदर किया। वैशाली में उनके शिष्यों की संख्या अधिक थी। स्वयं राजा चेटक उनका शिष्य था। अंग देश में जब भगवान् पहुंचे तो वहाँ के राजा कुणिक आजातशत्रु के साथ सारी प्रजा भगवान् की पूजा करने के लिये उमड़ पड़ी। राजा कुणिक कौशाम्बी तक महावीर स्वामी को पहुंचाने गये। कौशाम्बी नरेश ऐसे प्रतिबुद्ध हुये कि वह दिगम्बर मुनि हो गये। मगध देश में भी भगवान् महावीर का खूब विहार हुआ था और उनका अधिक समय राजगृह में व्यतीत हुआ था। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार भगवान् के अनन्य भक्त थे और उन्होंने धर्मप्रभावना के अनेक कार्य किये थे। श्रेणिक के अभयकुमार, वारिषेण आदि कई पुत्र दिगम्बर मुनि हो गये थे। दक्षिण भारत में जब भगवान् का विहार हुआ तो हेमाँग देश के राजा जीवंधर दिगम्बर मुनि हो गये थे। इस प्रकार भगवान् का जहाँ–जहाँ विहार हुआ वहाँ–वहाँ दिगम्बर धर्म का प्रचार हो गया। शतानीक, उदयन आदि राजा, अभय, नंदिषेण आदि राजकुमार शालिभद्र, धन्यकुमार, प्रीतंकर आदि धनकुबेर, इन्द्रभूति, गौतम आदि ब्राह्मण विद्वान, विद्युच्चर आदि सदृश पतितात्मायें– अरे न जाने कौन–कौन भगवान् महावीर की शरण में आकर मुनि हो गये।[४]

---

१. दीघनिकाय। (P.T.S.) भा. १, पृ.४८–४९।

२. हरिवंश पुराण (कलकत्ता), पृ. १८।

३. भमबु. ५४–८० व ठाणा, पृ. ८१३।

४. भमबु., पृष्ठ ९५–९६।

सचमुच अनेक धर्म-पिपासु भगवान् के निकट आकर धर्मामृत पान करते थे। यहाँ तक कि स्वयं महात्मा गौतमबुद्ध और उनके संघ पर भगवान् के उपदेश का प्रभाव पड़ा था। बौद्ध भिक्षुओं ने भी नग्नता धारण करने का आग्रह महात्मा बुद्ध से किया था।[१] इस पर यद्यपि महात्मा बुद्ध ने नग्न वेष को बुरा नहीं बतलाया, किन्तु उससे कुछ ज्यादा शिष्य पाने का लाभ न देखकर उसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया।[२] किन्तु तो भी एक समय नेपाल के तांत्रिक बौद्धों में नग्न साधुओं का अस्तित्व हो गया था।[३] सच बात तो यह है कि नग्न वेष को साधु पद के भूषण रूप में सब ही को स्वीकार करना पड़ता है। उसका विरोध करना प्रकृति को कोसना है। उस पर महात्मा बुद्ध के जमाने में तो उसका विशेष प्रचार था। अभी भगवान् महावीर ने धर्मोपदेश देना प्रारम्भ नहीं किया था कि प्राचीन जैन और आजीविक आदि साधु नंगे घूमकर उसका प्रचार कर रहे थे।[४]

देखिये बौद्ध ग्रंथो के आधार से इस विषय में डॉ. स्टीवेन्सन लिखते हैं[५]-

"(एक तीर्थंक नग्न हो गया।) लोग उसके लिये बहुत से वस्त्र लाये, किन्तु उनको उसने स्वीकार नहीं किया। उसने यहीं सोचा कि 'यदि मैं वस्त्र स्वीकार करता हूँ तो संसार में मेरी अधिक प्रतिष्ठा नहीं होगी। वह कहने लगा कि लज्जा रक्षक के लिए ही वस्त्रधारण किया जाता है और लज्जा ही पाप का कारण है, हम अर्हत् हैं, इसलिए विषय वासना से अलिप्त होने के कारण हमें लज्जा की कुछ भी परवाह नहीं।' इसका यह कथन सुनकर बड़ी प्रसन्नता से वहाँ इसके पाँच सौ शिष्य बन गए, बल्कि जम्बूद्वीप में इसी को लोग सच्चा बुद्ध कहने लगे।"

यह उल्लेख संभवतः मक्खलि गोशाल अथवा पूर्ण काश्यप के सम्बन्ध में है। ये दोनों साधु भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्य परम्परा के मुनि थे।[६] मक्खलि गोशाल भगवान् महावीर से रुष्ट होकर अलग धर्म प्रचार करने लगा था और वह "आजीविक" सम्प्रदाय का नेता बन गया था। इस सम्प्रदाय का निकास प्राचीन जैन धर्म से हुआ था[७] और इसके साधु भी नग्न रहते थे।[८] पूरण-काश्यप गोशाल का साथी और वह भी दिगम्बर रहा था। सचमुच दिगम्बर जैन धर्म पहले से ही चला आ रहा था, जिसका प्रभाव इन लोगों पर पड़ा था।

उस पर भगवान् महावीर के अवतीर्ण होते ही दिगम्बरत्व का महत्व और भी बढ़ गया। यहाँ तक कि दूसरे सम्प्रदायों के लोग भी नग्न वेष धारण करने को लालायित हो गये, जैसा कि ऊपर प्रकट किया गया है।

बौद्धशास्त्रों में निर्ग्रंथ (दिगम्बर) महामुनि महावीर के विहार का उल्लेख भी किया मिलता है। 'मज्झिम निकाय' के 'अभय राजकुमार सुत्त से प्रगट है कि वे

---

१. भमबु., पृ. १०२-११०।

२. 'महावग्ग(८-२८-१) में है कि "एक बौद्ध भिक्षु ने महात्मा बुद्ध के पास नंगे हो आकर कहा कि भगवान् ने संयमी पुरुष की बहुत प्रशंसा की है, जिसने पापों को धो डाला है और कषायों को जीत लिया है तथा जो दयालु, विनयी और साहसी है।हे भगवान्! यह नग्नता कई प्रकार से संयम और संतोष

राजगृह में एक समय रहे थे।[9] 'उपालीसुत' से भगवान महावीर का नालन्द में विहार करना स्पष्ट है। उस समय उनके साथ एक बड़ी संख्या में निर्गंथ साधु थे।[10]

को उपशम करने में कारणभूत है– इससे पाप मिटता, कषाय दमते, दया भाव बढ़ता तथा विनय और उत्साह आता है। अतः यह अच्छा है, यदि आप भी नग्न रहने की आज्ञा दें।' एक श्रमण के लिये यह अयोग्य है। इसलिये इसका पालन नहीं करना चाहिये। हे मूर्ख! तित्थियों की तरह तू भी नग्न कैसे होगा? हे मूर्ख, इससे नये लोग भी दीक्षित न होंगे।"

३. नेपाल में गूढ़ और तांत्रिक नाम की एक बौद्ध धर्म की शाखा है। मि. हाग्सन ने लिखा है कि इस शाखा में नग्न यति रहा करते हैं।' —जैसि भा., १।२–३, पृ. २५.

४. जेम्स एल्वी, प्रो. जैकोबी तथा डा. बुल्हर इस ही बात का समर्थन करते हैं कि दिगम्बरत्व महात्मा बुद्ध के पहले से प्रचलित था और आजीविक आदि तीर्थकों पर जैन धर्म का प्रभाव पड़ा था, यथा–

"In James d' Alwis' paper (Ind. Anti. VIII) on the Six Tirthakas the "Digambaras" appear to have been regarded as an old order of ascetics and all of these heretical teachers betray the influence of Jainism in their doctrines." —IA. IX, 161

Prof. Jacobi remarks : "The preceding four Tirthaks (Makkhali Goshal etc.) appear all to have adopted some or other doctrines or practices, which makes part of the Jaina system, probably from the Jains themselves.... It appears from the preceding remarks that Jaina ideas and practices must have been current at the time of Mahavira and independently of him. This combined with other arguments, leads us to the existence long before Mahavira." —IA., IX, 162.

Prof. T.W. Rhys Davids notes in the "Vinaya Texts" that "the sect now called Jains are divided into two classes, Digambara & Swetambara; the later of which it naked. They are known to be the successors of the school called Niganthas in the Pali Pitakas". —SBE, XIII 41

Dr. Buhler writes, "From Buddhist accounts in their canoniical works as well as in other books, it may be seen that this rival (Mahavira) was a dangerous and influential one and that even in Buddha's time his teaching had spread, considerably.... Also they say in their description of other rivals of Buddha that these in order to gain esteem, copied the Nirganthas and went unclothed, or that they were looked upon by the people as Nirgrantha holy ones, because they happened to lost their clothes." —AISJ, p. 36

५. जैसिभा, १।२–३। २४ "The people bought clothes in an abundance for him, but he (kassapa) refused them as he thought that if he put them on, he would not be treated with the same respect Kassapa said, "Clothes are for the covering of shame and the shame is the effect of sin. I am an Arahat, As I am free from evil desires, I know no shame." etc.–BS. pp. 74–75

६. भमबु., पृ. १७–२१।

७. वीर, वर्ष ३, पृ. ३१२ व भमबु. १७–२१।

८. 'आजीविको ति नग्न–समणको।' पपञ्च–सूदनी १। २०९, IHQ, III, 24

९. मज्झिम. (P.T.S.) भा. १, पृ. ३९२ व भमबु., पृ. १९१।

१०. मज्झिम.१।३७१ व "The M.N. tells us that once Nigantha Nathaputta was at Nalanda with a big retinue of the Niganthas". — AIT, p. 147

सामगामसुत्त से यह प्रकट है कि भगवान ने पावा से मोक्ष प्राप्त की थी।[१] दीघनिकाय का "पासादिक सुत्त" भी इसी बात का समर्थन करता है।[२] "संयुक्तनिकाय" से भगवान महावीर का संघसहित "मच्छिकाखण्ड" में विहार करना स्पष्ट है।[३] ब्रह्मजालसुत्त में राजगृह के राजा अजातशत्रु को भगवान महावीर स्वामी के दर्शन के लिये लिखा गया है।[४] "विनयपिटक" के महावग्ग ग्रंथ से भगवान महावीर का वैशाली में धर्म प्रचार करना प्रमाणित है।[५] एक "जातक" में भगवान महावीर को "अचेलक नातपुत्त" कहा गया है।[६] "महावस्तु" से प्रकट है कि अवन्ती के राजपुरोहित का पुत्र नालक बनारस आया था। वहाँ उसने निर्ग्रंथ नातपुत्त (महावीर को)धर्मप्रचार करते पाया।[७]

दीघनिकाय से स्पष्ट है कि कौशल के राजा पसेनदी ने निर्ग्रंथ नातपुत्त (महावीर) को नमस्कार किया था।[८] उसकी रानी मल्लिका ने निर्ग्रंथों के उपयोग के लिये एक भवन बनवाया था।[९] सारांशतः बौद्ध शास्त्र श्री भगवान महावीर के दिगन्तव्यापी और सफल विहार की साक्षी देते हैं।

भगवान के विहार और धर्म प्रचार से जैन धर्म का विशेष उद्योत हुआ था। जैन शास्त्र कहते हैं कि उनके संघ में चौदह हजार दिगम्बर मुनि थे। जिनमें ९९०० सधारण मुनि, ३०० अंगपूर्वधारी मुनि, १३०० अवधिज्ञानधारी मुनि, ९०० ऋद्धिविक्रिया युक्त, ५०० चार ज्ञान के धारी, ७०० केवलज्ञानी और ९०० अनुत्तरवादी थे। महावीर संघ के ये दिगम्बर मुनि दस गणों में विभक्त थे। और ग्यारह गणधर उनकी देख रेख करते थे।[१०] इन गणधरों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है –

(१) इन्द्रभूति गौतम,(२) वायुभूति,(३) अग्निभूति, ये तीनों गणधर मगध देश के गौर्वर ग्राम के निवासी वसुभूति (शांडिल्य) ब्राह्मण की स्त्री पृथ्वी(स्थिण्डिला) और केसरी के गर्भ से जन्मे थे। गृहस्थाश्रम त्यागने के बाद ये क्रम से गौतम, गार्ग्य और भार्गव नाम से प्रसिद्ध हुए थे। जैन होने के पहले ये तीनों वेद धर्मपरायण ब्राह्मण विद्वान थे। भगवान महावीर के निकट इन तीनों ने अपने कई सौ

---

१. मज्झिम. १। ९३– भमबु. २०२। २. दीघ. III ११७–११८–भमबु. पृ. २१४।
३. संयुक्त ४। २८७ भमबु, पृ. 216।
४. भमबु पृ. २२२।
५. महावग्ग ६। ३१–११–भमबु. पृ. २३१–२३६।
६. जातक २। १८२।
७. ASM.,p.159
८. दीघ. १। ७८–७९–IHQ.I, 153
९. LWB,p.109.
१०. भम. ११७।

शिष्यों सहित जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी और ये दिगम्बर मुनि होकर मुनियों के नेता हुए थे। देश देशान्तर में विहार करके इन्होंने खूब धर्मप्रभावना की थी।[१]

चौथे गणधर व्यक्त कोल्लग सन्निवेश निवासी धनमित्र ब्राह्मण की वारुणी[२] नामक पत्नी की कोख से जन्मे थे। दिगम्बर मुनि होकर यह भी गणनायक हुये थे।

पाँचवें सुधर्म नामक गणधर भी कोल्लग सन्निवेश के निवासी धम्मिल ब्राह्मण के सुपुत्र थे। इनकी माता का नाम भद्दिला था। भगवान महावीर के उपरान्त इनके द्वारा जैन धर्म का विशेष प्रचार हुआ था।[३]

छटे मण्डिक नामक गणधर मौर्य्याख्य देश निवासी धनदेव ब्राह्मण की विजया देवी स्त्री के गर्भ से जन्मे थे। दिगम्बर मुनि होकर यह वीर संघ में सम्मिलित हो गये थे और देश-विदेश में धर्मप्रचार किया था।

सातवें गणधर मौर्यपुत्र भी मौर्याख्य देश के निवासी मौर्यक ब्राह्मण के पुत्र थे। इन्होंने भी भगवान महावीर के निकट दिगम्बरीय दीक्षा ग्रहण करके सर्वत्र धर्म प्रचार किया था।

आठवें गणधर अकम्पन थे, जो मिथिलापुरी निवासी देव नामक ब्राह्मण की जयन्ती नामक स्त्री के उदर से जन्मे थे। इन्होंने भी खूब धर्मप्रचार किया था।

नवें धवल नामक गणधर कोशलापुरी के वसुविप्र के सुपुत्र थे। इनकी माँ का नाम नन्दा था। इन्होंने भी दिगम्बर मुनि हो सर्वत्र विहार किया था।

दसवें गणधर मैत्रेय थे। वह वत्सदेशस्थ तुंगिकाख्य नगरी के निवासी दत्त ब्राह्मण की स्त्री करुणा के गर्भ से जन्मे थे। इन्होंने भी अपने गण केसाधुओं सहित धर्म प्रचार किया था।

ग्यारहवें गणधरप्रभास राजगृह निवासी बल नामक ब्राह्मण की पत्नी भद्रा की कुक्षि से जन्मे थे और दिगम्बर मुनि तथा गणनायक होकर सर्वत्र धर्म का उद्योत करते हुए विचरेथे।[४]

इन गणधरों की अध्यक्षता में रहे उपर्युक्त चौदह हजार दिगम्बर मुनियों ने तत्कालीन भारत का महान उपकार किया था। विद्या, धर्मज्ञान और सदाचार उनके सदुद्योग से भारत में खूब फैले थे। जैन और बौद्ध शास्त्र यही प्रकट करते हैं-

"The Buddhist and Jaina texts tall us that the intinerant teachers of the time wandered about in the country, engaging themselves wherever they stoppd in serious discussion on matters relating to religion, philosophy ethics morals and polity."[4]

---

१. वृजेश. पृ. ६०-६१।
२. वृजेश. पृ. ८।
३. वृजेश. पृ. ८।
४. वृजेश पृ. ८।

भावार्थ – बौद्ध और जैन शास्त्रों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन धर्म गुरु देश में सर्वत्र विचारते थे। और जहाँ वे ठहरते थे वहाँ धर्म, सिद्धान्त, आचार, नीति और राष्ट्रवार्ता विषयक गम्भीर चर्चा करते थे। सचमुच उनके द्वारा जनता का महान हित हुआ था।

बौद्ध शास्त्रों में भी भगवान महावीर के संघ के किन्हीं दिगम्बर मुनियों का वर्णन मिलता है। यद्यपि जैन शास्त्रों में उनका पता लगा लेना सुगम नहीं है। जो हो, उनसे स्पष्ट है कि भगवान महावीर और उनके दिगम्बर शिष्य देश में निर्बाध विचरते और लोक कल्याण करते थे।

सम्राट श्रेणिक बिम्बसार के पुत्र राजकुमार अभय दिगम्बर मुनि हो गये थे, यह बात बौद्धशास्त्र भी प्रकट करते हैं।[१] उन राजकुमार ने ईरान देश के वासियों में भी धर्मप्रचार किया था। फलतः उस देश का राजकुमार आर्द्रक निर्ग्रंथ साधु हो गया था।[२]

बौद्ध शास्त्र वैशाली के दिगम्बर मुनियों में सुणक्खत्त, कलारमत्थुक और पाटिकपुत्र का नामोल्लेख करते हैं। सुणक्खत्त एक लिच्छवि राजपुत्र था और वह बौद्ध धर्म को छोड़कर निर्ग्रंथ मत का अनुयायी हुआ था।[३]

वैशाली के सन्निकट एक कन्डरमसुक नामक दिगम्बर मुनि के आवास का भी उल्लेख बौद्ध शास्त्रों में मिलता है। उन्होंने यावत् जीवन नग्न रहने और नियमित परिधि में विहार करने की प्रतिज्ञा ली थी।[४]

श्रावस्ती के कुल पुत्र (Councillor's son) अर्जुन भी दिगम्बर मुनि होकर सर्वत्र विचरे थे।[५]

यह दिगम्बर मुनि और उनके साथ जैन साध्वियाँ भी सर्वत्र धर्मोपदेश देकर मुमुक्षुओं को जैन धर्म में दीक्षित करते थे।[६] इस उद्देश्य को लेकर वे नगरों के चौराहों पर जाकर धर्मोपदेश देते और वादभेरी बजाते थे। बौद्ध शास्त्र कहते हैं कि "उस समय तीर्थक साधु प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णमासी को एकत्र होते थे और धर्मोपदेश करते थे। लोग उसे सुनकर प्रसन्न होते और उनके अनुयायी बन जाते थे"[७]

---

१. P.B., p.30 व भमबु., पृ. २६६।

२. ADJB, I, p.92.

३. भमबु., पृ. २५५।

४. "अचेलो कन्डरमसुको वेसालियम् पटिवसति लाभग्ग–प्पतोच एव यसग्ग, प्पत्तोच वज्जिगा मे। तस्स सत्तवत्त–पदानि समत्तानि समादिन्नानि होन्ति–'यावजीवम् अचेलको अस्सम्, नदत्थम् परिदहेय्यम् यावजीवम् ब्रह्मचारी अस्सम् न मेथनुम पटिसेवेय्यम्,... इत्यादि।" – दीघनिकाय (P.T.S.) भा. ३, पृ. ९–१० व भमबु., पृ. २१३

५. P.B., p.83 व भमबु., पृ. २६७।

६. बौद्धों के थेर–थेरी गाथाओं से यह प्रकट है। भमबु., पृ. २५६–२६८।

७. महावग्ग २ । १ । १ व भमबु., पृ. २४०।

इन साधुओं को जहाँ भी अवसर मिलता था वहाँ अपने धर्म की श्रेष्ठता को प्रमाणित करके अवशेष धर्मों को गौण प्रकट करते थे।

भगवान महावीर और **महात्मा गौतम बुद्ध** दोनों ने ही अहिंसा धर्म का उपदेश दिया था, किन्तु भगवान् महावीर की अहिंसा में मन, वचन, काय पूर्वक जीवहत्या से विलग रहने का विधान था-भोजन या मौज शौक के लिये भी उसमें जीवों का प्राण व्यपरोपण नहीं किया जा सकता था। इसके विपरीत महात्मा बुद्ध की अहिंसा में बौद्ध भिक्षुओं को माँस और मत्स्य भोजन ग्रहण करने की खुली आज्ञा थी ।एक बार नहीं अनेक बार स्वयं महात्मा बुद्ध ने माँस-भक्षण किया था।[१] ऐसे ही अवसरों पर दिगम्बर मुनि, बौद्ध भिक्षुओं को आड़े हाथों लेते थे। एक मरतबा जब भगवान महावीर ने बुद्ध के इस हिंसक कर्म का निषेध किया, तो बुद्ध ने कहा 'भिक्षुओ, यह पहला मौका नहीं है, बल्कि नातपुत्त (महावीर) इससे पहले भी कई मरतबा खास मेरे लिये पके हुए माँस को मेरे भक्षण करने पर आक्षेप कर चुके हैं।"[२] एक दूसरी बार जब वैशाली में महात्मा बुद्ध ने सेनापति सिंह के घर पर माँसाहार किया तो बौद्ध शास्त्र कहता है कि 'निर्ग्रंथ एक बड़ी संख्या में वैशाली में सड़क-सड़क, चौराहे-चौराहे पर यह शोर मचाते कहते फिरे कि आज सेनापति सिंह ने एक बैल का वध किया है और उसका आहार श्रमण गौतम के लिये बनाया है। श्रमण गौतम जानबूझकर कि यह बैल मेरे आहार के निमित्त मारा गया है पशु का माँस खाता है, इसलिए वही उस पशु के मारने के लिए बधक है।"[३] इन उल्लेखों से उस समय दिगम्बर मुनियों का निर्बाध रूप में जनता के मध्य विचरने और धर्मोपदेश देने का स्पष्टीकरण होता है।

बौद्ध गृहस्थों ने कई मरतबा दिगम्बर मुनियों को अपने घर के अन्तःपुर में बुलाकर परीक्षा की थी।[४] सारांशतः दिगम्बर मुनि उस समय हाट-बाजार, घर-महल, रंक-राव सब ठौर सब ही को धर्मोपदेश देते हुए विहार करते थे। अब आगे के पृष्ठों में भगवान् महावीर के उपरान्त दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व और विहार का विवेचन कर देना उचित है। ■

---

१. भमबु., पृ. १७० ।

२. Cowell Jatakas II, 182-भमबु., पृ. २४६ ।

३. "At the time a great number of the Nigathas(running) through Vaisali, from road to road, cross-way to cross-way, with outstretched arms cried."Today siha, the General has killed a great ox and has made a meal for the Sarmana Gotama, the Sarmana Gotama knowingly eats this meat of an animal killed for this very purpose, & has that become virtually the author of that diet".- Vinaya Texts,SBE.,Vol.XVII, p.116& HG., p.85.

४ H.G., pp. 88-95 व भमबु. ए. पृ. २४९-२५६ ।

[११] नन्द साम्राज्य में दिगम्बर मुनि

"King Nanda had taken away 'image' known as "The Jaina of Kalinga' ...Carrying away idols of worship as a mark of trophy and also showing respect to the particular idol is known in later history. The datum (1) proves that Nanda was a Jaina and (2) that Jainism was introduced in Orissa very early...."

—K.P.Jayaswal[1]

शिशुनाग वंश में कुणिक अजातशत्रु के उपरान्त कोई पराक्रमी राजा नहीं हुआ और मगध साम्राज्य की बागडोर नन्द वंश के राजाओं के हाथ में आ गई। इस वंश में 'वर्द्धन'(Increaser) उपाधिधारी राजा नन्द विशेष प्रख्यात और प्रतापी था। उसने दक्षिण-पूर्व और पश्चिमीय समुद्रतटवर्ती देश जीत लिये थे तथा उत्तर में हिमालय प्रदेश और कश्मीर एवं अवन्ति और कलिंग देश को भी उसने अपने आधीन कर लिया था।[२] कलिंग-विजय में वह वहां से 'कलिंगजिन' नामक एक प्राचीन मूर्ति ले आया था और उसे विनय के साथ उसने अपनी राजधानी पाटलीपुत्र में स्थापित किया था। उसके इस कार्य से नन्दवर्द्धन का जैन धर्मावलम्बी होना स्पष्ट है। 'मुद्राराक्षश नाटक' और जैन साहित्य से इस वंश के राजाओं का जैनी होना सिद्ध है। उनके मंत्री भी जैन थे। अन्तिम नन्द का मन्त्री राक्षस नामक नीति निपुण पुरुष था। मुद्राराक्षस नाटक में उससे जीवसिद्धि नामक क्षपणक अर्थात् दिगम्बर जैन मुनि के प्रति विनय प्रकट करते दर्शाया गया है तथा यह जीवसिद्धि सारे देश में-हाट-बाजार और अन्तःपुर-मन ही ठौर बेरोक-टोक विहार करता था. यह बात भी उक्त नाटक से स्पष्ट है। ऐसा होना है भी स्वाभाविक, क्योंकि जब नन्द वंश के राजा जैनी थे तो उनके साम्राज्य में दिगम्बर जैन मुनि की प्रतिष्ठा होना लाज़मी था। जनश्रुति से यह भी प्रकट है कि अन्तिम नन्द राजा ने 'पञ्चपहाड़ी' नामक पांच स्तूप

---

१. JBORS., VOL. XIV.p.245.

२. Ibid, Vol. 78–79.

Chanakya says–

"There is a fellow of my studies, deep
The Brahman Indusarman, him I sent,
When just I vowed the death of Nanda, hithere;
And here repairing as a Buddha 1/4 {ki.kd 1/2} mindicant."

* Having the marks of a Kasapanaka....the Individual is a Jaina ....Raksasa repose in him implict confidence.–HDW., p.10.

पटना में बनवाये थे।[१] 'पञ्चपहाड़ी' (राजगृह) जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ है। नन्द ने उसी के अनुरुप पाँच स्तूप पटना में बनावाये प्रतीत होते है। यह कार्य भी उनकी मुनि-भक्ति का परिचायक है।

जैन कथा ग्रन्थों से विदित है कि एक नन्द राजा स्वयं दिगम्बर जैन मुनि हो गये थे तथा उनके मंत्री शकटाल भी जैनी थे।[२] शकटाल के पुत्र स्थूलभद्र भी दिगम्बर मुनि हो गये थे।[३] सारांश यह कि नन्द-साम्राज्य के प्रसिद्ध पुरुषों ने स्वयं दिगम्बर मुनि होकर तत्कालीन भारत का कल्याण किया था और नन्द राजा जैनों के संरक्षक थे।[४]

शिशुनाग वंश के अन्त और नन्द राज्य के आरम्भ काल में जम्बू स्वामी अन्तिम केवली सर्वज्ञ ने नग्न वेष में सारे भारत का भ्रमण किया था। कहते हैं कि बंगाल के कोटिकपुर नामक स्थान पर उन्होंने सर्वज्ञता प्राप्त की थी[५]। उनका विहार बंगाल के प्रसिद्ध नगर पुंड्रवर्द्धन, ताम्रलिप्त आदि में हुआ था। एक बार वह मथुरा भी पहुँचे थे। अन्त में जब वह राजगृह विपुलाचल से मुक्त हो गये, तो मथुरा में उनकी स्मृति में एक स्तूप बनाया गया था।[६]

मथुरा जैनों का प्राचीन केन्द्र था। वहाँ भगवान् पार्श्वनाथ जी के समय का एक स्तूप मौजूद था।[७] इसके अतिरिक्त नन्दकाल में वहाँ पाँच सौ एक स्तूप और बनाये

---

१. "Sir G. Grierson informs me that the Nandas were reputed to be bitter enemies of the Brahmans...the Nandas were Jainsa and therefore hatefuls to the Brahamans.. The supposition that the last Nanda was either a Jaina or Buddhist is strengthened by the face that one from of the local tradition attributed to him the erection of the Panch Pahari at Patna, a group of ancient stupas, which be either Jaina of Buddhist." -EHI.,p.44

उनका जैन होना ठीक है, क्योंकि नन्दवर्द्धन के जैन होने में संदेह नहीं है और "मुद्राराक्षस" नन्दमंत्री आदि को जैन प्रकट करता है।

२. हरिषेण कथा कोष तथा आराधना कथा कोष देखो।

३. सातवीं गुजराती साहित्य परिषद् रिपोर्ट (पृष्ठ ४१) तथा "भद्रबाहु चरित्र" (पृष्ठ ४१) में स्थूलभद्रादि को दिगम्बर मुनि लिखा है। (रामल्यस्थूल भद्राख्य स्थूलाचार्यादियोगिनः।)

४. "Nanda were Jains". CHI, Vol.I.,p. 164.

The nine kings of the Nanda dynasty of Magadha were patrons of the Order (Sangha of Mahavira)." -HARI, p.59

५. "In Kotikapur Jambu attained emancipation (Omniscience)" -वीर, वर्ष ३ पृ. ३७

६. अनेकान्त, वर्ष १, पृ. १४१।

"मगधदिमहादेश मथुरादिपुरीस्तथा। कुर्वन् धर्मोपदेश स केवलज्ञानलोचनः ।।११८।।१२।।

वर्षाष्टादशपर्यन्तं स्थितस्तत्र जिनधिपः ततो जगाम निर्वाणं केवली विपुलाचलात् ।।१।। -जम्बूस्वामी चरित्

७. JOAM,13.

गये थे, क्योंकि वहाँ से इतने ही दिगम्बर मुनियों ने समाधिमरण किया थ। ये सब मुनिश्री जम्बूस्वामी के शिष्य थे। जिस समय जम्बूस्वामी दिगम्बर मुनि हुये तो उस समय विद्युच्चर नामक एक नामी डाकू भी अपने पाँच सौ साथियों सहित दिगम्बर मुनि हो गया था। एक बार यह मुनि संघ देश–विदेश में विहार करता हुआ शाम को मथुरा पहुंचा। वहाँ महाउद्यान में वह ठहर गया। तदोपरान्त रात को उन मुनियों पर वहाँ महाउपसर्ग हुआ और उसके परिणामस्वरुप मुनियों ने साम्य भाव से प्राण त्याग दिये। इस महत्त्वपूर्ण घटना की स्मृति में ही वहाँ पाँच सौ एक स्तूप बना दिये गये थे।[1]

इस प्रकार न जाने कितने मुनि पुंगव उस समय भारत में विहार करके लोगों का हितसाधन करते थे, उनका पता लगा लेना कठिन है। नन्द–साम्राज्य में उनको पूरा–पूरा संरक्षण प्राप्त था।

---

[१२] मौर्य सम्राट और दिगम्बर मुनि

"भद्रबाहुवचः श्रुत्वा चन्द्रगुप्तो नरेश्वरः।
अस्यैवयोगिनं पार्श्वे दधौ जैनेश्वरं तपः ।।३८।।
चन्द्रगुप्तमुनिः शीघ्रं प्रथमो दशपूर्विणाम।
सर्वसंघाधिपोजातो विशाखाचार्यसंज्ञकः ।।३९।।
अनेन सह संघोपि समस्तो गुरुवाक्यतः।
दक्षिणापथदेशस्थ पुन्नाट विषयं ययौ ।।४०।।"

–हरिषेण कथाकोष[2]

'मउधरेसु' चरिमो जिणदिक्खं धरदि चन्दगुप्तो य।

–त्रिलोक प्रज्ञप्ति[3]

नन्द राजाओं के पश्चात् मगध का राजछत्र चन्द्रगुप्त नाम के एक क्षत्रिय राजपुत्र के हाथ लगा था। उसने अपने भुजविक्रम से प्रायः सारे भारत पर अधिकार कर

---

१. अनेकान्त, वर्ष १, पृ. १३९–१४१।
'अथ विद्युच्चरो नाम्ना पर्यटन्निह सन्मुनिः।
एकादशांगविद्यायामधीतो विदधत्तपः।
अथान्यदा सनिःसंगो मुनि पंचशतैर्वृतः।।
मथुरायाँ महोद्यान–प्रदेशेष्वगमन्मुदा।
तदागच्छस वैलक्ष्यं भानुरस्ताचलं श्रितः ।।इत्यादि।।"
२. जैहि, भा १४, पृ. २१७।
३. जैहि. ए.,भा. ३, पृ. ५३१।

लिया था और "मौर्य्य", नामक राजवंश की स्थापना की थी। जैन शास्त्र इस राजा को दिगम्बर मुनि श्रमणपति श्रुतकेवली भद्रबाहु का शिष्य प्रकट करते है।[1] यूनानी राजपूत मेगस्थनीज भी चन्द्रगुप्त को श्रमणभक्त प्रकट करता है।[2] सम्राट चन्द्रगुप्त ने अपने वृहत् साम्राज्य में दिगम्बर मुनियों के विहार और धर्म प्रचार करने की सुविधा की थी। श्रमणपति भद्रबाहु के संघ को वह राजा बहुत विनय करता था। भद्रबाहु जी बंगाल देश के कोटिकपुर नामक नगर के निवासी थे।[3] एक बार वहाँ श्रुतकेवली गोवर्द्धन स्वामी अन्य दिगम्बर मुनियों सहित आ निकले, भद्रबाहु उन्हीं के निकट दीक्षित होकर दिगम्बर मुनि हो गये। गोवर्द्धन स्वामी ने संघ सहित गिरनारजी की यात्रा का उद्योग किया था।[4] इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उनके समय में दिगम्बर मुनियों को विहार करने की सुविधा प्राप्त थी। भद्रबाहु जी ने भी संघ सहित देश-देशान्तर में विहार किया था और वह उज्जैनी पहुँचे थे। वहीं से उन्होंने दक्षिण देश की ओर संघ सहित विहार किया था, क्योंकि उन्हें मालूम हो गया था कि उत्तरापथ में एक द्वादशवर्षीय विकराल दुष्काल पड़ने को है जिसमें मुनिचर्या का पालन दुष्कर होगा।[5] सम्राट चन्द्रगुप्त ने भी इसी समय अपने पुत्र को राज्य देकर भद्रबाहु स्वामी के निकट जिनदीक्षा धारण की थी और वह अन्य दिगम्बर मुनियों के साथ दक्षिण भारत को चले गये थे।[6] श्रवणबेलगोल का कटवप्र नामक पर्वत उन्हीं के कारण "चन्द्रगिरि" नाम से प्रसिद्ध हो गया है, क्योंकि उस पर्वत पर चन्द्रगुप्त ने तपश्चरण किया था और वहीं उनका समाधि मरण हुआ था।[7]

---

१. 'चन्द्रावदातसत्कीर्तिश्चन्द्रवन्मोदकर्तृणाम्। चन्द्रगुप्तिनृपस्तत्र्चकच्चारुगुणोदयः ।।७।।२।।

ज्ञानविज्ञानपारीर्णोजिनपूजापुरंदरः। चतुर्द्धा दान दक्षो यः प्रतापजित भास्करः।।८।।" भद्र.

"समासाद्य स सूरीशं (भद्राबाहु) परीत्य प्रश्रयान्वितः। समभ्यर्च्य गुरोः पादावन्गंधसदकादिकैः।।२६।।" —भद्र.

२. "That Chandragupt was a member of the Jaina community is taken by their writers as a matter of course, and treated as a known fact, which needed neither argument nor demonstration. The documentary evidence to this effect is of comparatively early date, and apparently absolved from all suspicion... The testimony of Megasthense would likewise seem toimply that Chandragupta submitted to the devotional teaching of the Sramanas as opposed to the doctrines of the Brahmanas. (Strabo. XV.p.60)" JRA Vol. IX.pp.175-176.

३. "तमालपत्रवत्तस्य देशोऽभूतपौण्ड्रवर्द्धनः।"—"तत्र कोट्टपुरं रम्यं द्योतते नराकखण्डवत।"

'भद्रबाहुरितिख्याति' प्राप्तवान्बन्धुवर्गतः।" इत्यादि" —भद्र., पृ.१०-२३

४. "चिकीर्षुर्नेमितीर्थेशयात्रां रैवतकाचले।" —भद्र., पृ.१३

५. भद्र.,पृ. २७-५१।

६. Jaina tradition avers that Chandragupta Maurya was a Jaina, and that, when a gtreat twelve years' famine occureed, he abdicated accompanied Bhadrabahu, the last of the saints called Srutakvalins, to the South, lived as an ascetic at Sravanabelgola in Mysore and ultimately commited Suicide by Starvation at that place, where his name is still hellin remembrance. In the second edition of this book I rejected that tradition and dismissed the tale as imaginary histroy. But on reconsideration of the whole evidence and the objections urged against the credibility of the story, I am now disposed to belive that the tradition probably is true in its main outline and that Chandragupta really abdicated and became a Jaina ascetic." & Sir Vincient Smith, EHI, p., 54.

बिन्दुसार ने जैनियों के लिये क्या किया? यह ज्ञात नहीं है, किन्तु जब उसका पिता जैन था, तो उस पर जैन प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है।[२] उस पर उसका पुत्र आशोक अपने प्रारम्भिक जीवन में जैन धर्मपरायण रहा था, बल्कि अन्त समय तक उसने जैन सिद्धान्तों का प्रचार किया, यह अन्यत्र सिद्ध किया जा चुका है।[३] इस दिशा में बिन्दुसार का जैन धर्म प्रेमी होना उचित है। अशोक ने अपने एक स्तम्भ में स्पष्टतः निर्ग्रंथ साधुओं की रक्षा का आदेश निकाला था।[४]

सम्राट् सम्प्रति पूर्णतः जैन धर्मपरायण थे। उन्होंने जैन मुनियों के विहार और धर्म प्रचार की व्यवस्था न केवल भारत में ही की, बल्कि विदेशों में भी उनका विहार कराकर जैन धर्म का प्रचार करा दिया।[५]

उस समय में दशपूर्व के धारक विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय आदि दिगम्बर जैनाचार्यों के संरक्षण में रहा जैन संघ खूब फला-फुला था। जिस साम्राज्य के अधिष्ठाता ही स्वयं जब दिगम्बर मुनि होकर धर्म प्रचार करने के लिये तुल गये तो भला कहिये जैन धर्म की विशेष उन्नति और दिगम्बर मुनियों की बाहुल्यता उस राज्य में क्यों न होती। मौर्य्यों का नाम जैन साहित्य में इसीलिए स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

---

[१३] सिकन्दर महान् एवं दिगम्बर मुनि

Onesikritos says that he himself was sent to converse with these sages. For Alexander heard that these men (Sramans) went about naked,

---

१. Narsimhachar's Sravanabelagola p-25-40.
विको., भाग ७, पृ. १५६-१५७ तथा जैशिसं. भूमिका, पृ. ५४-७०

२. "We may conclude that Bindusara followed the faith (Jainism) of this of his father (Chandragupta) and that, in the same belief, whatever it may prove to have been, his childhood's lessons were first learnt by Ashoka." -E.Thomas, JRAS., IX., 181

३. हमारा "सम्राट अशोक और जैन धर्म" नामक ट्रैक्ट देखो।

४. स्तम्भ लेख नं. ७।

"That founder of the Mauraya dynasty, Chandragupta, as well as his Brahmin Minister, Chanadya, were also inclined towards Mahavira's doctrines and ever Ashoka is said to have been laid towards Buddhism by a previous study of Jain teaching." -E.B.,Havell, HARL., p. 59.

५. कुणालसूनुस्त्रिखण्डभरताधिपः परमार्हतो अनार्य्यदेशेष्वपि प्रवर्तित श्रमणविहारः सम्प्रति महाराजोऽसौभवत् -पाटलीपुत्र कल्पग्रन्थ, EHI.,pp. 202-203.

inused themselves to hardships and were held in highest honour; that when invited they did not go to other person.

—Mc Crindle, Ancient India, p. 70

जिस समय अन्तिम नन्दराजा भारत में राज्य कर रहे थे और चन्द्रगुप्त मौर्य अपने साम्राज्य की नींव डालने में लगे हुये थे, उस समय भारत के पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त पर यूनान का प्रतापी वीर सिकन्दर अपना सिक्का जमा रहा था। जब वह तक्षशिला पहुंचा तो वहां उसने दिगम्बर मुनियों की बहुत प्रंशसा सुनी। उसने चाहा कि वे साधुगण उसके सम्मुख लाये जायें, किन्तु ऐसा होना असंभव था, क्योंकि दिगम्बर मुनि किसी का शासन नहीं मानते और न किसी का निमंत्रण स्वीकार करते हैं। उस पर सिकन्दर ने अपने एक दूत को, जिसका नाम अन्शकृतस (Oneskritos) था, उनके पास भेजा। उसने देखा, तक्षशिला के पास उद्यान में बहुत से नंगे मुनि तपस्या कर रहे हैं। उनमें से एक कल्याण नामक मुनि से उसकी बातचीत होती रही थी। मुनि कल्याण ने अन्शकृतस से कहा था कि यदि तुम हमारे तप का रहस्य समझना चाहते हो तो हमारी तरह दिगम्बर मुनि हो जाओ।[1] अंशकृतस के लिये ऐसा करना असंभव था। आखिर उसने सिकन्दर से जाकर इन मुनियों के ज्ञान और चर्या की प्रशंसनीय बातें कहीं। सिकन्दर उनसे बहुत प्रभावित हुआ और उसने चाहा कि इन ज्ञान-ध्यान तपोरक्त का प्रकाश मेरे देश मे भी पहुंचे। उसकी इस शुभ कामना को मुनि कल्याण ने पूरा किया था। जब सिकन्दर ससैन्य यूनान को लौटा तो मुनि कल्याण उसके साथ हो लिये थे, किन्तु ईरान में ही उनका देहावसान हो गया था।अपना अन्त समय जानकर उन्होंने जैन व्रत सल्लेखना का पालन किया था। नंगे रहना, भूमि शोधकर चलना, हरितकाय का विराधन न करना, किसी का निमंत्रण स्वीकार न करना इत्यादि जिन नियमों का पालन मुनि कल्याण और उनके साथी मुनिगण करते थे उनसे उनका दिगम्बर जैन मुनि होना सिद्ध है।[2] आधुनिक विद्वान भी यही प्रकट करते हैं।[3]

---

१. Al..p.69."(Alexander) despatched Onesikritos to them (gymnosophists). who relates that he found at the distance of 20 stadia from the city (of Taxilla) 15 men standing in different postures, sitting or lying down naked, who did not move from these-positions till the evening, when they return to the city. The most difficult thing to endure was the heat of the sun. etc."

"Calanus bidding him (Onesi:) to strip himself, if he desired to hear any of his doctrine." —Plutarch, A.I., p.71.

२. वीर, वर्ष ७, पृ. १७६ व ३४१।

३. Encyclopadia Britannica (11th ed.) Vol. XVp. 128."....the term Digambara ... is referred to in the well-known Greeck phrase. Gymnosophists, used already by Megasthenes, which applies very aptly to the Nirgranthas (Digambara Jainas).

मुनि कल्याण ज्योतिषशास्त्र में निष्णात थे। उन्होंने बहुत सी भविष्यवाणियाँ की थी[१] और सिकन्दर की मृत्यु को भी उन्होंने पहिले से ही घोषित कर दिया था। इन भारतीय सन्तों की शिक्षा का प्रभाव यूनानियों पर विशेष पड़ा था, यहाँ तक कि तत्कालीन डायजिनेस (Diogenes) नामक यूनानी तत्त्ववेत्ता ने दिगम्बर वेष धारण किया था[२] और यूनानियों ने नंगी मूर्तियाँ भी बनवाई थी।[३]

यूनानी लेखकों ने इन दिगम्बर मुनियों के विषय में खूब लिखा है। वे बताते हैं कि यह साधु नंगे रहते थे। सर्दी–गर्मी की परीषह सहन करते थे। जनता में इनकी विशेष मान्यता थी। हाट–बाजार में जाकर यह धर्मोपदेश देते थे। बड़े–बड़े शिष्ट घरों के अंतःपुरों में भी ये जाते थे। राजागण उनकी विनय करते और सम्मति लेते थे। ज्योतिष के अनुसार ये लोगों को भविष्य का फलाफल भी बताते थे। भोजन का निमन्त्रण ये स्वीकार नहीं करते थे। विधिपूर्वक नगर में कोई सभ्य उन्हें भोजन दान देता तो उसे वे ग्रहण कर लेते थे।[४] यूनानी लेखकों के इस वर्णन से उस समय के दिगम्बर जैन मुनियों का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। उनके द्वारा भारत का नाम विदेशों में भी चमका था। भला उन जैसे मुनीश्वरों को पाकर कौन न अपने को धन्य मानेगा।

---

१. "A calendar fragment discovered at Milet & belonging to the 2nd. century B.C. gives several weather forecasts on the authority of Indian Calanus." —QJMS., XVIII.297

२. NJ., In tro., p. 2

३. Pliny, XXXIV. 9–JRAS, Vol. IX.p.232.

४. Aristoboulos says. "Their (Gymnosophists) spare time is spent in the market–place in respect their being public councillors. they receive great homage. etc."

Cicero (Tusc Dispute V., 27) — "What foreign land is more vast & wild than India? Yet in that nation first those who are reckoned sages spend their life time naked & endure the snows of Caucasus & the rage of winter without grieving & when they have committed their body to the flames, not a groan escapes them when they are burning.

Clemens Alexandrinus—"Those Indians, who are called Semnoi (श्रवण) go naked all their lives. These practise truth, make predictions about futurity and worship a king of pymid, beneath which they think the bones of some divinity lie buried (Stupas)." —A.I., p.183

"St. Jerome—'Indian Gymnosophists' The king on coming to them worships them & the peace of his dominions depends according to his judgement on their prayers" —A.I., p.184.

"Even wealthy house is open to them to the apartments of the women. On entering they share the repast." —A.I., p.71.

"When they repair to the city they disperse themselves to the market place. If they happen to meet any who carries figs or bunches of grapes they take what he bestows without giving anything in return.

[१४] सुंग और आन्ध्र राज्यों में दिगम्बर मुनि

"The Andhra or Satvahana rule is characterised by almost the same social features as the farther south; but in point of religion they seem to have been great patrons of the Jainas & Buddhists."

—S.K. Aiyangar's Ancient India, p. 34

अन्तिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ का उसके सेनापति पुष्यमित्र सुंग ने वध कर दिया था। इस प्रकार मौर्य साम्राज्य का अन्त करके पुष्यमित्र ने 'सुंग राजवंश' की स्थापना की थी। नन्द और मौर्य साम्राज्य में जहाँ जैन और बौद्ध धर्म उन्नति को प्राप्त हुये थे, वहाँ सुंग वंश के राजत्व काल में ब्राह्मण धर्म उन्नत अवस्था को प्राप्त हुआ था किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि ब्राह्मणेत्तर जैन आदि धर्मों पर इस समय कोई संकट आया हो। हम देखते हैं कि स्वयं पुष्यमित्र के राजप्रासाद के सन्निकट नन्दराज द्वारा लाई गई, कलिंग जिन की मूर्ति' सुरक्षित रही थी। इस अवस्था में यह नही कहा जा सकता है कि इस समय दिगम्बर जैन धर्म को विकट बाधा सहनी पड़ी थी।

उस पर सुंग राजागण अधिक समय तक शासनाधिकारी भी न रहे। भारत के पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त और पंजाब की ओर तो यवन राजाओं ने अधिकार जमाना प्रारम्भ कर दिया और मगध तथा मध्य भारत पर जैन सम्राट खारवेल तथा आन्ध्र राजाओं के आक्रमण होने लगे। खारवेल की मगध विजय में आन्ध्रवंशी राजाओं ने उनका साथ दिया था।[१] मगध पर आन्ध्र राजाओं का अधिकार हो गया। इन राजाओं के उद्योग से जैन धर्म फिर एक बार चमक उठा।

आन्ध्रवंशी राजाओं में हाल, पुलुमायि आदि जैन धर्म प्रेमी कहे गये हैं।[२] इन्होंने दिगम्बर जैन मुनियों को विहार और धर्म प्रचार करने की सुविधा प्रदान की प्रतीत होती है। उज्जैनी के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य भी इसी वंश से सम्बन्धित बताये जाते हैं। वह शैव थे, परन्तु उपरान्त एक दिगम्बर जैनाचार्य के उपदेश से जैन हो गये थे।[३]

---

१. "In the decadance that followed the death of Ashoka, the Andhras seem to have had their own share and they may possibly have helped Kharvela of Kalinga, when he invaded Magadha in the Middle of the 2nd century B.C. when the kanvar were overthrown the Andhras extend their power northwards & occupy Magadha." SAI.pp.15–16

२. JBORS. I.76–118. & CHI.I.p.532.

३. Allahabad University Studies. Pt. II.pp. 113–147.

ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि में एक भारतीय राजा का संबध रोम के बादशाह ऑगस्टस से था। उन्होंने उस बादशाह के लिये भेंट भेजी थी। जो लोग उस भेंट को ले गये थे, उनके साथ भृगुकच्छ (भड़ौंच) से एक श्रमणाचार्य (दिगम्बर जैनाचार्य) भी साथ हो लिये थे। वह यूनान पहुंचे थे और वहाँ उनका सम्मान हुआ था। आखिर सल्लेखना व्रत को धारण करके उन्होंने अथेन्स (Athens) में प्राण विसर्जन किये थे। वहाँ उनकी एक निषधिका बनायी गई थी।[१] अब भला कहिये, जब उस समय दिगम्बर मुनि विदेशों तक में जाकर धर्म प्रचार करने में समर्थ थे, तो वे भारत में क्यों न विहार और धर्म प्रचार करने सफल होते। जैन साहित्य बताता है कि गंगदेव सुधर्म, नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन आदि दिगम्बर जैनाचार्यों के नेतृत्व में तत्कालीन जैन धर्म सजीव हो रहा था।

ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि में भारत में अपोलो और दमस नामक दो यूनानी तत्त्ववेत्ता आये थे। उनका तत्कालीन दिगम्बर मुनियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ था।[२] सारांशतः उस समय भी दिगम्बर मुनि इतने महत्त्वशील थे कि वे विदेशियों का भी ध्यान आकृष्ट करने को समर्थ थे।

---

[१५] यवन क्षत्रप आदि राजागण तथा दिगम्बर मुनि

"About the second century B.C. when the Greeks had occupied a fair portion of western India, Jainism appears to have made its way amongst them and the founder of the sect appears also to have been held in hign esteem by the Indo– Greeks, as is apparent from an account given in the milinda Panho." –H.G.p.78.

---

१. "In the sune year (25BC) went an Indian embassy with gifts to Augustus, from a King called Purus by some and Pandian by other...They were accompanied by the man who burnt himself at Athens. He with a smile leapt upon the pyre naked...On his tomb was this inscription, "Zermano" – chegus, to the custom of his country, lies here' Zermanochegas seems to be the Greek rendering of Sramanachrya or Jaina Guru and the self–immolation a variety of Sallekhna." –IHQ, Vol. II,p. 293

२. "Apollonius of Tyana travelled with Damus. Born about 4 B.C. he came to explore the wonders of India....He was a Phythororian philosopher & met Iarchas at Taxilla and disputed with Indian Gymnosophists. (Nirgranthas)" –QJMS,XVIII,pp.305-306

मौर्यों के उपरान्त भारत के पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, पंजाब, मालवा आदि प्रदेशों पर यूनानी आदि विदेशियों का अधिकार हो गया था। इन विदेशी लोगों में भी जैन मुनियों ने अपने धर्म का प्रचार कर दिया था और उनमें से कई बादशाह जैन धर्म मे दीक्षित हो गये थे।

भारतीय यवनों (Greek) में मनेन्द्र (Menander) नामक राजा प्रसिद्ध था। उसकी राजधानी पंजाब प्रान्त का प्रसिद्ध नगर साकल स्यालकोट था। बौद्ध ग्रंथ 'मिलिनदपण्ह' से विदित है कि उस नगर में प्रत्येक धर्म के गुरु पहुँचकर धर्मोपदेश देते थे।[१] मालूम होता है कि दिगम्बर जैन मुनियों को वहाँ विशेष आदर प्राप्त था, क्योंकि 'मिलिनदपण्ह' में कहा गया है कि पाँच सौ यूनानियों ने राजा मनेन्द्र से भगवान् महावीर के 'निर्ग्रंथ' धर्म द्वारा मनस्तुष्टि करने का आग्रह किया था और मनेन्द्र ने उनका यह आग्रह स्वीकार किया था।[२] अन्ततः वह जैन धर्म में दीक्षित हो गया था और उसके राज्य में अहिंसा धर्म की प्रधानता हो गई थी।[३]

यवनों (Indo Greek) को हराकर शकों ने फिर उत्तर-पश्चिम भारत पर अधिकार जमाया था। उन्होंने 'छत्रप' प्रान्तीय शासक नियुक्त करके शासन किया था। इनमें राजा अजेस (Azes I) के समय में तक्षशिला में जैन धर्म उन्नति पर था। उस समय के बने हुये जैन ऋषियों के स्मारक रूप स्तूप आज भी तक्षशिला में भग्नावशेष है।[४]

शक राजा कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव के राजकाल में भी जैन धर्म उन्नत दशा में रहा था। मथुरा उस समय प्रधान जैन केन्द्र था। अनेक निर्ग्रंथ साधु वहाँ विचरते थे। उन नग्न साधुओं की पूजा राजपुत्र और राजकन्यायें तथा साधारण जन-समुदाय किया करते थे।[५]

छत्रप नहपान भी जैन धर्म प्रेमी प्रतीत होता है। उसका राज्य गुजरात से मालवा तक विस्तृत था। जैन साहित्य में उनका उल्लेख नरवाहन और नहवाण रूप में हुआ मिलता है। नहपान ही संभवतः भूतबलि नामक दिगम्बर जैनाचार्य हुये थे, जिन्होंने "षट्खण्डागम शास्त्र" की रचना की थी।

---

१. "They resound with cries of welcome to the teachers of every creed and the city is the resort of the leading men of each of the differing sects." -QKM.p.3

२. QKM.p.8

३. वीर, वर्ष २, पृ. ४४६-४४९।

४. AGT., pp.76-80.

५. "Another locality in which the Jainas seem to have been formly established from the middle of the 2nd Century B.C. onwards was Mathura in the old kingdom of Curasenas." -CHI.I p.167 & see JOAM.

छत्रप नहपान के अतिरिक्त छत्रप रुद्रदमन का पुत्र रुद्रसिंह का भी जैन धर्म-भुक्त होना संभव है। जूनागढ़ की 'अपरकोट' की गुफाओं में इसका एक लेख है, जिसका सम्बन्ध जैन धर्म से होना अनुमान किया जाता है। ये गुफायें जैन मुनियों के उपयोग में आती थीं।[१]

इन उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त विदेशी लोगों में धर्म प्रचार करने के लिये दिगम्बर मुनि पहुंचे थे और उन्होंने उन लोगों के निकट सम्मान पाया था।

---

[१६] सम्राट ऐल खारवेल आदि कलिंग नृप और दिगम्बर मुनियों का उत्कर्ष

"नन्दराज-नीतानि कालिंग-जिनम्संनिवेसं...गहरतनान पडिहारे हि अङ्गमागध वसवु नयाति।" (१२ वीं पंक्ति)

"सुकति-समण-सुविहितानु च सतादिसानु जनितम् तपसि-इसिनं संघियनं अरहत निसीदिया समीपे पभरे वराकारू-सुपुथनपतिहि अनेकयोजनाहिताहि प सि ओ सिलाहि सिंहपथ-रानि सिधुडाय निसयानि...घण्टा (अ) क (तो) चतरे वेडूरियगभे थंभे पतिठापयति"। (१५-१६ पंक्ति) **-हाथी गुफा शिलालेख**

कलिंग देश में पहले तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के एक पुत्र ने पहले-पहले राज्य किया था। जब सर्वज्ञ होकर तीर्थंकर ऋषभ ने आर्यखण्ड में विहार किया तो वह कलिंग भी पहुंचे थे। उनके धर्मोपदेश से प्रभावित होकर तत्कालीन कलिंगराज अपने पुत्र को राज्य देकर मुनि हो गये थे।[२] बस कलिंग में दिगम्बर मुनियों का सद्भाव उस प्राचीन काल से है।

---

१. IA.XX.163,ff.
२. हरिवंशपुराण श्लो. ३-७, ११, श्लो. १४-७१।

राजा दशरथ अथवा यशोधर के पुत्र पाँच सौ साथियों सहित दिगम्बर मुनि होकर कलिंग देश से ही मुक्त हुये थे तथा वह पवित्र कोटिशिला भी उसी कलिंग देश में हैं, जिसको श्री राम-लक्ष्मण ने उठाकर अपना बाहुबल प्रकट किया था और जिस पर से एक करोड़ दिगम्बर मुनि निर्वाण को प्राप्त हुये थे।[१] सारांशतः एक अतीव प्राचीन काल से कलिंग देश दिगम्बर मुनियों के पवित्र चरण-कमलों से अलंकृत हो चुका है।

इक्ष्वाकुवंश के कौशलदेशीय क्षत्रिय राजाओं के उपरान्त कलिंग में हरिवंशी क्षत्रियों ने राज्य किया था। भगवान् महावीर ने सर्वज्ञ होकर जब कलिंग मे आकर धर्मोपदेश दिया तो उस समय कलिंग के जितशुत्र नामक राजा दिगम्बर मुनि हो गये और भी अनेक दिगम्बर मुनि हुये थे[२]

तदोपरान्त दक्षिण कौशलवर्ती चेदिराज के वंश के एक महापुरुष ने कलिंग पर अधिकार जमा लिया था।[३] ईस्वीं पूर्व द्वितीय शताब्दि में इस देश में ऐल॰ खारवेल नामक राजा अपने भुजविक्रम, प्रताप और धर्म-कार्य के लिये प्रसिद्ध था। यह जैन धर्म का दृढ़ उपासक था। उसने सारे भारत की दिग्विजय की थी। वह मगध के सुगवंशी राजा को हराकर 'कलिंग जिन' नामक अर्हत्-मूर्ति को वापिस कलिंग ले आया था। दिगम्बर मुनियों की वह भक्ति और विनय करता था। उन्होंने उनके लिये बहुत से कार्य किये थे। कुमारी पर्वत पर अर्हत् भगवान की निषद्या के निकट उन्होंने एक उन्नत जिन प्रासाद बनवाया था तथा पचहत्तर लाख मुद्राओं को व्यय करके उस पर वैडूर्यरत्नजड़ित स्तम्भ खड़े करवाये थे। उनकी रानी ने भी जैन मंदिर तथा मुनियों के लिये गुफायें बनवाई थीं, जो अब तक मौजूद हैं[४] और भी न जानें उन्होंनें दिगम्बर मुनियों के लिये क्या-क्या नहीं किया था।

उस समय मथुरा, उज्जैनी और गिरिनर जैन ऋषियों के केन्द्र स्थान थे।[५] खारवेल ने जैन ऋषियों का एक महासम्मेलन एकत्र किया था। मथुरा, उज्जैनी, गिरिनार, काञ्चीपुर आदि स्थानों से दिगम्बर मुनि उस सम्मेलन में भाग लेने के लिये कुमारी पर्वत पर पहुँचे थे। बड़ा भारी धर्म महोत्सव किया गया था।[६] बुद्धिलिंग, देव, धर्मसेन, नक्षत्र आदि दिगम्बर जैनाचार्य उस महासम्मेलन में

---

१. "जसधर राहस्स सुवा पंचसयाभूव कलिंग देसम्मि।।
कोटिसिल कोडि मुणि णिव्वाण गया णमो तेसिं ।।१८।। -णिव्वाण-कांड गाहा

२. हरिवंशपुराण (कलकत्ता संस्करण), पृ. ६२३

३. JBORS, Vol.III, pp.434–484.

४. बंबिओं जैस्मा., पृ. ९१

५. IHQ. Vol. IV.p.522.

६. "सुतदिसानु भनितम् तपसि-इसिनं संघियनं अरहत निसीदिया समीपे चोयथि अंगसतिकंतुरियं उपादयति।।" -JBORS, XIII. 236–237.

सम्मिलित हुये थे।[१] इन ऋषि पुंगवों ने मिलकर जिनवाणी का उद्धार किया था तथा सम्राट खारवेल के सहयोग से वे जैन धर्म के प्रचार करने में सफल मनोरथ हुये थे। यही कारण है कि उस समय प्रायः सारे भारत में जैन धर्म फैला हुआ था। यहाँ तक कि विदेशियों में भी उसका प्रचार हो गया था, जैसे कि पूर्व परिच्छेद में लिखा जा चुका है। अतएव यह स्पष्ट है कि ऐल० खारवेल के राजकाल में दिगम्बर मुनियों का महान् उत्कर्ष हुआ था।

ऐल० खारवेल के बाद उनके पुत्र कुदेपश्री खर महामेघवाहन कलिंग के राजा हुये थे। वह भी जैन धर्मानुयायी थे।[२] उनके बाद भी एक दीर्घ समय तक कलिंग में जैन धर्म राष्ट्र धर्म रहा था। बौद्धग्रंथ 'दाठवंसो' से ज्ञात है कि कलिंग के राजाओं में महात्मा बुद्ध के समय से जैन धर्म का प्रचार था। गौतम बुद्ध के स्वर्गवासी होने के बाद बौद्धभिक्षु खेम ने कलिंग के राजा ब्रह्मदत्त को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। ब्रह्मदत्त का पुत्र काशीराज और पौत्र सुनन्द भी बौद्ध रहे थे।[३] किन्तु तदोपरान्त फिर जैन धर्म का प्रचार कलिंग में हो गया। यह समय संभवतः खारवेल आदि का होगा। कालान्तर में कलिंग का गुहशिव नामक प्रतापी राजा निर्ग्रंथ साधुओं का भक्त कहा गया है। उसके बाद बौद्ध मंत्री ने उसे जैन धर्म विमुख बना लिया था। निर्ग्रंथ साधु उसकी राजधानी छोड़कर पाटलिपुत्र चले गये थे। सम्राट् पाण्डु वहाँ पर शासनाधिकारी था। निर्ग्रंथ साधुओं ने उससे गुहशिव की धृष्टता की बात कही थी।[४] यह घटना लगभग ईसवी तीसरी या चौथी शताब्दि की कही जा सकती है और इससे प्रकट है कि उस समय तक दिगम्बर मुनियों की प्रधानता कलिंग अंग-बंग और मगध में विद्यमान थी। दिगम्बर मुनियों को राजाश्रय मिला हुआ था।

---

१. अनेकान्त, वर्ष १, पृ. २२८।

२. JBORS. III.p.505.

३. दन्त धातु ततो खेमो अत्तना गहितं अदा।
दन्तपूरे कलिंगस्स ब्रह्मदत्तस्स राजिनो।।५७।। २।।
देसयित्थान सो धम्मं भेत्वा सब्ब कुदिट्ठियो।।
राजानं तं पसादेसि अग्गम्हिरतनत्तये।।५८।।
अनुजातो ततो तस्स कासिराज व्हयो सुतो।
रज्जं लद्धा अमच्चानं सोकसल्लमपानुदि।।६६।।
सुनन्दो नाम राजिन्दो आनन्दजननो सतं।
तस्स त्रजो ततो आसि बुद्धसासननामको।।६९।। —दाठा., पृ. ११-१२

४. गुहसीव व्हेयाराजा दुरतिक्कमसासनो।
ततो रज्जसिरिं पत्वा अनुगण्हि महाजनं।।७२।। २।।
सपरत्थानभिञ्ञेसो लाभसक्कारलोलुपे।
मायाविनो अविज्जन्धे निगण्ठे समुपट्ठहि।।७३।।
तस्सा मच्चस्ता सो राजा सुत्वा धम्मसुभासितं।
दुल्लद्धिमलमुज्झित्वा पसीदि रतनत्तये।।८६।।

कुमारी पर्वत पर के शिलालेखों से यह भी प्रकट है कि कलिंग में जैन धर्म दसवीं शताब्दि तक उन्नतावस्था पर था। उस समय वहाँ पर दिगम्बर जैन मुनियों के विविध संघ विद्यमान थे, जिनमें आचार्य यशनन्दि, आचार्य कुलचन्द्र तथा आचार्य शुभचन्द्र मुख्य साधु थे।[१]

इस प्रकार कलिंग में दिगम्बर जैन धर्म का बाहुल्य एक अतीव प्राचीन काल से रहा है और वहाँ पर आज भी सराक लोग एक बड़ी संख्या में हैं, जो प्राचीन श्रावक हैं।[२] उनका अस्तित्व इस बात का प्रमाण है कलिंग में जैनत्व की प्रधानता आधुनिक समय तक विद्यमान रही थी।

---

[१७] गुप्त साम्राज्य में दिगम्बर मुनि

"The capital of the Gupta emperors became the centre of Brahmanical culture; but the masses followed the religions traditions of their forefathers, and Buddhist & Jain monasteries continued to be public schools and universities for the greater part of India."

—E.B.Havell, HARI., p. 156

इति सो चिन्तयित्वान गुहसीवो नराधिपो।
पव्वाजेसी सकारट्ठ निगण्ठे ते असेसके।।८९।।
ततो निगण्ठा सव्वेपि धतसित्तानला यथा।
कोधग्गिजलिता गच्छं पुरं पाटलिपुत्तकं।।९०।।
तत्थ राजा महातेजो जम्बुदीपस्स इस्सरो।
पण्डु नामोतदा आसि अनन्त बलवाहनो।।९१।।
कोधन्धो'य निगण्ठा ते सव्वे पेसुञ्ञकारका।
उपसंकम्मराजानं इदं वचनमब्रवु।।९२।। इत्यादि

—दाठा., पृ. १३-१४

१. बंबिओ जैस्मा., पृ. ९४-९६।
२. बंबिओ जैस्मा., पृ. १०१-१०४।

यद्यपि गुप्त वंश के राज्यकाल में ब्राह्मण धर्म की उन्नति हुई थी, किन्तु जन-साधारण में अब भी जैन और बौद्ध धर्मों का ही प्रचार था। दिगम्बर जैन मुनिगण ग्राम-ग्राम विचर कर जनता का कल्याण कर रहे थे और दिगम्बर उपाध्याय जैन-विद्यापीठों के द्वारा ज्ञान-दान करते थे। गुप्त काल में मथुरा, उज्जैन, श्रावस्ती राजगृह आदि स्थान जैन धर्म के केन्द्र थे। इन स्थानों पर दिगम्बर जैन साधुओं के संघ विद्यमान थे। गुप्त सम्राट अब्राह्मण साधुओं से द्वेष नहीं रखते थे[1], तथापि उनका वाद ब्राह्मण विद्वानों के साथ कराकर सुनना उन्हें पसंद था।

श्री सिद्धसेनादिवाकर के उद्‌गारों से पता चलता है कि "उस समय सरलवाद पद्धति और आकर्षक शान्ति वृत्ति का लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। निर्ग्रंथ अकेले-दुकेले ही ऐसे स्थलों पर जा पहुँचते थे और ब्रह्मणादि प्रतिवादी विस्तृत शिष्य-समूह और जन-समुदाय सहित राजसी ठाट-बाट के साथ पेश-आते थे, तो भी जो निर्ग्रंथो को मिलता था वह उन प्रतिवादियों को अप्राप्य था।[2]

बंगाल में पहाड़पुर नामक स्थान दिगम्बर जैन संघ का केन्द्र था। वहाँ के दिगम्बर मुनि प्रसिद्ध थे।[3]

गुप्त वंश में चन्द्रगुप्त द्वितीय प्रतापी राजा था। उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धरण की थी। विद्वानों का कथन है कि उसी की राज-सभा में निम्नलिखित विद्वान थे[4]-

'धन्वन्तरिः क्षपणकोऽमरसिंहशंकु-
वेतालभट्टघट खर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां।
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य।।'

इन विद्वानों में 'क्षपणक' नाम का विद्वान एक दिगम्बर मुनि था। आधुनिक विद्वान उन्हें सिद्धसेन नामक दिगम्बर जैनाचार्य प्रकट करते हैं।[5] जैन शास्त्र भी उनका समर्थन करते हैं। उनसे प्रकट है कि श्री सिद्धसेन ने 'महाकाली' के मन्दिर में चमत्कार दिखाकर चन्द्रगुप्त को जैन धर्म में दीक्षित कर लिया था।[6]

---

१. भाइ., पृ.९१।
२. जैहि., भा. १४, पृ. १५६।
३. IHQ, VII,441.
४. रश्रा., पृ. १३३
५. रश्रा. चरित्र, पृ. १३३-१४१।
६. वीर, वर्ष १, पृ. ४७१।

उपर्युक्त विद्वानों में से अमरसिंह[1], वराहमिहिर[2] आदि ने अपनी रचनाओं मे जैनों का उल्लेख किया है, उससे भी प्रकट है कि उस समय जैन धर्म काफी उन्नत रुप में था। वराहमिहिर ने जैनों के उपास्य देवता की मूर्ति नग्न बनती लिखी है, जिससे स्पष्ट है कि उस समय उज्जैनी में दिगम्बर धर्म महत्त्वपूर्ण था। जैन साहित्य से प्रकट है कि उज्जैनी के निकट भद्दलपुर (वीसनगर) में उस समय दिगम्बर मुनियों का संघ मौजूद था, जिसके आचार्यों की कालानुसार नामवली निम्न प्रकार है–

१.	श्री मुनि वज्रनन्दी	–	सन् ३०७ में आचार्य हुये
२.	श्री मुनि कुमार नन्दी	–	सन् ३२९ में आचार्य हुये
३.	श्री मुनि लोकचन्द्र प्रथम	–	सन् ३६० में आचार्य हुये
४.	श्री मुनि प्रभाचन्द्र प्रथम	–	सन् ३९६ में आचार्य हुये
५.	श्री मुनि नेमिचन्द्र प्रथम	–	सन् ४२१ में आचार्य हुये
६.	श्री मुनि भानुनन्दि	–	सन् ४३० में आचार्य हुये
७.	श्री मुनि जयनन्दि	–	४५१ में आचार्य हुये
८.	श्री मुनि वसुनन्दि	–	४६८ में आचार्य हुये
९.	श्री मुनि वीरनन्दि	–	४७४ में आचार्य हुये
१०.	श्री मुनि रत्ननन्दि	–	५०४ में आचार्य हुये
११.	श्री मुनि माणिक्यनन्दि	–	५२८ में आचार्य हुये
१२.	श्री मुनि मेघचन्द्र	–	५४४ में आचार्य हुये
१३.	श्री मुनि शान्ति कीर्ति प्रथम	–	५६० में आचार्य हुये
१४.	श्री मुनि मेरुकीर्ति प्रथम	–	५८५ में आचार्य हुये[3]

इनके बाद जो दिगम्बर जैनाचार्य हुये, उन्होंने भद्दलपुर (मालवा) से हटाकर जैन संघ का केन्द्र उज्जैन मे बना दिया।[4] इससे भी स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के निकट जैन धर्म को आश्रय मिला था। उसी समय चीनी यात्री फाह्यान भारत में आया था। उसने मथुरा के उपरान्त मध्यप्रदेश में ९६ पाखण्डों का प्रचार लिखा है। वह कहता है कि "वे सब लोक और परलोक मानते हैं। उनके साधु–संघ हैं। वे भिक्षा करते हैं, केवल भिक्षापात्र नहीं रखते। सब नाना रुप से धर्मानुष्ठान करते हैं।" दिगम्बर मुनियों के पास भिक्षापात्र नहीं होता–वे पाणिपात्र भोजी और उनके संघ होते हैं तथा वे मुख्यतः अहिंसा धर्म का उपदेश देते हैं। फाह्यान भी कहता है कि "सारे

१. अमरकोष देखो।
२. 'नग्नान् जिनानां विदुः।'– वराहमिहिर संहिता
३. पट्टवाली जैहि., भाग ६, अंक ७-८, पृ. २९-३० व IA, XX, 351-352
४. IA, XX, 352.

देश में सिवाय चाण्डाल के कोई अधिवासी न जीवहिंसा करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन खाता है।....न कहीं सूनागार और मद्य की दुकानें है।[१] ....उसके इस कथन से भी जैन मान्यता का समर्थन होता है कि भद्दलपुर, उज्जैनी आदि मध्यप्रदेशवर्ती नगरों मे दिगम्बर जैन मुनियों के संघ मौजद थे और उनके द्वारा अहिंसा धर्म की उन्नति होती थी।

फाह्यान संकाश्य, श्रावस्ती, राजगृह आदि नगरों में भी निर्ग्रंथ साधुओं का अस्तित्त्व प्रगट करता है। संकाश्य उस समय जैन तीर्थ माना जाता था। संभवतः यह भगवान् विमलनाथ तीर्थंकर का कैवल्यज्ञान का स्थान है। दो-तीन वर्ष हुये, वहीं निकट से एक नग्न जैन मूर्ति निकली थी और वह गुप्त काल की अनुमान की गई है।[२] इस तीर्थ के सम्बन्ध में निर्ग्रंथो और बौद्ध भिक्षुओं मे वाद हुआ वह लिखता है।[३] श्रावस्ती में भी बौद्धों ने निर्ग्रंथो से विवाद किया वह बताता है।[४] श्रावस्ती में उस समय सुहृदध्वज वंश केजैन राजा राज्य करते थे।[५] कुहाऊं(गोरखपुर) से जो स्कन्दगुप्त के राजकाल का जैन लेख मिला है[६] उससे स्पष्ट है कि इस ओर अवश्य ही दिगम्बर जैन धर्म उन्नतावस्था पर था।

साँची से एक जैन लेख विक्रम सं. ४६८ भाद्रपद चतुर्थी का मिला है। उसमें लिखा है कि उन्दान के पुत्र आमरकार देव ने ईश्वरवासक गाँव और २५ दीनारों का दान किया। यह दान काकनावोट के जैन विहार में पाँच जैन भिक्षुओं के भोजन के लिये और रत्नगृह में दीपक जलाने के लिये दिया गया था। उक्त आमरकारक देव चन्द्रगुप्त के यहाँ किसी सैनिक पद पर नियुक्त था।[७] यह भी जैनोत्कर्ष का द्योतक है।

राजगृह पर भी फाह्यान निर्ग्रंथों का उल्लेख करता है[८]। वहाँ की सुभद्र गुफा में तीसरी या चौथी शताब्दि का एक लेख मिला है जिससे प्रकट है कि मुनि संघ ने मुनि वैरदेव को आचार्य पद पर नियुक्त किया था।[९] राजगृह में गुप्त काल की अनेक दिगम्बर मूर्तियाँ भी हैं।[१०]

---

१. फाह्यान, पृ. ३१
२. IHQ, Vol. V.p.142.
३. फाह्यान, पृ. ३५-३६।
४. फाह्यान, पृ. ४०-४५।
५. संप्राजैस्मा, पृ. ६५।
६. भाप्रारा., भा. २, पृ. २८९।
७. भाप्रारा., भा. २, पृ. २६३।
८. "Here also the Nigantha made a pit with fire in it and poisoned the food of which the invited Buddha to patake (The Nirgranthas were ascetics who went naked".) — Fa-Hian. Beal.pp.110-113
यह उल्लेख साम्प्रदायिक द्वेष का द्योतक है।
९. बंबिओ जैसमा., पृ. १६।
१०. "Report on the Ancient Jain Remains on the hills of Rajgir" submitted to he Patna Court by R.B. Ramprasad Chanda B.A.Ch. IV.,p.30 (Jain images of the Gupta & Pala period at Rajgir).

सारांशतः गुप्तकाल में दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य था और वे सारे देश में घूम-घूम कर धर्मोद्योत कर रहे थे।

---

[१८] हर्षवर्द्धन तथा ह्वेनसांग के समय में दिगम्बर मुनि

"बौद्धों और जैनियों की भी संख्या बहुत अधिक थी।...बहुत से प्रान्तीय राजा भी इनके अनुयायी थे। इनके धार्मिक सिद्धान्त और रीतिरिवाज भी तत्कालीन समाज पर पर्याप्त प्रभाव डाले हुये थे। इनके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में साधुओं, तपस्वियों, भिक्षुओं और यतियों का एक बड़ा भारी समुदाय था, जो उस समय के समाज में विशेष महत्त्व रखता था।....(हिन्दुओं में) बहुत से साधु अपने निश्चित स्थानों पर बैठे हुये ध्यान-समाधि करते थे, जिनके पास भक्त लोग उपदेश आदि सुनने आया करते थे। बहुत से साधु शहरों व गाँवों में घूम-घूमकर लोगों को उपदेश व शिक्षा दिया करते थे। यही हाल बौद्ध भिक्षुओं और जैन साधुओं का भी था।....साधारणतः लोगों के जीवन को नैतिक एवं धार्मिक बनाने में इन साधुओं, यतियों और भिक्षुओं का बड़ा भारी भाग था।"[१] —कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

गुप्त साम्राज्य के नष्ट होने पर उत्तर-भारत का शासन योग्य हाथों में न रहा। परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही हूण जाति के लोगों ने भारत पर आक्रमण करके उस पर अधिकार जमा लिया। उनका राज्य सभी धर्मों के लिये थोड़ा-बहुत हानिकारक हुआ, किन्तु यशोवर्मन राजा ने संगठन करके उन्हें परास्त कर दिया। इसके बाद हर्षवर्द्धन नामक सम्राट एक ऐसे राजा मिलते हैं जिन्होंने सारे उत्तर-भारत में प्रायः अपना अधिकार जमा लिया था और दक्षिण-भारत को हथियाने की भी जिन्होंने कोशिश की थी। इनके राजकाल में प्रजा ने संतोष की सांस ली थी और वह धर्म-कर्म की बातों की ओर ध्यान देने लगी थी।

गुप्तकाल से ही ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान होने लगा था और इस समय भी उसकी बाहुल्यता थी, किन्तु जैन और बौद्ध धर्म भी प्रतिभाशाली थे। धार्मिक जागृति का वह उन्नत काल था। गुप्तकाल से जैन, बौद्ध और ब्राह्मण विद्वानों में वाद और

---

१. हर्षकालीन भारत-"त्यागभूमि", वर्ष २, खण्ड १, पृ. ३०१।

शास्त्रार्थ होना प्रारम्भ हो गये थे। हर्ष के काल में उनको वह आदर [illegible] मिला कि समाज में विद्वान ही सर्वश्रेष्ठ पुरुष गिना जाने लगा।[1] इन विद्वानों में दिगम्बर मुनियों का भी सद्भाव था। सम्राट हर्ष के राजकवि बाण ने अपने ग्रंथों में उनका उल्लेख किया है। वह लिखता है कि "राजा जब गहन जंगल मे जा पहुंचा तो वहाँ उसने अनेक तरह के तपस्वी देखे। उनमें नग्न (दिगम्बर) आर्हत (जैन) साधु भी थे।[2] हर्ष ने अपने महासम्मेलन में उन्हें शास्त्रार्थ के लिये बुलाया था और वह एक बड़ी संख्या में उपस्थित हुये थे।[3] इससे प्रकट होता है कि उस समय हर्ष की राजधानी के आस-पास भी जैन धर्म का प्राबल्य था, वैसे तो वह सारे भारत में फैला हुआ था। उज्जैन का दिगम्बर जैन संघ अब भी प्रसिद्ध था और उसमें तत्कालीन निम्न दिगम्बर जैनाचार्य मौजूद थे[4] -

१. श्री दिगम्बर जैनाचार्य महाकीर्ति, सन् ६२९ को आचार्य हुये
२. श्री दिगम्बर जैनाचार्य विष्णुनन्दि सन् ६४७ को आचार्य हुये
३. श्री दिगम्बर जैनाचार्य श्रीभूषण सन् ६६९ को आचार्य हुये
४. श्री दिगम्बर जैनाचार्य श्रीचन्द्र सन् ६७८ को आचार्य हुये
५. श्री दिगम्बर जैनाचार्य श्रीनन्दि सन् ६९२ को आचार्य हुये
६. श्री दिगम्बर जैनाचार्य देशभूषण सन् ७०८ को आचार्य हुये

सम्राट हर्ष के समय में (७ वी श.) चीन देश से ह्वेनसांग नामक यात्री भारत आया था। उसने भारत और भारत के बाहर दिगम्बर जैन मुनियों का अस्तित्व बतलाया है।[5] वह उन्हें निर्ग्रंथ और नंगे साधु लिखता है तथा उनकी केशलुञ्चन क्रिया का भी उल्लेख करता है।[6] वह पेशावर की ओर से भारत में घुसा था और वहीं सिंहपुर में उसने नंगे जैन मुनियों को पाया था।[7] 'इसके उपरान्त पंजाब और मथुरा, स्थानेश्वर, ब्रह्मपुर, आहिक्षेत्र, कपिथ, कन्नौज, अयोध्या, प्रयाग, कौशांबी, बनारस, श्रावस्ती इत्यादि मध्यप्रदेशवर्ती नगरों में यद्यपि उसने दिगम्बर मुनियों का पृथक् उल्लेख नहीं किया है, परन्तु एक साथ सब प्रकार के साधुओं का उल्लेख करके उसने उनके अस्तित्व को इन नगरों में प्रकट कर दिया है। मथुरा के सम्बन्ध में वह लिखता है

---

१. भाइ., पृ. १०३-१०४।

२. दिमु., पृ. २१।

३. Hari., p.270.

४. जैहि., ए.भा. ६, अंक ७-८, पृ. ३० व I.A.,' XX-352.

५. "Hieun Tsang found them (Jains) spread through the whole of India and even beyond its boundaries.-" AISJ.P.45
विशेष के लिये ह्वेनसांग का भारत भ्रमण (इण्डियन प्रेस लि.) देखो।

६. "The Li-hi (Nirgranthas) distinguish themselves by leaving their bodies naled & puling out their hair. Their skin is all cracked their feet are hard & chapped like cotting trees." -(St. Julien, Vienna.p.224)

७. हुमा., पृ. १४३।

कि "पाँच देव मन्दिर भी है, जिनमें सब प्रकार के साधु उपासना करते हैं।"[१] स्थानेश्वर के विषय मे उसने लिखा है कि "कई सौ देव मन्दिर बने हैं, जिनमें नाना जाति के अगणित भिन्न धर्मावलम्बी उपासना करते हैं।"[२] ऐसे ही उल्लेख अन्य नगरों के सम्बन्ध में उसने किये हैं।

राजगृह के वर्णन में ह्वेनसांग ने लिखा है कि "विपुल पहाड़ी की चोटी पर एक स्तूप उस स्थान मे है, जहाँ प्राचीन काल में तथागत भगवान् ने धर्म की पुनरावृत्ति की थी। आजकल बहुत से निर्ग्रंथ लोग (जो नंगे रहते है, इस स्थान पर आते हैं और रात–दिन अविराम तपस्या किया करते हैं तथा सवेरे से सांझ तक इस (स्तूप) की प्रदक्षिणा करके बड़ी भक्ति से पूजा करते है।"[३]

पुण्ड्रवर्द्धन (बंगाल) में वह लिखता है कि "कई सौ देवमन्दिर भी हैं जिनमें अनेक संप्रदाय के विरुद्ध धर्मावलम्बी उपासना करते हैं। अधिक संख्या निर्ग्रंथ लोगों (दिगम्बर मुनियों) की है।"[४]

समतट (पूर्वी बंगाल) में भी उसने अनेक दिगम्बर साधु पाये थे। वह लिखता है, "दिगम्बर साधु, जिनको निर्ग्रंथ कहते है, बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते है।"[५]

ताम्रलिप्ति में वह विरोधी और बौद्ध दोनों का निवास बतलाता है। कर्णसुवर्ण के सम्बन्ध में भी यही बात कहता है।[६]

कलिंग में इस समय दिगम्बर जैन धर्म प्रधान पद ग्रहण किये हुए था। ह्वेनसांग कहता है कि वहाँ 'सबसे अधिक संख्या निर्ग्रंथ लोगों की है।'[७] इस समय कलिंग में सेनवंश के राजा राज्य कर रहे थे, जिनका जैन धर्म से सम्बन्ध होना बहुत कुछ संभव है।[८]

दक्षिण कौशल में वह विधर्मी और बौद्ध दोनों को बताता है। आन्ध्र में भी विरोधियों का अस्तित्त्व वह प्रकट करता है।[९]

चोल देश में बहुत से निर्ग्रंथ लोग बताता हैं।[१०] द्रविड़ के सम्बन्ध में वह कहता है कि "कोई अस्सी देव मन्दिर और असंख्य विरोधी हैं, जिनको निर्ग्रंथ कहते हैं।[११]

---

१. हुभा., पृ. १८१।
२. हुभा., पृ. १८६।
३. हुभा., पृ. ४७४–४७५।
४. हुभा., पृ. ५२६।
५. हुभा., पृ. ५३३।
६. हुभा., पृ. ५३५–५३७।
७. हुभा., पृ. ५४५।
८. वीर, वर्ष ४, पृ. ३२८–३३२।
९. हुभा., पृ. ५४६–५५७।
१०. हुभमा., पृ. ५७०।
११. हुभा., पृ. ५७२

मालकूट (मलय देश) में वह बताता है कि "कई सौ देव मंदिर और असंख्य विरोधी हैं, जिनमें अधिकतर निर्ग्रंथ लोग हैं।"[१]

इस प्रकार ह्वेनसांग के भ्रमण-वृतान्त से उस समय प्रायः सारे भारतवर्ष में दिगम्बर जैन मुनि निर्बाध विहार और धर्म प्रचार करते हुये मिलते हैं।

---

[११] मध्यकालीन हिन्दू राज्य में दिगम्बर मुनि

"श्री धाराधिप-भोजराज-मुकुट-प्रोताश्मरश्मिच्छटा-
च्छाया-कुंकम-पंक-लिप्त-चरणाम्भोजात-लक्ष्मीधवः।
न्यायाब्जाकरमण्डने दिनमणिश्शब्दाब्ज-रोदोमणि-
स्थेयात्पण्डित-पुण्डरीक तरणि श्रीमान्प्रभाचन्द्रमाः।।"

—चन्द्रागिरि शिलालेख

राजपूत और दिगम्बर मुनि

हर्ष के उपरान्त उत्तर भारत में कोई एक सम्राट न रहा, बल्कि अनेक छोटे-छोटे राज्यों में यह देश विभक्त हो गया। इन राज्यों में अधिकांश राजपूतों के अधिकार में थे और इनमें दिगम्बर मुनि निर्बाध विचर कर जनकल्याण करते थे। राजपूतों में अधिकांश जैसे चौहान, पड़िहार आदि एक समय जैन धर्म के भक्त थे और उनके कुलदेवता चक्रेश्वरी, अम्बा आदि शासन देवियां थी।[२]

उत्तर-भारत में कन्नौज को राजपूत-काल में भी प्रधानता प्राप्त रही है। वहाँ का राजाभोज परिहार (८४०-९० ई.) सारे उत्तर भारत का शासनाधिकारी था। जैनाचार्य बप्पसूरि ने उसके दरबार में आदर प्राप्त किया था।[३]

श्रावस्ती, मथुरा, असाईखेड़ा, देवगढ़, बारानगर, उज्जैन आदि स्थान उस समय भी जैन केन्द्र बने हुये थे। ग्यारहवीं शताब्दी तक श्रावस्ती में जैन धर्म राष्ट्र धर्म रहा था। वहाँ का अन्तिम राजा सुहृद्ध्वज था।[४] उसके संरक्षण में दिगम्बर मुनियों का लोककल्याण में निरत रहना स्वाभाविक है।

---

१. हुमा॰ पृ॰ ५७४
२. वीर, वर्ष, ३ पृ॰ ४७२ – एक प्राचीन जैन गुटका में यह बात लिखी हुई है।
३. भाइ॰ पृ॰ १०८ व दिजै॰ वर्ष २३, पृ॰ ८४ ।
४. संप्राजैस्मा पृ.६५

बनारस के राजा भीमसेन जैनधर्मानुयायी थे और वह अन्त मे पिहिताश्रव नामक जैनमुनि हुये थे।[१]

मथुरा के रणकेतु नामक राजा जैन धर्म का भक्त था। वह अपने भाई गुणवर्मा सहित नित्य जिनपूजा किया करता था। आखिर गुणवर्मा को राज्य देकर वह जैन मुनि हो गया था।[२]

सूरीपूर (जिला आगरा) का राजा जितशत्रु भी जैनी था। वह बड़े-बड़े विद्वानों का आदर करता था। अन्त में वह जैन मुनि हो गया था और शान्तिकीर्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ था।[३]

मालवा के परमारवंशी राजाओं में मुञ्ज और भोज अपनी विद्यारसिकता के लिये प्रसिद्ध है। उनकी राजधानी धार नगरी विद्या केन्द्र थी। मुञ्ज के दरबार में धनपाल, पद्मगुप्त, धनञ्जय, हलायुद्ध आदि अनेक विद्वान थे।[४] मुञ्जनरेश से दिगम्बर जैनाचार्य महासेन ने विशेष सम्मान पाया था।[५] मुञ्ज के उत्तराधिकारी सिंधु राज के एक सामन्त के अनुरोध पर उन्होंने 'प्रद्युम्न चरित' काव्य की रचना की थी। कवि धनपाल का छोटा भाई जैनाचार्य के उपदेश से जैन हो गया था, किन्तु धनपाल को जैनों से चिढ़ थी। आखिर उनके दिल पर भी सत्य जैन धर्म का सिक्का जम गया और वह भी जैनी हो गये थे।[६]

दिगम्बर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्र जी राजा मुञ्ज के समकालीन थे। उन्होनें राज का मोह तयागकर दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की थी।[७]

राजा मुञ्ज के समय में ही प्रसिद्ध दिगम्बरचार्य श्री अमितगति जी हुये थे। वह माथुर संघ के आचार्य माधवसेन के शिष्य थे। 'आचार्यवर्य अमितगति बड़े भारी विद्वान् और कवि थे। इनकी असाधारण विद्वता का परिचय पाने को इनके ग्रथों का

---

१. जैप्र., पृ. २४२।
२. पूर्व.।
३. पूर्व., पृ. २४१।
४. भप्रारा. भा. १, पृ. १००।
५. मप्राजैस्मा., भूमिका, पृ. २०।
६. भप्रारा., भा. १, पृ. १०३-१०४।
७. मजैइ., पृ. ५४-५५।

मनन करना चाहिये। रचना सरल और सुखसाध्य होने पर भी बड़ी गंभीर और मधुर है। संस्कृत भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था।[1]

'नीतिवाक्यामृत' आदि ग्रंथों के रचयिता दिगम्बराचार्य श्री सोमदेव सूरि श्री अमितगति आचार्य के समकालीन थे। उस समय इन दिगम्बराचार्यों द्वारा दिगम्बर धर्म की खूब प्रभावना हो रही थी।[2]

राजाभोज और दिगम्बर मुनि

मुञ्ज के समान राजाभोज के दरबार में भी जैनों को विशेष सम्मान प्राप्त था। भोज स्वयं शैव था, परन्तु 'वह जैनों और हिन्दुओं के शास्त्रार्थ का बड़ा अनुरागी था।' श्री प्रभाचन्द्राचार्य का उसने बड़ा आदर किया था। दिगम्बर जैनाचार्य श्री शांतिसेन ने भोज की सभा में सैकड़ो विद्वानों से वाद करके उन्हें परास्त किया था।[3]

एक कवि कालिदास राजाभोज के दरबार में भी थे। कहते हैं कि उनकी स्पर्द्धा दिगम्बराचार्य श्री मानतुंग जी से थी। उन्हीं के उकसाने पर राजा भोग ने मानतुंगाचार्य को अड़तालीस कोठों के भीतर बन्द कर दिया था, किन्तु श्री भक्तामर स्तोत्र' की रचना करते हुये वह आचार्य अपने योगबल से बन्धनमुक्त हो गए थे। इस घटना से प्रभावित होकर कहते हैं, राजाभोज जैन धर्म में दीक्षित हो गये थे,[4] किन्तु इस घटना का समर्थन किसी अन्य श्रोत से नहीं होता।

श्री ब्रह्मदेव के अनुसार 'द्रव्यसंग्रह' के कर्ता श्री नेमिचन्द्राचार्य भी राजाभोज के दरबार में थे।[5] श्री नयनन्दी नामक दिगम्बर जैनाचार्य ने अपना "सुदर्शन चरित्र" राजाभोज के राजकाल में समाप्त किया था।[6]

उज्जैनी का दिगम्बर संघ

भोज ने अपनी राजधानी उज्जैनी में उपस्थित की थी। उस समय भी उज्जैनी अपने "दिगम्बर जैन संघ के लिए प्रसिद्ध थी। उस समय तक संघ में निम्न आचार्य हुए थे[7]–

अनन्तकीर्ति	सन् ७०८ ई.
धर्मनन्दि	सन् ७२८ ई.

१. विको., भा. २, पृ. ६४।
२. विर., पृ. ११५।
३. भाप्रारा., भाग १, पृ. ११८-१२१।
४. भक्तामर कथा, जैप्र., पृ. २३९।
५. द्रसं., पृ. १ वृत्ति.।
६. मप्राजैस्मा., भूमिका, पृ. २०।
७. जैहि. भा. ६, अंक ७-८ पृ. ३०-३१

विद्यानन्दि	सन् ७५१ ई.
रामचन्द्र	सन् ७८३ ई.
रामकीर्ति	सन् ७९० ई.
अभयचन्द्र	सन् ८२१ ई.
नरचन्द्र	सन् ८४० ई.
नागचन्द्र[1]	सन् ८५९ ई.
हरिनन्दि	सन् ८८२ ई.
हरिचन्द्र	सन् ८९१ ई.
महीचन्द्र	सन् ९१७ ई.
माघचन्द्र	सन् ९३३ ई.
लक्ष्मीचन्द्र	सन् ९६६ ई.
गुणकीर्ति	सन् ९७० ई.
गुणचंद्र	सन् ९९१ ई.
लोकचन्द्र	सन् १००९ ई.
श्रुतकीर्ति	सन् १०२२ ई.
भावचन्द्र	सन् १०३७ ई.
महीचन्द्र	सन् १०५८ ई.

आपके संघ मे दिगम्बर मुनियों की संख्या अधिक थी और आपके धर्मोपदेश के द्वारा धर्म प्रभावना विशेष हुई थी।[2]

इनकी उपाधियाँ 'त्रिविध विधेश्वरवैयाकरणभास्कर–महा–मंडलाचार्यतर्कवागीश्वर' थी। इनके विहार द्वारा खूब प्रभावना हुई।[3]

बाद के परमार राजाओं के समय में दिगम्बर मुनि

मालवा के परमार राजाओं में विन्ध्यवर्मा का नाम भी उल्लेखनीय है। इस राजा के राजकाल में प्रसिद्ध जैन कवि आशाधर ने ग्रंथ रचना की थी और उस समय कई दिगम्बर मुनि भी राजसम्मान पाये हुये थे। इनमें मुनि उदयसेन और मुनि मदनकीर्ति उल्लेखनीय हैं। मुनि मदनकीर्ति ही विन्ध्यवर्मा के पुत्र अर्जुनदेव के राजगुरु मदनोपाध्याय अनुमान किये गये हैं। इन्हें और मुनि विशलकीर्ति, मुनि विनयचन्द्र

---

१. ईडर से प्राप्त पट्टावली में लिखा है कि "इन्होंने दस वर्ष विहार किया था और यह स्थिर व्रती थे।"–दिजै., वर्ष १४, अंक १०, पृ. १७–२४

२. दिजै., वर्ष १४, अंक १०, पृ. १७–२४।

३. पूर्व.

आदि को कविवर आशाधर ने जैन सिद्धान्त और साहित्य ज्ञान में निपुण बनाया था। नालछा उस समय जैन धर्म का केन्द्र था।[१]

श्वेताम्बर ग्रन्थ "चतुर्विंशति प्रबन्ध में लिखा है कि उज्जैनी में विशालकीर्ति नामक दिगम्बराचार्य के शिष्य मदनकीर्ति नाम के दिगम्बर साधु थे। उन्होंने वादियों को पराजित करके 'महाप्रामाणिक'पदवी पाई थी और कर्णाटक देश में जाकर विजयपुर नरेश कुन्तिभोज के दरबार में आदर पाया था और अनेक विद्वानों को पराजित किया था, किन्तु अन्त में वह मुनिपद से भ्रष्ट हो गए थे।[२]

गुजरात के शासक और दिगम्बर मुनि

मालवा के अनुरूप गुजरात भी दिगम्बर जैन मुनियों का केन्द्र था। अंकलेश्वर में भूतबलि और पुष्पदन्ताचार्य ने दिगम्बर आगम ग्रंथो की रचना की थी। गिरि नगर के निकट की गुफाओं में दिगम्बर मुनियों का संघ प्राचीन काल से रहता था। भृगुकच्छ भी दिगम्बर जैनों का केन्द्र था।

गुजरात में चालुक्य, राष्ट्रकूट आदि राजाओं के समय में दिगम्बर जैन धर्म उन्नतशील था। सोलंकियो की राजधानी अणहिलपुरपट्टन में अनेक दिगम्बर मुनि थे। श्रीचन्द्र मुनि ने वहीं ग्रंथ रचना की थी।[३] योगचन्द्र मुनि[४] और मुनि कनकामर भी शायद गुजरात में हुए थे। ईडर के दिगम्बर साधु प्रसिद्ध थे।

सोलंकी सिद्धराज ने एक वाद सभा कराई थी, जिसमें भाग लेने के लिये कर्णाटक देश से कुमुदचन्द्र नामक एक दिगम्बर जैनाचार्य आये थे। दिगम्बराचार्य नग्न ही पाटन पहुंचे थे। सिद्धराज ने उनका बड़ा आदर किया था। देवसूरि नामक श्वेताम्बराचार्य से उनका वाद हुआ था।[५] इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उस समय भी दिगम्बर जैनों का गुजरात में इतना महत्त्व था कि शासक राजकुल का भी ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ था।

दिगम्बराचार्य ज्ञानभूषण

गुर्जर, सौराष्ट्र आदि देशों में जिन धर्म प्रचार श्री दिगम्बर भट्टारक ज्ञानभूषण जो द्वारा हुआ था। अहीर देश में उन्होंने ऐलक पद धारण किया था और वाग्वर देश में महाव्रतों को उन्होंने अंगीकार किया था। विहार करते हुये वह कर्णाटक, तौलव, तिलंग, द्रविड़, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, रायदेश, मेदपाट, मालव, मेवात, कुरुजांगल,

---

१. भाप्रारा., भाग १, पृ. १५७ व सागार. भूमिका, पृ. ९।
२. जैहि., भा. ११, पृ. ४८५।
३. वीर, वर्ष १, पृ. ६३७।
४. वीर, वर्ष १, पृ. ६३८।
५. विको., भा. ५, पृ. १०५।

तुरुव, विराटदेश, नामियाडदेश, टग, राट, नाग, चोल आदि देशों में विचरे थे। तौलव देश के महावादीश्वर विद्वज्जनों और चक्रवर्तियों के मध्य उन्होंने प्रतिष्ठा पाई थी। तुरुव देश में षट्दर्शन के ज्ञाताओं का गर्व उन्होंने नष्ट किया था। नमियाड़ देश में जिन धर्म प्रचार के लिए नौ हजार उपदेशकों को उन्होंने नियुक्त किया था। दिल्ली पट्ट के वह सिंहासनाधीश थे। श्री देवरायराज, मुदिपालराय, रामनाथराय, बोमरसराय, कलपराय, पाण्डुराय आदि राजाओं ने उनके चरणों की वंदना की थी।[१]

दिगम्बर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्र

श्री ज्ञानभूषण जी के प्रशिष्य श्री शुभचन्द्राचार्य भी दिगम्बर मुनि थे। उनका पट्ट भी दिल्ली में रहा था। उन्होंने भी विहार करते हुये गुजरात के वादियों का मद नष्ट किया था। वह एक अद्वितीय विद्वान् और वादी थे। उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की थी। पट्टावली में उनके लिये लिखा है कि वह "छन्द-अंलकारादिशास्त्र-समुद्र के पारगामी, शुद्धात्मा के स्वरुप चिन्तन करने ही से निन्द्रा को विनष्ट करने वाले सब देशों में विहार करने से अनेक कल्याणों को पाने वाले, विवेक, विचार, चतुरता, गम्भीरता, धीरता, वीरता, और गुणगण के समुद्र, उत्कृष्ट पात्र वाले, अनेक छात्रों का पालन करने वाले, सभी विद्वत्मण्डली में सुशोभित शरीर वाले, गौडवादियों के अन्धकार के लिये सूर्य के से, कलिंगवादिरुपी मेघ के लिये वायु के से, कर्णाटवादियों के प्रथम वचन खण्डन करने में परम समर्थ, पूर्ववादी रुपी मातंग के लिए सिंह के से, तौलवादियों की विडम्बना के लिए वीर, गुर्जरवादी रुपी समुद्र के लिए अगस्त्य के से, मालववादियों के लिये मस्तकशूल, अनेक अभिमानियों के गर्व का नाश करने वाले, स्वसमय तथा परसमय के शास्त्रार्थ को जानने वाले और महाव्रत अंगीकार करने वाले थे।"[२]

धारानगर का दिगम्बर संघ

उज्जैन के उपरान्त दिगम्बर मुनियों का केन्द्र विन्धायचल पर्वत के निकट स्थित धारानगर नामक स्थान हो गया था।[१] धारा प्राचीन काल से ही जैन धर्म का एक गढ़ था। आठवीं या नवीं शताब्दि में वहां श्री पद्मनन्दि मुनि ने 'जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति' की

---

१. जैसिभा., भाग १, किरण ४, पृ. ४८-४९।

२. जैसिभा., भा. १, कि.४, पृ. ४९-५०।

"छन्दालंकारादि-शास्त्रसरित्पतिपारप्राप्तानां शुद्धचिद्रूपचिंतन विनाशितनिद्राणां, सर्वदेशविहारावाप्तानेकभद्राणां, विवेकविचार-चातुर्य्यगुणगणसमुद्राणां, उत्कृष्टपात्राणां, पालितानेक-श्च्छात्राणां, विहितानेकोत्तमपात्राणाम् सकलविद्वज्जनसभाशोभितगात्राणां, गौडवादितमः सूर्य्य, कलिंगवादिजलदसदागति, कर्णाटवाविडम्बनवीर गुर्जर वादिसिन्धुकुम्भोद्भव, मालववादिमस्तकशूल, जितानेकाखर्वगर्वत्राटन बज्रधराणां, ज्ञानसकलस्वसमयपरसमय-शास्त्रार्थानां, अंगीकृतमहाव्रतानाम्।"

रचना की थी। इस ग्रंथ की प्रशस्ति में लिखा है कि "बारानगर में शांति नामक राजा का राज्य था। वह नगर धनधान्य से परिपूर्ण था। सम्यग्दृष्टि जनों से, मुनियों के समूह से और जैन मन्दिरों से विभूषित था। राजा शान्ति जिनशासनवत्सल, वीर और नरपति संपूजित था। श्री पद्मनन्दि जी ने अपने गुरु व अन्य रूप इन दिगम्बर मुनियों का उल्लेख किया है: वीरनन्दि[2], बलनन्दि, ऋषिविजयगुरु, माघनन्दि, सकलचन्द्र और श्रीनन्दि। इन्हीं ऋषियों की शिष्य परम्परा में उपरान्त बारानगर में निम्नलिखित दिगम्बराचार्यों का अस्तित्त्व रहा था[3]–

माघचन्द्र	सन् १०८३
ब्रह्मनन्दि	सन् १०८७
शिवनन्दि	सन् १०९१
विश्वचन्द्र	सन् १०९८
हरिनन्दि(सिंहनन्दि)	सन् १०९९
भावनन्दि	सन् ११०३
देवनन्दि	सन् १११०
विद्याचन्द्र	सन् १११३
सूरचन्द्र	सन् १११९
माघनन्दि	सन् ११२७
ज्ञाननन्दि	सन् ११३१
गंगकीर्ति	सन् ११४२

१. JAXX.353–354.
२. "सिरिनिओ गुणसहिओ रिसिविजय गुरुत्ति विक्खाओ।"
"तव संजमसंपण्णो विक्खाओ माघनन्दिगुरु।"
"णवणियमसीलकलिदो गुणवत्तो सयलचन्द गुरु।"
"तस्सेव य वरसिस्सो णिम्मलवरणाणचरण संजुत्तो।"
सम्मद्दंसणसुद्धो सिरिणंगुरुत्ति विक्खाओ। १५६।"
"पंचाचार समग्गो छज्जीवदयावरो विगदमोहो।
हरिस–विसाय–विहूणा णामेणा य वीरणंदित्ति ।।१५९।।"
"सम्मत अभिगदमणो णाणेण तह दंसणे चरित्ते य।
परतंतिणियत्तमणो बलणंदि गुरुत्ति विक्खाओ।।१६१।।
तवणियमजोगजुत्तो उज्जुत्तो णाणदंसण चरित्ते।
आरम्भकरण रहियो णामणे य पउ मणंदीत्ति।।१६३।।"
"सिरि गुरुविजय सयासे सोऊणं आगमं सुपरिसुद्धं।"
"जिणसासणवच्छलो वीरो–णरवइ संपूजिओ–बाराणयरस्स पहु णरोत्तमोखत्ति भूपालो सम्मदिट्ठिजणोघे मुणिगणणिवहेहि मंडियं रम्मे। इत्यादि
—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, जैसा सं., भाग १, अंक ४, पृ. १५०
३. जैहि., भा. ६, अंक७–८, पृ.३१ व IA.XX.354.

इन दिगम्बराचार्यों द्वारा उस समय मध्यप्रदेश में जैन धर्म का खूब प्रचार हुआ था।

वि. सं. १०२५ में अल्लू राजा नामक राजा की सभा में दिगम्बराचार्य का वाद एक श्वेताम्बर आचार्य से हुआ था।[१]

चन्देल राज्य में दिगम्बर मुनि

चन्देल राजा मदनवर्म देव के समय (११३०-११६५ ई.) में दिगम्बर धर्म उन्नत रुप मे रहा था।[२] खजुराहो के घंटाई के मन्दिर वाले शिलालेख से उस समय दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्र का पता चलता है।[३]

दिगम्बर जैन धर्म का आदर था। बीजोलिया के श्री पार्श्वनाथ जी के मन्दिर को दिगम्बर मुनि पद्मनन्दि और शुभचन्द्र के उपदेश से पृथ्वीराज ने मोराकुरी गाँव और सोमेश्वर राजा ने रेवाण नामक गाँव भेंट किये थे।[६]

चित्तौड़ का जैनकीर्ति स्तम्भ वहाँ पर दिगम्बर जैन धर्म की प्रधानता का द्योतक है। सम्राट कुमारपाल के समय वहाँ पहाड़ी पर बहुत से दिगम्बर जैन (मुनि) थे।[७]

दिगम्बर जैनाचार्य श्री धर्मचन्द्र जी का सम्मान और विनय महाराणा हम्मीर किया करते थे।

झांसी जिले का देवगढ़ नामक स्थान भी मध्यकाल में दिगम्बर मुनियों का केन्द्र था। वहाँ पाँचवीं शताब्दि से तेरहवीं शताब्दि तक का शिल्प कार्य दिगम्बर धर्म की प्रधानता का द्योतक है।

---

१. ADJB.p.45.
२. विको., भा. ७, पृ. १९२।
३. विको., भा. ५, पृ. ६८०।
४. ADJB.p.86.
५. उपदेशेन ग्रंथोऽयं गुणकीर्ति महामुनेः।
   कायस्थ पद्मनाभेन रचितः पूर्व्व सूत्रतः। —यशोधर चरित्र
६. राइ., भा. १, पृ. ३६३।
७. It (जैन कीर्तिस्तम्भ) belongs to the Digamber Jains: many of whom seem to have been upon the Hill in Kumarpal's time."
—मप्राजैस्मा. पृ. १३५
८. "श्री धर्मचन्द्रोऽजनितस्यपट्टे हमीर भूपाल समर्चनीयः।

ग्वालियर में कच्छपघाट (कछवाहे) और पड़िहार राजाओं के समय में दिगम्बर जैन धर्म उन्नत रहा था। ग्वालियर किले की नग्न जैन मूर्तियाँ इस व्याख्या की साक्षी हैं। बारानगर के बाद दिगम्बर मुनियों का केन्द्र स्थान ग्वालियर हुआ था और वहाँ के दिगम्बर मुनियों में सं. १२९६ में आचार्य रत्नकीर्ति प्रसिद्ध थे। वह स्याद्वाद विद्या के समुद्र, बालब्रह्मचारी, तपसी और दयालु थे। उनके शिष्य नाना देशों में फैले हुये थे।

मध्यप्रान्त के प्रसिद्ध हिन्दू शासक कलचूरी भी दिगम्बर जैन धर्म के आश्रयदाता थे।

बंगाल में भी दिगम्बर धर्म इस समय मौजूद था, यह बात जैन कथाओं से स्पष्ट है। 'भक्तामरकथा' में चम्पापुर का राजा कर्ण जैनी लिखा है। भगवान महावीर की जन्मनगरी विशाला का राजा लोकपाल जैनी था। पटना का राजाधात्रीवाहन श्री शिवभूषण नामक मुनि के उपदेश से जैनी हुआ था। गौड़ देश का राजा प्रजापति बौद्धधर्मी था, परन्तु जैन साधु मतिसागर की वाद शक्ति पर मुग्ध होकर प्रजा सहित जैनी हुआ था।[२] इस समय का जो जैन शिल्प बंगाल आदि प्रान्तों में मिलता है, उस से उक्त कथाओं का समर्थन होता है।

आज तक बंगाल में प्राचीन श्रावक 'सराक' लोगों का बड़ी संख्या मे मिलना वहाँ पर एक समय दिगम्बर जैन धर्म की प्रधानता का द्योतक है।

इस प्रकार मध्यकाल के हिन्दु राज्यों में प्रायः समग्र उत्तर भारत में दिगम्बर मुनियों का विहार और धर्मप्रचार होता था। आठवीं शताब्दि के उपरान्त जब दक्षिण भारत में दिगम्बर जैनों के साथ अत्याचार होने लगा, तो उन्होंने अपना केन्द्रस्थान उत्तर भारत की ओर बढ़ाना शुरु कर दिया था। उज्जैन, बारानगर, ग्वालियर आदि स्थानों का जैन केन्द्र होना, इस ही बात का द्योतक है। ईस्वीं ९-१० शताब्दि में जब अरब का सुलेमान नामक यात्री भारत में आया तो उसने भी यहाँ नंगे साधुओं को एक बड़ी संख्या में देखा था।[३] सारांशतः मध्यकालीन हिन्दू काल में दिगम्बर मुनियों का भारत में बाहुल्य था।

---

१. जैहि., भा. ६, अंक ७-८, पृ. २६।

२. जैम., पृ. २४०-२४३।

३. "In India there are persons, who, in accordance with their profession, wander in the woods and mountains and rearely communicate with the rest of mankind.....Some of them go about naked."

—Sulaiman of Arab, Elliot, I.p.6.

[२०]

भारतीय संस्कृत साहित्य में दिगम्बर मुनि

"पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमत्रं।
विस्तीर्णं वस्त्रमाशा सुदशकममलं तल्पमस्वल्पमुर्वी।।
येषां निःसङ्गताङ्गी करणपरिणतिः स्वात्मसन्तोषितास्ते।
धन्याः सन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्मनिर्मूलयन्ति।।"

वैराग्यशतक"

भारतीय संस्कृत साहित्य में दिगम्बर मुनियों के उल्लेख मिलते हैं। इस साहित्य से हमारा मतलब उस सर्वसाधारणोपयोगी संस्कृत साहित्य से है जो किसी खास सम्प्रदाय का नहीं कहा जा सकता। उदाहरणतःकविवर भर्तृहरि के शतकत्रय को लीजिये। उनके 'वैराग्यशतक' में उपर्युक्त श्लोक द्वारा दिगम्बर मुनि की प्रशंसा इन शब्दों में की गई है कि "जिनका हाथ ही पवित्र बर्तन है, माँग कर लाई हुई भीख ही जिनका भोजन है, दशों दिशायें ही जिनके वस्त्र है, सम्पूर्ण पृथ्वी ही जिनकी शय्या है, एकान्त में निःसंग रहना ही जो पसन्द करते हैं, दीनता को जिन्होंने छोड़ दिया है तथा कर्मों को जिन्होंने निर्मूल कर दिया है और जो अपने में ही संतुष्ट रहते हैं, उन पुरुषों को धन्य है।"[१] आगे इसी शतक में कविवर दिगम्बर मुनिवत् चर्या करने की भावना करते हैं–

अशीमहि वयं भिक्षामाशावासोवसीमहि।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः।।९०।

अर्थात् "अब हम भिक्षा ही करके भोजन करेंगे, दिशा ही के वस्त्र धारण करेंगे अर्थात् नग्न रहेंगे और भूमि पर ही शयन करेंगे। फिर भला हमें धनवानों से क्या मतलब?"[२]

इस प्रकार के दिगम्बर मुनि को कवि क्षमादि गुणलीन अभय प्रकट करते हैं–

---

१. वेजै., पृ.४६।
२. वेजै., पृ. ४७।

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी।
सत्यं-मित्रमिदं दया च भगिनी भ्रातामनः संयमः।।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं।
ह्येते यस्य-कुटंबिनो वद सखे कस्माद् भयं योगिनः।।९८।।

अर्थात्- "धैर्य जिसका पिता है, क्षमा जिसकी माता है, शान्ति जिसकी स्त्री है, सत्य जिसका मित्र है, दया जिसकी बहिन है, संयम किया हुआ मन जिसका भाई है, भूमि जिसकी शय्या है, दशों दिशायें ही जिसके वस्त्र है और ज्ञानामृत ही जिसका भोजन है- यह सब जिसके कुटुम्ब हों, भला उस योगी पुरुष को किसका भय हो सकता है?"[१]

'वैराग्यशतक' के उपर्युक्त श्लोक स्पष्टतया दिगम्बर मुनियों को लक्ष्य करके लिखे गये हैं। इनमें वर्णित सब ही लक्षण जैन मुनियों में मिलते हैं।

'मुद्राराक्षस' नाटक में क्षपणक जीवसिद्धि का पार्ट दिगम्बर मुनि का द्योतक है।[२] वहाँ जीवसिद्धि के मुख से कहलाया गया है-

"सासणमलिहंताण पडिवज्जह मोहवाहि वेज्जाणं।
जेमुत्तमात्तकडुअं पच्छापत्थमुपदिसन्ति ।।१८।।४।।"

अर्थात्- "मोह रूपी रोग के इलाज करने वाले अर्हतों के शासन को स्वीकार करो, जो मुहूर्त मात्र के लिये कड़ुवे है, किन्तु पीछे से पथ्य का उपदेश देते हैं।"

इस नाटक के पाँचवे अंक में जीवसिद्धि कहता है कि-

"अलहंताणं पणमामि जेदेगंभीलदाए बुद्धिए।
लोउत लेहिं लोए सिद्धिं मग्गेहि गच्छन्दि।।२।।"

भावार्थ- "संसार में जो बुद्धि की गंभीरता से लोकातीत (अलौकिक) मार्ग से मुक्ति को प्राप्त होते हैं, उन अर्हतों को मैं प्रणाम करता हूँ।"[३]

'मुद्राराक्षस' के इस उल्लेख से नन्दकाल में क्षपणक-दिगम्बर मुनियों के निर्बाध विहार और धर्म प्रचार का समर्थन होता है, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है।

'वराहमिहिर संहिता' में भी दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है। उन्हें वहाँ जिन भगवान् का उपासक बताया गया है।"[४] वराहमिहिर के इस उल्लेख से उनके समय में दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व प्रमाणित होता है। अर्हत् भगवान् की मूर्ति को भी वह नग्न ही बताते हैं।"[५]

---

१. वेजै. पृ.४७।
२. HDW.p.10.
३. वेजै.,पृ.४०-४१।
४. "शाक्यान् सर्वहितस्य शांति मनसो नग्नान् जिनानां विदु'." ।।१९।।६१।।
५. "आजानु लम्बबाहुः श्रीवत्साङ्क प्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रुपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः।।४५।।५८।।
वराहमिहिर संहिता

कवि दण्डिन् (आठवीं श.) अपने "दशकुमारचरित" मे दिगम्बर मुनि का उल्लेख 'क्षपणक' नाम से करते है, जिससे उनके समय में नग्न मुनियों का होना प्रमाणित है।"[१]

'पंचतन्त्र' (तंत्र ४) का निम्न श्लोक उस काल में दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व का द्योतक है[२]।

"स्त्रीमुद्रां मकरध्वजस्य जयिनी सर्वार्थ सम्पत् करी।
ये मूढ़ाः प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्या फलांवेषिणः।।
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः।
केचिद्रक्तपटीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे।।"

"पंचतन्त्र के "अपरीक्षितकारक पंचमतंत्र" की कथा दिगम्बर मुनियों से सम्बन्ध रखती है। उससे पाटलिपुत्र (पटना) में दिगम्बर धर्म के अस्तित्व का बोध होता है। कथा में एक नाई को क्षपणक विहार में जाकर जिनेन्द्र भगवान् की वंदना और प्रदक्षिणा देते लिखा है। उसने दिगम्बर मुनियों को अपने यहाँ निमन्त्रित किया, इस पर उन्होंने आपत्ति की कि श्रावक होकर यह क्या कहते हो? ब्राह्मणों की तरह यहाँ आमंत्रण कैसा? दिगम्बर मुनि तो आहार-वेला पर घूमते हुये भक्त श्रावक के यहाँ शुद्ध भोजन मिलने पर विधिपूर्वक ग्रहण कर लेते है।[३] इस उल्लेख से दिगम्बर मुनियों के निमन्त्रण स्वीकार न करने और आहार के लिये भ्रमण करने के नियम का समर्थन होता है। इस तंत्र में भी दिगम्बर मुनि को एकाकी, गृहत्यागी, पाणिपात्र भोजी और दिगम्बर कहा गया है।[४]

"प्रबोधचंद्रोदय" नाटक के अंक ३ में निम्नलिखित वाक्य दिगम्बर जैन मुनि की तत्कालीन बाहुल्यता के बोधक हैं-

"सहि पेक्ख पेक्ख एसौ गलण्तमल पंक पिच्छिलवीहच्छदेहच्छवीउल्लुञ्चि अचिउरो मुक्कवसणवेसदुद्दसणों सिहिसिहिदपिच्छआहत्थो इदोज्जैव पडिवहदि।"

भावार्थ- "हे सखि देख देख, वह इस ओर आ रहा है। उसका शरीर भयंकर और मलाच्छन्न है। शिर के बाल लुञ्चित किये हुये है और वह नंगा है। उसके हाथ में मोरपिच्छिका है और वह देखने में अमनोज्ञ है।

---

१. वीर, वर्ष २, पृ. ३१७।

२. पंत. निर्णयसागर प्रेस सं. १९०२, पृ. १९४ व JG.XIV, 124

३. 'क्षपणकविहारं गत्वा जिनेन्द्रस्य प्रदक्षिणत्रयं विधाय .... भोः श्रावक, धर्मज्ञोऽपि किमेवं वदसि। किं वयं ब्रह्मणसमानाः यत्र आमन्त्रणं करोषि। वयं सदैव तत्काल परिचर्यया भ्रमन्तो भक्तिभाजं श्रावकमवलोक्य तस्य गृहे गच्छामः। -पंत,पृ.-२-६ व JG.XIV. 126-130

४. 'एमाकीगृहसंत्यक्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।

इस पर उस सखी ने कहा कि–

"आँ ज्ञातंमया, महामोहप्रवर्तितोऽयंदिगम्बर सिद्धांतः।"

(ततः प्रविशतियथा निर्दिष्टः क्षपणकवेशो दिगम्बर सिद्धांतः)

भावार्थ– मैं जान गई! यह मायामोह द्वारा प्रवर्तित दिगम्बर (जैन) सिद्धान्त है।" (क्षपणक वेष में दिगम्बर मुनि ने वहाँ प्रवेश किया।)[1]

नाटक के उक्त उल्लेख से इस बात का भी समर्थन होता है कि दिगम्बर मुनि स्त्रियों के सम्मुख घरों में भी धर्मोपदेश के लिये पहुँच जाते थे।

"गोलाध्याय" नामक ज्योतिष ग्रन्थ में दिगम्बर मुनियों की दो सूर्य और दो चन्द्रादि विषयक मान्यता का उल्लेख करके उसका निरसन किया गया है। इस उल्लेख से 'गोलाध्याय' के कर्ता के समय में दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य प्रमाणित होता है। 'गोलाध्याय' के टीकाकार लक्ष्मीदास दिगम्बर सम्प्रदाय से भाव "जैनों" का प्रकट करते हैं और कहते है कि "जैनों में दिगम्बर प्रधान थे।"[2]

संस्कृत साहित्य के उपर्युक्त उल्लेखों से दिगम्बर मुनियों के अस्तित्त्व और उनके निर्बाध विहार और धर्म प्रचार का समर्थन होता है।

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय नाटक, अंक– JG, XIV, pp.46–50

2. (Goladhyay 3. Verses 8–10) The naked sectarians and the rest affirm that two suns, two moons and two sets of stars appear alternately: against them allege this reasoning. How absurd is the notion which you have formed of duplicate suns, moons and stars, when you see the revolution of the polar fish (Ursa Minor). The commentator Lakshamidas agree that the Jainas are here meant.... & remarks that they are described as 'naked sectrains' etc. because the class of Digambaras is a principal one among these people. – AR Vol. IX. p.317

[२१] दक्षिण भारत में दिगम्बर जैन मुनि

> "सरसा पयसा रिक्तेनाति तुच्छजलेन च।
> जिनजन्मादिकल्याण क्षेत्रे तीर्थत्वमाश्रिते।।४०।।
> नाशमेष्यति सद्धर्मो मारवीर मदच्छिदः।
> स्थास्यतीह क्वचित्प्रान्ते विषये दक्षिणादिके।।४१।।"
>
> —श्री भद्रबाहुचरित्र

दिगम्बर जैन धर्म दक्षिण भारत में रहना निश्चित है

दिगम्बर जैनाचार्य, राजा चन्द्रगुप्त ने जो स्वप्न देखा उसका फल बताते हुये कह गये है कि "जलरहित तथा कहीं थोड़े जल भरे हुये सरोवर के देखने से यह सच जानो कि जहाँ तीर्थंकर भगवान् के कल्याणादि हुये हैं ऐसे तीर्थ स्थानों में कामदेव के मद का छेदन करने वाला उत्तम जिन धर्म नाश को प्राप्त होगा तथा कहीं दक्षिणादि देश में कुछ रहेगा भी।"[१] और दिगम्बराचार्य की यह भविष्यवाणी करीब-करीब ठीक ही उतरी है, जबकि उत्तर भारत में कभी-कभी दिगम्बर मुनियों का अभाव भी हुआ, तब दक्षिण भारत में आज तक बराबर दिगम्बर मुनि होते आये हैं और दिगम्बर जैनों के श्री कुन्दकुन्दादि बड़े-बड़े आचार्य दक्षिण भारत में ही हुये हैं। अतः दक्षिण भारत को दिगम्बर मुनियों का गढ़ कहना बेजा नहीं है।

ऋषभदेव और दक्षिण भारत

अच्छा तो यह देखिये कि दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों का सद्भाव किस जमाने से हुआ है? जैन शास्त्र बतलाते है कि इस कल्पकाल में कर्मभूमि की आदि में श्री ऋषभदेव जी ने सर्वप्रथम धर्म का निरूपण किया था और उनके पुत्र बाहुबलि दक्षिण भारत के शासनाधिकारी थे। पोदनपुर उनकी राजधानी थी। भगवान् ऋषभदेव ही सर्वप्रथम वहाँ धर्मोपदेश देते हुये पहुंचे थे।[२] वह दिगम्बर मुनि थे, यह पहले ही लिखा जा चुका है। उनके समय में ही बाहुबलि भी राज-पाट छोड़कर दिगम्बर मुनि हो गये थे। इन दिगम्बर मुनि की विशालकाय नग्न मूर्तियाँ दक्षिण भारत में अनेक स्थानों पर आज भी मौजूद हैं। श्रवणबेलगोल में स्थित मूर्ति ५७ फीट ऊँची अति मनोज्ञ है; जिसके दर्शन करने देश-विदेश के यात्री आते हैं। कारकल-वेनूर आदि स्थानों में भी ऐसी ही मूर्तियाँ है। दक्षिण भारत में बाहुबलि मुनिराज की विशेष मान्यता है।[१]

---

१. भद्र., पृ. ३३।

२. आदिपुराण।

अन्य तीर्थंकरों का दक्षिण भारत से सम्बन्ध

ऋषभदेव के उपरान्त अन्य तीर्थंकरों के समय में भी दिगम्बर धर्म का प्रचार दक्षिण भारत में रहा था। तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जी के तीर्थ में हुये राजा करकण्डु ने आकर दक्षिण भारत के जैन तीर्थों की वन्दना की थी। मलय पर्वत पर रावण के वंशजों द्वारा स्थापित तीर्थंकरों की विशाल मूर्तियों की भी उन्होंने वन्दना की थी।[२] वहीं बाहुबलि की और श्री पार्श्वनाथ जी की मूर्तियाँ थीं जिनको रामचन्द्र जी ने लंका से लाकर यहाँ स्थापित किया था।[३] अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने भी अपने पुनीत चरणों से दक्षिण भारत को पवित्र किया था। मलय पर्वतवर्ती हेमाँग देश में जब वीर प्रभु पहुँचे थे तो वहाँ का जीवन्धर नामक राजा उनके निकट दिगम्बर मुनि हो गया था।[४] इस प्रकार अत्यन्त प्राचीनकाल से दिगम्बर मुनियों का सद्भाव दक्षिण भारत में है।

दक्षिण भारत के इतिहास के काल

किन्तु आधुनिक- इतिहासवेत्ता दक्षिण भारत का इतिहास ईस्वी पूर्व छठी या चौथी शताब्दि से आरम्भ करते है और उसे निम्न प्रकार छह भागों में विभक्त करते हैं-

(१) प्रारम्भिक काल- ईस्वी ५वीं शताब्दि तक।

(२) पल्लवकाल- ई. ५वीं से ९ वीं शताब्दि तक,

(३) चोल अभ्युदाय काल -- ई.९वीं १४वीं शताब्दि तक,

(४) विजयनगर साम्राज्य का उत्कर्ष- १४वीं से १६ वीं शताब्दि तक,

(५) मुसलमान और मरहट्टा काल- १६वीं से १८वीं शताब्दि तक,

(६) ब्रिटिश काल- १८वीं से १९ वीं शताब्दी ई. तक।

दक्षिण भारत के उत्तरसीमावर्ती प्रदेश के इतिहास के छह भाग इस प्रकार हैं-

(१) आन्ध्र काल- ई.५वीं शताब्दि तक,

(२) प्रारम्भिक चालुक्य काल--ई.५वीं से ७वीं शताब्दि और राष्ट्रकूट ७वीं से १० वीं शताब्दि तक,

(३) अन्तिम चालुक्य काल- ई.१०वीं से १४वीं शताब्दि तक,

---

१. जैशिसं.,- भूमिका, पृ. १७-३२।

२. करकण्डु चरित् संधि ५।

३. जैशिसं. भूमिका, पृ.२६।

४. भमसु.,पृ. ९६।

५. SAI. p.31

(४) विजयनगर साम्राज्य

(५) मुसलमान–मरहट्ठा,

(६) ब्रिटिश काल।

प्रारम्भिक काल में दिगम्बर मुनि

अच्छा तो उपर्युक्त ऐतिहासिक कालों में दिगम्बर जैन मुनियों के अस्तित्व को दक्षिण भारत में देख लेना चाहिये। दक्षिण भारत के "प्रारम्भिक काल" में चेर, चोल, पाण्ड्य– यह तीन राजवंश प्रधान थे।[१] सम्राट अशोक के शिलालेख में भी दक्षिण भारत के इन राजवंशों का उल्लेख मिलता है।[2] चेर, चोल और पाण्ड्य यह तीनों ही राष्ट्र प्रारम्भ से जैनधर्मानुयायी थे।[3] जिस समय करकण्डु राजा सिंहल द्वीप से लौटकर दक्षिण भारत–द्रविड़ देश में पहुंचे तो इन राजाओं से उनकी मुठभेड़ हुई थी। किन्तु रणक्षेत्र में जब उन्होंने इन राजाओं के मुकुटों में जिनेन्द्र भगवान की मुर्तियाँ देखी तो उनसे सन्धि कर ली।[४] कलिंगचक्रवर्ती ऐल. खारवेल जैन थे। उनकी सेवा में इन राजाओं में से पाण्ड्यराज ने स्वतः रत्न–भेंट भेजी थी।[५] इससे भी इन राजाओं का जैन होना प्रमाणित है, क्योंकि एक श्रावक का श्रावक के प्रति अनुराग होना स्वाभाविक है और जब ये राजा जैन थे तब इनका दिगम्बर जैन मुनियों को आश्रय देना प्राकृत आवश्यक है।

पाण्ड्यराज उग्रपेरूवलूटी (१२८–१४० ई.) के राजदरबार में दिगम्बर जैनाचार्य श्री कुन्दकुन्द विरचित तमिलग्रंथ "कुरल" प्रकट किया गया था[६]। जैन कथाग्रंथ से उस समय दक्षिण भारत में अनेक दिगम्बर मुनियों का होना प्रकट है। 'करकण्डु चरित्' में कलिंग, तेर, द्रविड़ आदि दक्षिणावर्ती देशों में दिगम्बर मुनियों का वर्णन मिलता है। भगवान् महावीरने संघ सहित इन देशों में विहार किया था, यह ऊपर लिखा जा चुका है तथा मौर्य चन्द्रगुप्त के समय श्रुतकेवली भद्रबाहु का संघ सहित दक्षिण भारत को जाना इस बात का प्रमाण है कि दक्षिण भारत में उनसे

---

१. S.A.I.p.33

२. त्रयोदश शिलालेखं।

३. "Pandya Kingdom can boast of respectable antiquity. The prevailing religion in early times in their Kingdom was jain creed."

— मजैस्मा पृ. १०५

४. "तहि अत्थि विकित्तिय दिणसराउ–संचल्लिउ ताकरकण्डु राउ।
तादिविडदेसुमहि अलु भमन्तु–संपतऊ तहिं मछरूवहन्तु।।
तहिं चोडे चोर पंडिय णिवाई–केणा विखणद्धेते मिलीयाहि।
"करकण्डएं धरियाते सिरसो सिरमउड मत्ति वरणेहिं तहो।
मउड महि देखिवि जिणपणिव करकण्डवोजायउ बहुलु दुहु।।१०।।

— करकण्डुचरित् सन्धि ८

५. JBORS. III. p.446

६. मजैस्मा., पृ. १०५।

पहले दिगम्बर जैन धर्म विद्यमान था। जैनग्रंथ "राजावली कथा" में वहाँ दिगम्बर जैन मन्दिरों और दिगम्बर मुनियों के होने का वर्णन मिलता है। बौद्ध ग्रंथ 'मणिमेखलै' में भी दक्षिण भारत में ईस्वी की प्रारम्भिक शताब्दियों में दिगम्बर धर्म और मुनियों के होने का उल्लेख मिलता है।[१]

"श्रुतावतार कथा" से स्पष्ट है कि ईस्वी की पहली शताब्दि में पश्चिम और दक्षिण भारत जैनधर्म के केन्द्र थे। श्रीधरसेनाचार्य जी का संघ गिरनार पर्वत पर उस समय विद्यमान था। उनके पास आगम ग्रंथों को अवधारण करनेके लिये दो तीक्ष्ण-बुद्धि शिष्य दक्षिण मथुरा से उनके पास आये थे और तदोपरान्त उन्होंने दक्षिण मथुरा में चतुर्मास व्यतीत किया था। इस उल्लेख से उस समय दक्षिण मदुरा का दिगम्बर मुनियों का केन्द्र होना सिद्ध है।[२]

'नालदियार' और दिगम्बर मुनि

तमिल जैन काव्य "नालदियार", जो ईस्वी पाँचवीं शताब्दि की रचना है, इस बातका प्रमाण है कि पाण्ड्यराज का देश प्राचीनकाल में दिगम्बर मुनियोंका आश्रय स्थान था। स्वयं पाण्ड्यराज दिगम्बर मुनियों के भक्त थे। "नालदियार" की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार उत्तर भारत में दुर्भिक्ष पड़ा। उससे बचने के लिये आठ हजार दिगम्बर मुनियों का संघ पाण्ड्य देश में जा रहा था, पाण्ड्यराज उनकी विद्वत्ता और तपस्या को देखकर उनका भक्त बन गया। जब अच्छे दिन आये तो इस संघ ने उत्तर भारत की ओर लौट जाना चाहा, किन्तु पाण्ड्यराज उनकी सत्संगति छोड़ने के लिये तैयार न थे। आखिर उस मुनि संघ का प्रत्येक साधु एक-एक श्लोक अपने-अपने आसन पर लिखा छोड़कर विहार कर गये। जब ये श्लोक एकत्र किये गये तो वह संग्रह एक अच्छा खासा काव्य ग्रंथ बन गया। यही 'नालदियार' था।[३] इससे स्पष्ट है कि पाण्ड्य देश उस समय दिगम्बर जैन धर्म का केन्द्र था और पाण्ड्यराज कलभ्रवंश के सम्राट् थे। यह कलभ्रवंश उत्तर भारत से दक्षिण में पहुँचा था और इस वंश के राजा दिगम्बर मुनियों के भक्त और रक्षक थे।[४]

गंग वंश के राजा और दिगम्बर मुनिगण

ईस्वी दूसरी शताब्दी में मैसूर में गंगवंशी क्षत्रिय राजा माधव कोंगुणिवर्मा राज्य कर रहे थे।[५] उनके गुरु दिगम्बर जैनाचार्य सिंहनन्दि थे। गंगवंश की स्थापना में उक्त

---

१. SSIJ. pp.32–33

२. श्रुता., पृ.१६–२०।

३. SSIJ.p.91

४. मजैस्मा. भूमिका, पृ. ८–९।

५. रश्रा. परिचय पृ. १९५

आचार्य का गहरा हाथ था। शिलालेखों से प्रकट है कि इक्ष्वाकु (सूर्यवंश) के राजा धनञ्जय की सन्तति में एक गंगदत्त नाम का राजा प्रसिद्ध हुआ और उसी के नाम से इस वंश का नाम 'गंग' वंश पड़ा था। इस गंग वंश में एक पद्मनाभ नामक राजा हुआ, जिसका राज्य उज्जैन के राजा महीपाल से छीने के कारण वह दक्षिण भारत की ओर चला गया था। उसके दो पुत्र ददिग और माधव भी उसके साथ गये थे। दक्षिण में पेरूर नामक स्थान पर उन दोनों भाइयों की भेंट कणूरगण के आचार्य सिंहनन्दि से हुई, जिन्होंने उन्हें निम्न प्रकार उपदेश दिया था-

"यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा भंग करोगे, यदि तुम जिन शासन से हटोगे, यदि तुम पर-स्त्री का ग्रहण करोगे, यदि तुम मद्य व मांस खाओगे, यदि तुम अधर्मों का संसर्ग करोगे, यदि तुम आवश्यकता रखने वालों को दान न दोगे और यदि तुम युद्ध में भाग जाओगे तो तुम्हारा वंश नष्ट हो जायेगा।[१]

दिगम्बराचार्य के इस साहस बढ़ाने वाले उपदेश को ददिग और माधव ने शिरोधार्य किया और उन आचार्य के सहयोग से वह दक्षिण भारत में अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुये थे। तदोपरान्त इस वंश के सभी राजाओं ने जैन धर्म का प्रभाव बढ़ाने का उद्योग किया था। दिगम्बर जैनाचार्य की कृपा से राज्य पा लेने की याददाश्त में इन्होंने अपनी ध्वजा में "मोरपिच्छिका" का चिन्ह रखा था, जो दिगम्बर मुनियों के उपकरणों में से एक है।

कादम्ब राजागण दिगम्बर मुनियों के रक्षक थे

गंगवंशी अविनीत कोंगुणी (सन् ४२५-४७८) ने पुन्नाट १०००० में जैन मुनियों को भूमिदान दिया था। गंगवंशी दुर्वनीति के गुरु 'शब्दावतार' के कर्ता दिगम्बराचार्य श्री पूज्यपाद थे।[२] महाराष्ट्र और कोंकण देशों की ओर उस समयकादम्ब वंश के राजा लोग उन्नत हो रहे थे। वह वंश (१) गोआ और (२) बनवासी नामक दो शाखाओं में बंटा हुआ था और इसमें जैन धर्म की मान्यता विशेष थी। दिगम्बर गुरुओं की विनय कादम्ब राजा खूब करते थे। एक विद्वान् लिखते हैं कि-

"Kadamba kings of the middle period Mrigesa to Harivarma were unable to resist the onset of Jainism: as they had to bow to the "Supreme Arhats" and endow lavishly the Jain ascetic groups.Numerous sect of Jaina priests, such as the Yapiniyas the, Nirgranthas and the Kurchakas

---

१. मजैस्मा., पृ.१४६-१४७।
२. मजैस्मा.,पृ.१४९।

are found living at Palasika. (IA, VII, 36–37) Again vetpatas and Aharashti are also mentioned (bid.VI,31) Banavase and Palasika were thus crowded centres of powerful Jain monks. Four Jaina Miss named Jayadhavala, Vijaya Dhavala, Atidhavala and Mahadhavala writen byJains gurus. Virasena and Jinasena living at Banavase during the rule of the early Kadambas were recently discovered."

— QJMS, XXII,61–62

अर्थात्– "मध्यकाल के मृगेश से हरिवर्मा एक कदम्ब वंशी राजागण जैन धर्म के प्रभाव से अपने को बचा न सके। 'महान् अर्हतदेव' को नमस्कार करते और जैन साधु संघों को खूब दान देते थे। जैन साधुओं के अनेक संघ जैसे यापनीय[१] निर्ग्रंथ[२] और कूर्चक[३] कादम्बों की राजधानी पालाशिक में रह रहे थे। श्वेतपट[४] और अहराष्टि[५] संघों के वहाँ होने का उल्लेख भी मिलता है। इस तरह पालाशिक और बनवासी सबल जैन साधुओं से वेष्टित मुख्य जैन केन्द्रथे। दिगम्बरजैन गुरु वीरसेनऔर जिनसेन ने जिन जयधवल, विजयधवल, अतिधवल और महाधवल नामक ग्रन्थों की रचना बनवासी में रहकर प्रारंभिक कदम्ब राजाओं के समय में की थी, उन चारों ग्रंथों की प्रतियाँ हाल ही में उपलब्ध हुई है।"

प्रो. शेषागिरि राउ इन प्रारंभिक कदम्बों को भी जैन धर्म का भक्त प्रकट करते हैं। उनके राज्य में दिगम्बर जैन मुनियों को धर्म प्रचार करने की सुविधायें प्राप्त थीं[६] इस प्रकार कदम्बवंशी राजाओं द्वारा दिगम्बर मुनियों का समुचित सम्मान किया गया था।

पल्लव काल में दिगम्बर मुनि

एक समय पल्लव वंश के राजा भी जैन धर्म के रक्षक थे। सातवीं शताब्दी में जब ह्वेनसांग इस देश में पहुंचा तो उसने देखा कि यहाँ दिगम्बर जैन साधुओं (निर्ग्रंथों) की संख्या अधिक हैं। पल्लव वंश के शिवस्कंदवर्मा नामक राजा के गुरु[७] दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द थे। तदोपरान्त इस वंश का प्रसिद्ध राजा महेन्द्रवर्मन् पहले जैन था और दिगम्बर साधुओं की विनय करता था।

---

१. यापनीय संघ के मुनिगण दिगम्बर वेष में रहते थे, यद्यपि वे स्त्री–मुक्ति आदि मानते थे। देखो दर्शनसार।

२. निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनि।

३. 'कूर्चक' किन जैन साधुओं का द्योतक है, यह प्रगट नहीं है।

४. श्वेतपट–श्वेताम्बर।

५. अहराष्टि संभवतः दिगम्बर मुनियों का द्योतक है। शायद 'अहनीक' शब्द से इसका निकास हो।

६. SSIJ. Pt.II.p. 69 & 72

७. PS. Hist. Intro. p.XV

८. E HI p.495

चोल देश में दिगम्बर मुनि

चोल देश में भी उस चीनी यात्री ने दिगम्बर धर्म को प्रचलित पाया था।[१] मलकूट (पाण्ड्य देश) में भी उसने नंगे जैनियों को बहुसंख्या में पाया था।[2] सातवीं शताब्दि के मध्य भाग में पाण्ड्य देश का राजा कुण या सुन्दर पाण्ड्य दिगम्बर मुनियों का भक्त था। उसके गुरु दिगम्बराचार्य श्री अमलकीर्ति थे[३] और उसका विवाह एक चोल राजकुमारी के साथ हुआ था, जो शैव थी। उसी के संसर्ग से सुन्दर पाण्ड्य भी शैव हो गया था।[४]

दसवीं शताब्दि तक प्रायः सब राजा दिगम्बर जैन धर्म के आश्रयदाता थे

सच बात तो यह है कि दक्षिण भारत में दिगम्बर जैन धर्म की मान्यता ईस्वी दसवीं शताब्दि तक खूब रही थी। दिगम्बर मुनिगण सर्वत्र विहार करके धर्म का उद्योग करते थे। उसी का परिणाम है कि दक्षिण भारत में आज भी दिगम्बर मुनियों का सद्भाव है। मि.राइस इस विषय में लिखते है कि–

"For more than a thousand years after the beginning of the Christian era, Jainism was the religion professed by most of the rulers of the Kanarese people. The Ganga King of Talkad the Rashtrakuta and Kalachurya Kings of Manyakhet and the early Hoysalas were all Jains. The Brahmanical Kadamba and early Chalukya Kings were tolerant of Jainism. The Pandya Kings of Madura were Jaina, and Jainism was dominant in Gujarat and Kathiawar[5]."

भावार्थ– ईस्वी सन् के प्रारम्भ होने से एक हजार से ज्यादा वर्षों तक कन्नड़ देश के अधिकांश राजाओं का मत जैन धर्म था। तलकाड के गंग राजागण, मान्यखेट के राष्ट्रकूट और कलाचूर्य शासक और प्रारंभिक होयसल नृप सब ही जैनी थे। ब्राह्मण मत को मानने वाले जो कदम्ब राजा थे उन्होंने और प्रारंभ के चालुक्यों ने जैन धर्म के प्रति उदारता का परिचय दिया था। मदुरा के पाण्ड्य राजा जैन ही थे और गुजरात तथा काठियावाड में भी जैन धर्म प्रधान था।"

---

१. हुभा.,पृ.५७०.1

२. हुभा.,पृ.५७४ The nude Jainas were present in multitudes"EHI. p. 473

३. ADJB. p.46

४. EHI.p.475.

५. HKI.p.16.

आन्ध्र और चालुक्य काल में दिगम्बर मुनि

आन्ध्रवंशी राजाओं ने जैन धर्म को आश्रय दिया था, यह पहले लिखा जा चुका है। चोल और चालुक्य अभ्युदय काल में दिगम्बर धर्म प्रचलित रहा था। चालुक्य राजाओं में पुलकेशी द्वितीय, विनयादित्य, विक्रमादित्य आदि ने दिगम्बर विद्वानों का सम्मान किया था। विक्रमादित्य के समय में विजय पंडित नामक दिगम्बर जैन विद्वान एक प्रतिभाशाली वादी थे। इस राजा ने एक जैन मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था।[१] चालुक्यराज गोविन्द तृतीय ने दिगम्बर मुनि अर्ककीर्ति का सम्मान किया और दान दिया था। वह मुनि ज्योतिष विद्या में निपुण थे।[२] वेंगिराज चालुक्य विजयादित्य[३] के गुरु दिगम्बराचार्य अर्हन्नन्दि थे। इन आचार्य की शिष्या चामेकाम्बा के कहने पर राजा ने दान दिया था।[४] सारांश यह कि चालुक्य राज्य में दिगम्बर मुनियों और विद्वानों ने निरापद हो धर्मोद्योत किया था।

राष्ट्रकूट काल में दिगम्बर मुनि

राष्ट्रकूट अथवा राठौर राजवंश जैन धर्म का महान् आश्रयदाता था। इस वंश के कई राजाओं ने अणुव्रतों और महाव्रतों को धारण किया था, जिसके कारण जैन धर्म की विशेष प्रभावना हुई थी। राष्ट्रकूट राज्य में अनेकानेक दिग्गज विद्वान दिगम्बर मुनि विहार और धर्म प्रचार करते थे। उनके रचे हुए अनूठे ग्रंथरत्न आज उपलब्ध हैं। श्री जिनसेनाचार्य का "हरिवंश पुराण", श्री गुणभद्राचार्य का "उत्तर पुराण", श्री महावीराचार्य का " गणितसार संग्रह" आदि ग्रंथ राष्ट्रकूट राजाओं के समय की रचनायें हैं।[४] इन राजाओं में अमोघवर्ष प्रथम एक प्रसिद्ध राजा था। उसकी प्रशंसा अरब केलेखकों ने की है और उसे संसार के श्रेष्ठ राजाओं में गिना है।[५] वह दिगम्बर जैनाचार्यों का परम भक्त था।

सम्राट अमोघवर्ष दिगम्बर मुनि थे

उसने स्वयं राज-पाट त्याग कर दिगम्बर मुनि का व्रत स्वीकार किया था।[६]

उसका रचा हुआ 'रत्नमालिका' एक प्रसिद्ध सुभाषित ग्रंथ है। उसके गुरु दिगम्बराचार्य श्री जिनसेन थे; जैसे कि "उत्तर पुराण" के निम्न श्लोक में कहा गया है कि वे श्री जिनसेन के चरणों में नतमस्तक होते थे—

---

१. SSIJ.pt. I.p.111

२. ADJB.p.97 व विको., भा.५, पृ.७६।

३. ADJB.p68

४. SSIJ.pt.I.pp.111-112

५. ELLiot.Vol.I pp.3-24- "The greatest king of India is the Balahara, whose name imports King of Kings". Iba Khurdabh, व भा प्रारा. भाग ३, पृ. १३-१५।

६. 'रत्नमालिका' में अमोघवर्ष ने इस बात को इन शब्दों में स्वीकार किया है—

"विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका
रचिता ऽमोघवर्षेण सुधियाँ सदलङ् कृतिः।।"

"यस्यप्रांशुनखांशुजाल–विसरद्धारान्तराविर्भव,
त्पादाम्भोजरजः पिशंगमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः।
संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलं,
स श्रीमाञ्जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मंगलम्।।"

अर्थात्– "जिन श्री जिनसेन के देदीप्यमान नखों के किरण समूह से फैलती हुई धारा बहती थी और उनके भीतर जो उनके चरण कमल की शोभा को धारण करते थे उनकी रज से जब राजा अमोघवर्ष के मुकुट के ऊपर लगे हुए रत्नों की कांति पीली पड़ जाती थी तब वह राजा अमोघवर्ष आपको पवित्र मानता था और अपनी उसी अवस्था का सदा स्मरण किया करता था, ऐसे श्रीमान् पूज्यपाद भगवान् श्री जिनसेनाचार्य सदा संसार का मंगल करें।

अमोघवर्ष के राज्य काल में एकान्त पक्ष का नाश होकर स्याद्वाद मत की विशेष उन्नति हुई थी। इसीलिये दिगम्बराचार्य श्री महावीर "गणितसारसंग्रह" में उनके राज्य की वृद्धि की भावना करते हैं।[१] किन्तु इन राजा के बाद राष्ट्रकूट राज्य की शक्ति छिन्न–भिन्न होने लगी थी। यह बात गंगवाड़ी के जैन धर्मानुयायी गंगराजा नरसिंह को सहन नहीं हुई। उन्होंने तत्कालीन राठौर राजा की सहायता की थी और राठौर राजा इन्द्र चतुर्थ को पुनः राज्य सिंहासन पर बैठाया था। राजा इन्द्र दिगम्बर जैन धर्म का अनुयायी था और उसने सल्लेखना व्रत धारण किया था।[२]

गंगराजा और सेनापति चामुण्डराय

इस समय गंगवाड़ी के गंगराजाओं ने जैनोत्कर्ष के लिये खास प्रयत्न किया था। रायमल्ल सत्यवाक्य और उनके पूर्वज मारसिंह के मन्त्री और सेनापति दिगम्बर जैन धर्मानुयायी वीरमार्तण्डराजा चामुण्डराय थे। इस राजवंश की राजकुमारी पनिवव्वेने आर्यिका के व्रत धारण किये थे।[३] श्री अजितसेनाचार्य और नेमिचन्द्राचार्य इन राजाओं के गुरु थे। चामुण्डराय जी के कारण इन राजाओं द्वारा जैन धर्म की विशेष उन्नति हुई थी। दिगम्बर मुनियों का सर्वत्र आनन्दमई विहार होता था।[४]

कलचूरि वंश के राजा दिगम्बर मुनियों के बड़े संरक्षक थे

किन्तु गंगों का साहाय्य पाकर भी राष्ट्रकूट वंश अधिक टिक न सका और पश्चिमीय चालुक्य प्रधानता पा गये। किन्तु यह भी अधिक समय तक राज्य न कर सके। उनको कलचूरियों ने हरा दिया। कलचूरी वंश के राजा जैन धर्म के परम भक्त थे। इनमें बिज्जलराजा प्रसिद्ध और जैन धर्मानुयायी था। इसी राजा के समय में

---

१. "विध्वस्तैकान्तपक्षस्य स्याद्वादन्यायवादिनः।
देवस्य नृपतुङ्गस्य वर्द्धतां तस्य शासनं।।६।।"

२. SSI.J.Pt.I.p.112

३. मजैस्मा, पृ. १५०।

४. वीर, वर्ष ७, अंक १–२ देखो।

बासवने "लिंगायत" मत स्थापित किया था। किन्तु बिज्जल राजा की दिगम्बर जैन धर्म के प्रति अटूट भक्ति के कारण बासव अपने मत का बहुप्रचार करने में सफल न हो सका था। आखिर जब बिज्जलाज कोल्हापुर के शिलाहार राजा के विरूद्ध युद्ध करने गये थे, तब इस वासव ने धोखे से उन्हें विष देकर मार डाला था[1] और तब कहीं लिंगायत मत का प्रचार हो सका था। इस घटना से स्पष्ट है कि बिज्जल दिगम्बर मुनियों के लिये कैसा आश्रय था।

होयसालवंशी राजा और दिगम्बर मुनि

मैसोर के होयसालवंश के राजागण भी दिगम्बरमुनियों के आश्रयदाता थे। इस वंश की स्थापना के विषय में कहा जाता है कि साल नाम का एक व्यक्ति एक मंदिर में एक जैन यति के पास विद्याध्ययन कर रहा था, उस समय एक शेर ने उन साधु पर आक्रमण किया। साल ने शेर को मारकर उनकी रक्षा की और वह 'होयसाल' नाम से प्रसिद्ध हुआ था[2]। तदोपरान्त उन्हीं जैन साधु का आशीर्वाद पाकर उसने अपने राज्य की नींव जमाई थी, जो खूबफला-फूला था। इस वंश के सब ही राजाओं ने दिगम्बर मुनियों का आदर किया था, क्योंकि वे दृढ़ जैन थे[3]। होयसाल राजा विनयादित्य के गुरु दिगम्बर साधु श्री शान्तिदेव मुनि थे[4]। इन राजाओं में विट्टिदेव अथवा विष्णुवर्द्धन राजा प्रसिद्ध था। वह भी जैन धर्म का दृढ़ श्रद्धानी था। उसकी रानी शान्तलदेवी प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्री प्रभाचन्द्र की शिष्याथी[5]। किन्तु उसकी एक दूसरी रानी वैष्णव धर्म की अनुयायी थी। एक रोज राजा इसी रानी के साथ राजमहल के झरोखे में बैठा हुआ था कि सड़क पर एक दिगम्बर मुनि दिखाई दिये। रानी ने राजा को बहकाने के लिये अवसर अच्छा समझा। उसने राजा से कहा कि "यदि दिगम्बर साधु तुम्हारे गुरु हैं तो भला उन्हें बुलाकर अपने हाथ से भोजन करा दो।" राजा दिगम्बर मुनियों के धार्मिक नियम को भूलकर कहने लगे कि "यह कौन बड़ी बात है"। अपने हीन अंग का उसे खयाल न रहा। दिगम्बर मुनि अंगहीन रोगी आदि के हाथ से भोजन ग्रहण न करेंगे, इसका उसने ध्यान भी न किया और मुनि महाराज को पड़गाह लिया। मुनिराज अंतराय हुआ जाकर वापस चले गये। राजा इस पर चिढ़ गया और वह वैष्णव धर्म में दीक्षित हो गया[6]। किन्तु उसके वैष्णव हो जाने पर भी दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य उस राज्य में बना रहा। उसकी अग्रमहषी शान्तलदेवी अब भी दिगम्बर मुनियों की भक्त थी और उसके सेनापति तथा प्रधानमंत्री गंगराज भी दिगम्बर मुनियों के परम सेवक थे। उनके संसर्ग से विष्णुवर्द्धन ने

---

१. मजैस्मा., पृ. १५५-१५६।
२. SSI.J. Pt.I.p.115
३. मजैस्मा,. पृ. १५६-१५७।
४. SSI.J.Pt I.p.115
५. Ibid.p.116
६. AR.Vol.IX.p.266

अन्तिम समय में भी दिगम्बर मुनियों का सम्मान किया आर जैन मंदिरों को दान दिया था।[1] उनके उत्तराधिकारी नरसिंह प्रथम द्वारा भी दिगम्बर मुनियों का सम्मान हुआ था। नरसिंह का प्रधानमंत्री हुल्ल दिगम्बर मुनियों का परम भक्त था। उस समय दक्षिण भारत में चामुण्डराय, गंगराज और हुल्ल दिगम्बर धर्म के महान् प्रभावक और स्तंभ समझे जाते थे।[2] बल्लालराय होयसाल के गुरु श्री वासपूज्य व्रती थे।[3] राजा पुनिस होयसाल के गुरु अजित मुनि थे[4]।

विजयनगर साम्राज्य में दिगम्बर मुनि

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना आर्य-सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिये हुई थी। वह हिन्दू संगठन का एक आदर्श था। शैव, वैष्णव, जैन-सब ही कंधे से कंधा जुटाकर धर्म और देश रक्षा के कार्य में लगे हुए थे। स्वयं विजयनगर सम्राटों में हरिहर द्वितीय और राजकुमार उग दिगम्बर जैन धर्म में दीक्षित होकर दिगम्बर मुनियों के महान आश्रयदाता हुये थे[5] दिगम्बर मुनि श्री धर्मभूषण जी राजा देवराय के गुरु थे तथा आचार्य विद्यानन्दि ने देवराज और कृष्णराय नामक राजाओं के दरबार में वाद किया था तथा तिलंगी और कारकल में दिगम्बर धर्म की रक्षा की थी।[6]

मुस्लिम काल में दिगम्बर मुनि

मुस्लिम काल में देश त्रसित और दुःखित हो रहा था। आर्य धर्मसंकटाकुल था। किन्तु उस पर भी हम देखते है कि प्रसिद्ध मुसलमान शासक हैदर अली ने श्रवणबेलगोल की नग्न देवमूर्ति श्री गोमट्टरुदेव के लिये कई गाँवों की जागीर भेंट की थी।[7] उस समय श्रवणबेलगोल के जैन मठ में जैन साधु विद्याध्ययन कराते थे। दिगम्बराचार्य विशालकीर्ति ने सिकन्दर और वीरू पक्षराय के सामने वाद किया था।[8]

मैसोर के राजा और दिगम्बर मुनि

मैसोर के ओडयरवंशी राजाओं ने दिगम्बर जैन धर्म को विशेष आश्रय दिया था और वर्तमान शासक भी जैन धर्म पर सदय है। सत्रहवीं शताब्दि में भट्टाकलंक देव नामक दिगम्बराचार्य हदुवल्ली जैन मठ के गुरु के शिष्य और महावादी थे। उन्होंने सर्वसाधारण में वाद करके जैन धर्म की रक्षा की थी। वह संस्कृत और कन्नड़ के

---

१. मजैस्मा., प्रस्तावना, पृ.१३।
२. Ibid.
३. मजैस्मा.,पृ. १६२।
४. ADJB.p.31
५. SSIJ.Pt.p.118.
६. मजैस्मा.,पृ. १६३
७. AR.Vol.IX.267 & SIJ. Pt.I.p.117.
८. मजैस्मा., पृ.१६३।

विद्वान् तथा छह भाषाओं के ज्ञाता थे।[१] जैन रानी भैरवदेवी ने मणिपुर का नाम बदलकर इनकी स्मृति में 'भट्टाकलंकपुर' रखा था– वही आजकल का भटकल है।[२] श्री कृष्णराय और अच्युतराय राजा के सम्मुख श्री दिगम्बर मुनि नेमिचन्द्र ने वाद किया था।[३]

पण्डाईवेडू राजा और दिगम्बर मुनि–

पुण्डी (उत्तर अर्काट) के तीसरे ऋषभदेव मंदिर के विषय में कहा जाता है कि पण्डाईवेडू राजा की लड़की को भूतबाधा सताती थी। उसी समय कुछ शिकारियों के पास एक दिगम्बर मुनि ने श्री ऋषभदेव की मूर्ति देखी। मुनि जी ने वह मूर्ति उनसे ले ली। इन्हीं शिकारियों ने राजा से मुनि जी की प्रशंसा की। उस पर राजा ने मुनि जी की वन्दना की और उनसे भूतबाधा दूर करने का अनुरोध किया। मुनि जी ने लड़की की भूतबाधा दूर कर दी। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उक्त मंदिर बनवाया।[४]

दो सौ वर्ष पहले दिगम्बर मुनि

दक्षिण भारत में दोसौ वर्ष पहले कई एक दिगम्बर मुनियों का सद्भाव था। उनमें मन्नरगुडी के पर्णकुटिवासी ऋषि प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कई मूर्तियों और मंदिरों की प्रतिष्ठा कराई थी।[५] उनके अतिरिक्त संधि महामुनि और पण्डित महामुनि भी प्रसिद्ध हैं। उन्होंने तिरुमलम्बूर नामक ग्राम में वहाँ के ब्राह्मणों के साथ वाद किया था और जैन धर्म का डंका बजाया था। तब से वहाँ पर एक जैन धर्म विद्यापीठ स्थापित है।[६] सचमुच दक्षिण भारत में अत्यन्त प्राचीनकाल से सिलसिलेवार दिगम्बर मुनियों का सद्भाव रहा है। प्रो.ए.एन. उपाध्याय इस विषय में लिखते हैं कि दक्षिण भारत में नियमित रूप में दिगम्बर मुनि होते आये हैं। पिछले सौ वर्षों में सिद्धय्य आदि अनेक दिगम्बर मुनि इस ओर ही गुजरे हैं, किन्तु खेद है, उनकी जीवन सम्बन्धी वार्ता उपलब्ध नहीं है।

महाराष्ट्र देश के दिगम्बर जैन मुनि–

दक्षिण भारत की तरह ही महाराष्ट्र देश भी जैन धर्म का केन्द्र था।[७] वहाँ अब तक दिगम्बर जैनों की बाहुल्यता है। कोल्हापुर, बेलगाम आदि स्थान जैनों की मुख्य बस्तियाँ थीं। कहते हैं कि एक बार कोल्हापुर में दिगम्बर मुनियों का एक बृहत् संघ आकर ठहरा था। राजा और रानी ने भक्तिपूर्वक उसकी वन्दना की थी। देवयोग से संघ जहाँ पर ठहरा था वहाँ आग लग गई। मुनिगण उसमें भस्म हो गये। राजा को बड़ा

---

१. HKI., p. 83
२. बृजेश., भा.१.पृ.१० ।
३. मजैस्मा., पृ.१६३ ।
४. दिजैडा., पृ.८५७ ।
५. Ibid.p.864
६. दिजैडा., पृ.८५९ ।
७. Jainism was specially popular in the Southern Maratha country – EHI.p.444

परिताप हुआ। उसने उनके स्मारक में १०८ दिगम्बर मन्दिर बनवाये। संघ में १०८ ही दिगम्बर मुनि थे।[१] इस घटना से महाराष्ट्र में एक समय दिगम्बर मुनियों की बाहुल्यता का पता चलता है। सचमुच महाराष्ट्र के रट्ट, चालुक्य शिलाहार आदि वंश के राजा दिगम्बर जैन धर्म के पोषक थे और यही कारण है कि वहाँ दिगम्बर मुनियों का बड़ी संख्या में विहार हुआ था। अठारहवीं शताब्दि में हुये दो दिगम्बर मुनियों का पता चलता है। एक मराठी कवि जिनदास के गुरु विद्वान दिगम्बराचार्य श्री उज्जतकीर्ति थे। दूसरे महतिसागर जी थे। उन्होंने स्वतः क्षुल्लकवत् दीक्षा ली थी। तदोपरान्त देवेन्द्रकीर्ति भट्टारक से विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण की थी। बन्हाड देश में उन्होंने खूब धर्म प्रभावना की थी। गूजरों को उन्होंने जैनी बनाया था। दही गाँव उनका समाधि स्थान है, जहाँ सदा मेला लगता है। उनके रचे हुए ग्रंथ भी मिलते हैं। (मजैइ.पृ.६५-७२)

शाके ११२७ में कोल्हापुर के अजरिका स्थान में त्रिभुवनतिलक चैत्यालय में श्री विशालकीर्ति आचार्य के शिष्य श्री सोमदेवाचार्य ने ग्रंथ रचना की थी।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध दिगम्बर जैनाचार्य

दिगम्बर जैनियों के प्रायः सब ही दिग्गज विद्वान् और आचार्य दक्षिण भारत में ही हुये हैं। उन सबका संक्षिप्त वर्णन उपस्थित करना यहाँ संभव नहीं है, किन्तु उनमें से प्रख्यात दिगम्बराचार्यों का वर्णन यहाँ पर दे देना इष्ट है। अंग ज्ञान के ज्ञाता दिगम्बराचार्यों के उपरान्त जैन संघ में श्री कुन्दकुन्दाचार्य का नाम प्रसिद्ध है। दिगम्बर जैनों में उनकी मान्यता विशेष है। वह महातपस्वी और बड़े ज्ञानी थे। दक्षिण भारत के अधिवासी होने पर भी उन्होंने गिरिनार पर्वत पर जाकर श्वेताम्बरों से वाद किया था।[२] तामिल साहित्य का नीतिग्रंथ कुर्रल उन्हीं की रचना थी।[३] उन और उन्हीं के समान अन्य दिगम्बराचार्यों के विषय में प्रो. रामास्वामी ऐयंगर लिखते हैं-

"First comes Yatindra Kunda, a great Jain/ Guru 'who in order to show that both within & without he could not be assisted by Rajas, moved about leaving a space of four inches between himself and the earth under his feet. Uma Swami, the compiler of Tattvartha Sutra, Griddhrapinchha, and his disciple. Balakapinchha folow. Then comes Samantabhadra, 'ever fortunate', 'whose discourse lights up the place of the three worlds filled with the all meaning Syadvada. This Samantabhadra was the first of a series of celebrated Digambara writers who acquired considerable

१. बंप्राजैस्मा.पृ.७६।
२. दिजैडा., पृ.७६५।
३. SSIJ.pp.40-44 & 89.

predominance, in the early Rashtrakuta period. Jain tradition assings him Saka 60 or 138 A.D... He was a great Jaina missionary who tried to spread far and wide Jaina doctrines and morals and that he met with no opposition from other sects wherever he went. Samantabhadra's appearance in south India marks an epoch not only in the annals of Digambara tradition, but also in the history of Sanskrit literature.... After Samantabhadra a large number of Jain Munis took up the work of proselytism. The more important of them have contributed much for the uplift of the Jain world in literature and secular affaiirs. There was, for example. Simhanandi, the Jain sage, who according to tradition founded the state of Gangavadi. Other names are those of Pujyapada the author of the imcomparable grammar, Jinendra Vyakarana and of Akalanka, who, in 788 A.D., is believed to have confuted the Buddhists at the court of Himasitala in Kanchi, and thereby procured the expulsion of the Buddhists from South India."

SSIJ. Pt.I.pp.29–31

भावार्थ– "पहले ही महान् जैन गुरु यतीन्द्र कुन्द का नाम मिलता है जो राजाओं के प्रति निस्पृहता दिखाते हुये अधर चलते थे। 'तत्वार्थ सूत्र' के कर्त्ता उमास्वामी गृद्धपिच्छ और उनके शिष्य बलाकपिच्छ उनके बाद आते है। तब समन्तभद्र का नाम दृष्टि में पड़ता है जो सदा भाग्यवान रहे और जिनकी स्याद्वादवाणी तीन लोक को प्रकाशमान करती थी। यह समन्तभद्र प्रारंभिक राष्ट्रकूट काल के अनेक प्रसिद्ध दिगम्बर मुनियों में सर्वप्रथम थे। उनका समय जैन मतानुसार सन् १३८ ई. है। यह महान् जैन प्रचारक थे, जिन्होंने चहुँओर जैन सिद्धान्त और शिक्षा का प्रचार किया और उन्हें कहीं भी किसी विधर्मी संप्रदाय के विरोध को सहन न करना पड़ा। उनका प्रादुर्भाव दक्षिण भारत के दिगम्बर जैन इतिहास के लिये ही युग प्रवर्तक नहीं है, बल्कि उससे संस्कृत साहित्य में एक महान् परिवर्तन हुआ था। समन्तभद्र के बाद बहुसंख्यक जैन साधुओं ने अजैनों को जैनी बनाने का कार्य किया था। उनमें से प्रसिद्ध जैन साधुओं ने संसार को साहित्य और राष्ट्रीय अपेक्षा उन्नत बनाया था। उदाहरणतः जैनाचार्य सिंहनन्दि ने गंगवाडी का राज्य स्थापित कराया था। अन्य आचार्यों में पूज्यपाद, जिनकी रचना अद्वितीय "जिनेन्द्र व्याकरण" है और अकलंक देव हैं जिन्होंने कांची के हिमशीतल राजा के दरबार में बौद्धों को वाद में परास्त करके उन्हें दक्षिण भारत से निकलवा दिया था।"

श्री उमास्वामी- श्री कुन्दकुन्दाचार्य के उपरान्त श्री उमास्वामी प्रसिद्ध आचार्य थे, प्रो.सा. का यह प्रकट करना निस्सन्देह ठीक है। उनका समय वि.सं.७६ है। गुजरात प्रान्त के गिरिनगर में जब यह मुनिराज विहार कर रहे थे और एक द्वैपायक नामक श्रावक के घर पर उसकी अनुपस्थिति में आहार लेने गये थे, तब वहाँ पर एक अशुद्ध सूत्र देखकर उसे शुद्ध कर आये थे। द्वैपायक ने जब घर आकर यह देखा तो उसने उमास्वामी से "तत्वार्थसूत्र" रचने की प्रार्थना की थी। तदनुसार यह ग्रंथ रचा गया था। उमास्वापी दक्षिण भारत के निवासी और आचार्य कुन्दकु के शिष्य थे, ऐसा उनके 'गृद्धपिच्छ' विशेषण से बोध होता है।[१]

श्री समन्तभद्राचार्य- श्री समन्तभद्राचार्य दिगम्बर जैनों में बड़े प्रतिभाशाली नैयायिक और वादी थे। मुनिदशा में उनको भस्मक रोग हो गया, जिसके निवारण के लिये वह काञ्चीपुर के शिवालय में शैव-सन्यासी के वेष में जा रहे थे। वहीं 'स्वयंभू स्तोत' रचकर शिवकोटि राजा को आश्चर्यचकित कर दिया था। परिणामतः वह दिगम्बर मुनि हो गया था। समन्तभद्राचार्य ने सारे भारत में विहार करके दिगम्बर जैन धर्म का डंका बजाया था। उन्होंने प्रायश्चित्त लेकर पुनः मुनिवेष और फिर आचार्य पद धारण किया था। उनकी ग्रंथ रचनायें जैन धर्म के लिए बड़े महत्व की हैं।[२]

श्री पूज्यपादाचार्य- कर्नाटक देश के कोलंगाल नामक गाँव में एक ब्राह्मण माधवभट्ट विक्रम की चौथी शताब्दि में रहता था। उन्हीं के भाग्यवान पुत्र श्री पूज्यपादाचार्य थे। उनका दीक्षा नाम श्री देवनन्दि था। नाना देशों में विहार करके उन्होंने धर्मोपदेश दिया था, जिसके प्रभाव से सैकड़ों प्रसिद्ध पुरुष उनके शिष्य हुये थे। गंगवंशी दुर्विनीत राजा उनका मुख्य शिष्य था। "जैनेन्द्र व्याकरण", "शब्दावतार" आदि उनकी श्रेष्ठ रचनायें हैं।[३]

श्री वादीभसिंह- यतिवर श्री वादीभसिंह श्री पुष्पसेन मुनि के शिष्य थे। उनका गृहस्थ दशा का नाम 'ओड्यदेव' था, जिससे उनका दक्षिण देशवासी होना स्पष्ट है। उन्होंने सातवीं शती में "क्षत्रचूड़ामणि", "गद्यचिन्तामणि" आदि ग्रन्थों की रचना की थी।[४]

---

१. मजैइ., पृ.४४।

२. Ibid.p.45 A.

३. Ibid.p.46.

४. Ibid.p.47.

श्री नेमिचन्द्राचार्य- श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती नन्दिसंघ के स्वामी अभयनन्दि के शिष्य थे। वि.सं.७३५ में द्रविड़ देश के मदुरा नगर में वह रहते थे। उन्होंने जैन धर्म का विशेष प्रचार किया था और उनके शिष्य गंगवंश के राजा श्री रायमल्ल और सेनापति चामुण्डराय आदि थे। उनकी रचनाओं में "गोमट्टसार" ग्रन्थ प्रधान है।[१]

श्री अकलंकाचार्य- श्री अकलंकाचार्य देव संघ के साधु थे। बौद्ध मठ में रहकर उन्होंने विद्याध्ययन किया था। तदोपरान्त बौद्धों से वाद करके उनका पराभव और जैन धर्म का उत्कर्ष प्रकट किया था। कांची का हिमशीतल राजा उनका मुख्य शिष्य था। उनके रचे हुये ग्रंथ में राजवार्तिक, अष्टशती, न्यायविनिश्चयालंकार आदि मुख्य हैं।[२]

श्री जिनसेनाचार्य- राजाओं से पूजित श्री वीरसेन स्वामी के शिष्य श्री जिनसेनाचार्य सम्राट् अमोघवर्ष के गुरु थे। उस समय उनके द्वारा जैन धर्म का उत्कर्ष विशेष हुआ था। वह अद्वितीय कवि थे। उनका "पार्श्वाभ्युदयकाव्य" कालिदास के मेघदूत काव्य की समस्यापूर्ति रूप में रचा गया था। उनकी दूसरी रचना 'महापुराण' भी काव्य दृष्टि से एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। उनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने इस पुराण के शेषांश की पूर्ति की थी।[३]

श्री विद्यानन्दि आचार्य- श्री विद्यानन्दि आचार्य कर्णाटक देशवासी और गृहस्थ दशा में एक वेदानुयायी ब्राह्मण थे। 'देवागम' स्तोत को सुनकर वह जैन धर्म में दीक्षित हो गये थे। दिगम्बर मुनि होकर उन्होंने राज दरबारों में पहुंचकर ब्राह्मणों और बौद्धों से वाद किये थे; जिनमें उन्हें विजयश्री प्राप्त हुई थी। अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा आदि ग्रंथ उनकी दिव्य रचनायें हैं।[४]

श्री वादिराज- श्रीवादिराजसूरि नन्दिसंघ के आचार्य थे। उनकी 'षटतर्कषण्मुख', 'स्याद्वादविद्यापति' और 'जगदेकमल्लवादी उपाधियाँ उनके गौरव और प्रतिभा की सूचक हैं। उनको एक बार कुष्ट रोग हो गया था; किन्तु अपने योग बल से "एकीभाव स्तोत्र" रचते हुए उस रोग से वह मुक्त हुए थे। यशोधर चरित्र, पार्श्वनाथ चरित्र आदि ग्रंथ भी उन्होंने रचे थे।"[५]

आप चालुक्यवंशीय नरेश जयसिंह की सभा के प्रख्यात वादी थे। वे स्वयं सिंहपुर के राजा थे। राज्य त्यागकर दिगम्बर मुनि हुए थे। उनके दादा गुरु श्रीपाल भी सिंहपुराधीश थे। (जैमि.,वर्ष ३३, अंक ५.,पृ. ७२)

---

१. Ibid. p.47–48
२. Ibid. p.49
३. Ibid. p. 50–51
४. Ibid. p. 51–52
५. Ibid. p. 53.

इसी प्रकार श्री मल्लिषेणाचार्य, श्री सोमदेवसूरि आदि अनेक लब्धप्रतिष्ठित दिगम्बर जैनाचार्य दक्षिण भारत में हो गुजरे हैं, जिनका वर्णन अन्य ग्रंथों से देखना चाहिए।

इन दिगम्बराचार्यों के विषय में उक्त विद्वान आगे लिखते हैं कि "समग्र दक्षिण भारत विद्वान जैन साधुओं के छोटे-छोटे समूहों में अलंकृत था, जो धीरे-धीरे जैन धर्म का प्रचार जनता की विविध भाषाओं में ग्रंथ रचकर कर रहे थे किन्तु यह समझना गलत है कि यह साधुगण लौकिक कार्यों से विमुख थे।

किसी हद तक यह सच है कि वे जनता से ज्यादा मिलते-जुलते नहीं थे। किन्तु ई.पू. चौथी शताब्दि में मेगस्थनीज के कथन से प्रकट है कि "जैन श्रमण, जो जंगलों में रहते थे, उनके पास अपने राजदूतों को भेजकर राजा लोग वस्तुओं के कारण के विषय में उनका अभिप्राय जानते थे। जैन गुरुओं ने ऐसे कई राज्यों की स्थापना की थी, जिन्होंने कई शताब्दियों से जैन धर्म को आश्रय दिया था।"[१]

प्रो.डॉ.बी. शेषागिरिराव ने दक्षिण भारत के दिगम्बर मुनियों के सम्बन्ध में लिखा है कि "जैन मुनिगण विद्या और विज्ञान के ज्ञाता थे, आयुर्वेद और मन्त्रशास्त्र के भी वे महान् विद्वान् थे, ज्योतिष ज्ञान उनका अच्छा खासा था, जैन मान्यता में ऐसे सफल एक प्राचीन आचार्य कुन्दकुन्द कहे गए हैं, जिन्होंने बेलारी जिले के कोनकुण्डल प्रदेश में ध्यान और तपस्या की थी"

इस प्रकार दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व का चमत्कारिक वर्णन है और यह इस बात का प्रमाण है कि दक्षिण भारत एक अत्यन्त प्राचीन काल से दिगम्बर मुनियों का आश्रय स्थान रहा है तथा वह आगे भी रहेगा, इसमें संशय नहीं।

---

१. "The whole of south India strewn with small groups of learned Jain acetics, who were slowly but urely spreaing their morils through the medium of their sacred literature composed in the various vernaculars of the country. But it is a mistake to suppose that these ascetics were in different towards secular affairs in general. To a certain extent it is true that they did not mingle with the world. But we know from the account of Megathenes that, so late a the 4th cetury BC., "The Sarmanes or the Jain Sarmanes who lived in the woods were frequetly consulte by the kings through their messengers regarding the cause of things Jaina Gurus have been founers of States that for centuries together were tolerant towards the Jain faith"

–SSIJ.I.10

२. SSIJ.Pt.11.pp.9–10.

[२२] तमिल साहित्य में दिगम्बर मुनि

"Among the systems controverted in the Manimekhalai, the Jain system also figures as one and the words Samanas and Amana are of frequent occurrance; as also refrences to their Viharas, So that from the earliest times reachable with our present means, Jainism apparently flourished in the Tamil Country."[1]

तमिल साहित्य के मुख्य और प्राचीन लेखक दिगम्बर जैन विद्वान् रहे हैं और उसका सर्वप्राचीन व्याकरण-ग्रंथ "तोल्काप्पियम्" (Tolkappiyam) एक जैनाचार्य की ही रचना है।[2] किन्तु हम यहाँ पर तमिल साहित्य के जैनों द्वारा रचे हुये अंग को नहीं छूयेंगे। हमें तो जैनेतर तमिल साहित्य में दिगम्बर मुनियों के वर्णन को प्रकट करना इष्ट है।

अच्छा तो, तमिल साहित्य का सर्वप्राचीन समय "संगम-काल" अर्थात् ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दि से ईस्वी पाँचवीं शताब्दि तक का समय है। इस काल की रचनाओं में बौद्ध विद्वान् द्वारा रचित काव्य "मणिमेखलै" प्रसिद्ध है। "मणिमेखलै" में दिगम्बर मुनियों और उनके सिद्धान्तों तथा मठों का अच्छा खासा वर्णन है। जैन दर्शन को इस काव्य में दो भागों में विभक्त किया गया है- (१) आजीविक और (२) निर्ग्रंथ।[3] आजीविक भगवान् महावीर के समय में एक स्वतंत्र संप्रदाय था; किन्तु उपरान्त काल में वह दिगम्बर जैन संप्रदाय में समाविष्ट हो गया था। निर्ग्रंथ प्रदाय को 'अरुहन' (अर्हत्) का अनुयायी लिखा है, जो जैनों का द्योतक है। इस के पात्रों में सेठ कोवलन् की पत्नी कण्णकि के पिता मानाइकन् के विषय में लिखा है कि "जब उसने अपने दामाद के मारे जाने के समाचार सुने तो उसे अत्यन्त दुःख और खेद हुआ और वह जैन संघ में नंगा मुनि हो गया।"[4] इस काव्य से यह भी प्रकट है कि चोल और पाण्ड्य राजाओं ने जैन धर्म को अपनाया था।[5]

"मणिमेखलै" के वर्णन से प्रकट है कि "निर्ग्रंथगण ग्रामों के बाहर शीतल मठों में रहते थे। इन मठों की दीवारें बहुत ऊँची और लाल रंग से रंगी हुई होती थीं। प्रत्येक मठ के साथ एक छोटा सा बगीचा भी होता था। उनके मंदिर तिराहों और चौराहों पर

---

१. Sc., p. 32 भावार्थ-तमिल काव्य 'मणिमेखलै' में जैन संप्रदाय और शब्द -"श्रमण" तथा उनके विहारों का उल्लेख विशेष है; जिससे तमिल देश में अतीव प्राचीनकाल से जैन धर्म का अस्तित्व सिद्ध है।"

२. SSIJ, pt.I.p. 89

३. BS.p. 15.

४. Ibid.p. 681.

५. SSIJ. pt.I.p.47

अवस्थित थे। जैनों ने अपने प्लेटफार्म भी बना रखे थे, जिन पर से निर्ग्रंथाचार्य अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। जैन साधुओं के मठों के साथ-साथ जैन साध्वियों के आराम भी होते थे। जैन साध्वियों का प्रभाव तमिल महिला समाज पर विशेष था।

कावेरीप्पूमपट्टिनम् जो चोल राजाओं की राजधानी थी, वहाँ और कावेरी तट पर स्थित उदैपुर में जैनों के मठ थे। मदुरा जैन धर्म का मुख्य केन्द्र था। सेठ कोवलन् और उनकी पत्नि कण्णकि जब मथुरा को जा रहे थे तो रास्ते में एक जैन आर्यिका ने उन्हें किसी जीव को पीड़ा न पहुंचाने के लिये सावधान किया था, क्योंकि मदुरा में निर्ग्रंथों द्वारा यह एक महान् पाप करार दिया गया था। यह निर्ग्रंथगण तीन छत्रयुक्त और अशोक वृक्ष के तले बैठाये गये। ये अर्हत् भगवान की देदीप्यमान मूर्ति की विनय करते थे। यह सब जैन दिगम्बर थे, यह उक्त काव्य के वर्णन से स्पष्ट है। पुहर में जब इन्द्रोत्सव मनाया गया तब यहाँ के राजा ने सब धर्मों के आचार्यों को वाद और धर्मोपदेश करने के लिये बुलाया था। दिगम्बर मुनि इस अवसर पर बड़ी संख्या में पहुंचे थे और उनके धर्मपदेश से अनेकानेक तमिल स्त्री-पुरुष जैन धर्म में दीक्षित हुये थे।"[१]

"मणिमेखलै" काव्य में उसकी मुख्य पात्री मणिमेखला एक निर्ग्रंथ साधु से जैन धर्म के सिद्धान्तों के विषय में जिज्ञासा करती भी बताई गई है।[२] तथा इस काव्य के अन्य वर्णन से स्पष्ट है कि ईस्वी की प्रारम्भिक शताब्दियों में तमिल देश में दिगम्बर मुनियों की एक बड़ी संख्या मौजूद थी और तमिल लोग देश में विशेष मान्य तथा प्रभावशाली थे।

शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के तमिल साहित्य में भी दिगम्बर मुनियों का वर्णन मिलता है। शैवों के 'पेरियपुण्णम्' नामक ग्रंथ में मूर्ति नायनार के वर्णन में लिखा है कि कलभ्रवंश के क्षत्री जैसे ही दक्षिण भारत में पहुंचे वैसे ही उन्होंने दिगम्बर जैन धर्म को अपना लिया। उस समय दिगम्बर जैनों की संख्या वहाँ अत्यधिक थी और उनके आचार्यों का प्रभाव कलभ्रों पर विशेष था।[३] इस कारण शैव धर्म उन्नत नहीं हो पाया था। किन्तु कलभ्रों के बाद शैव धर्म को उन्नति करने का अवसर मिला था। उस समय बौद्ध प्रायः निष्प्रभ हो गये थे, किन्तु जैन अब भी प्रधानता लिये हुये थे।[४]

---

१. Ibid.pp 47-48 "That these Jains were the Digambaras is clearly seen from their description ..... The Jains took every advantage of the opportunity and large was the number of those that embraced this faith.

२. Manimekalai asked the Nirgrantha to state who was his God an what he was taught in his sacred books etc."

३. Ibid.p 55.

४. "It would appear from a general study of the litrature of the period that Buddhism had desclined as an active religion but Jainism had still its stronghold. The chiief opponents of these saints were the Samans or the Jains.

—BS.p. 689

शैवाचार्यों का वादशाला में मुकाबला लेने के लिए दिगम्बराचार्य जैन श्रमण ही अवशेष थे। शैवों में सम्बन्दर और अप्पर नामक आचार्य जैन धर्म के कट्टर विरोधी थे। इनके प्रचार से साम्प्रदायिक विद्वेष की आग तमिल देश में भड़क उठी थी,[१] जिसके परिणामस्वरूप उपरान्त के शैव ग्रंथों में ऐसा उपदेश दिया हुआ मिलता है कि बौद्धों और समणों (दिगम्बर मुनियों) के न तो दर्शन करो न उनके धर्मोपदेश सुनो, बल्कि शिव से यह प्रार्थना की गई है कि वह शक्ति प्रदान करें जिससे बौद्धों और समणों (दिगम्बरा मुनियों) के सिर फोड़ डाले जायें; जिनके धर्मोपदेश को सुनते-सुनते उन लोगों के कान भर गये हैं।[२] इस विद्वेष का भी कोई ठिकाना है ! किन्तु इससे स्पष्ट है कि उस समय भी दिगम्बर मुनियों का प्रभाव दक्षिण भारत में काफी था।

वैष्णव तमिल साहित्य में भी दिगम्बर मुनियों का विवरण मिलता है। उनके 'तेवाराम(Tevaram) नामक ग्रंथ से ईसवी सातवीं-आठवीं शताब्दि के जैनों का हाल मालूम होता है। उक्त ग्रंथ से प्रकट है कि "इस समय भी जैनों का मुख्य केन्द्र मदुरा में था। मदुरा के चहुँ ओर स्थित अनैमलै, पसुमलै आदि आठ पर्वतों पर दिगम्बर मुनिगण रहते थे और वे ही जैन संघ का संचालन करते थे। वे प्रायः जनता से अलग रहते थे - उससे अत्यधिक सम्पर्कनहीं रखते थे। स्त्रियों से तो वे बिल्कुल दूर-दूर रहते थे। नासिका स्वर से वे प्राकृत व अन्य मंत्र बोलते थे। ब्राह्मणों और उनके वेदों का वे हमेशा खुला विरोध करते थे। कड़ी धूप में वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर वेदों के विरुद्ध प्रचार करते हुए विचरते थे। उनके हाथ में पीछी, चटाई और एक छत्री होती थी। इन दिगम्बर मुनियों को सम्बन्दर द्वेषवश बन्दरों की उपमा देता है, किन्तु वे सैद्धान्तिक वाद करने के लिये बड़े लालायित थे और उन्हें विपक्षी को परास्त करने में आनन्द आता था। केशलोंच ये मुनिगण करते थे और स्त्रियों के सम्मुख नग्न उपस्थित होने में उन्हें लज्जा नहीं आती थी। भोजन लेने के पहले वे अपने शरीर की शुद्धि नहीं करते थे (अर्थात् स्नान नहीं करते थे)।" मंत्रशास्त्र को वे खूब जानते थे और उसकी खूब तारीफ करते थे।"[३]

त्रिज्ञानसम्बन्दर और अप्पर ने जो उपर्युक्त प्रमाण दिगम्बर मुनियों का वर्णन किया है, यद्यपि वह द्वेष को लिये हुये है, परंतु तो भी उससे उस काल में दिगम्बर मुनियों के बाहुल्य रूप में सर्वत्र विहार करने, विकट तपस्वी और उत्कट वादी होने का समर्थन होता है।

दक्षिण भारत की 'नन्दयाल कैफियत' (Nandyala kaiphiyat) में लिखा है[४] कि "जैनमुनि अपने सिरों पर बाल नहीं रखते थे कि शायद कहीं जूं न पड़ जाय

१. SSIJ..I.pp. 60–66.

२. तिरुमलै – Bs.p. 692.

३. SSIJ. pt..I.pp. 68–70

और वे हिंसा के भागी हों। जब वे चलते थे तो मोरपिच्छी से रास्ता साफ कर लेते थे कि कहीं सूक्ष्म जीवों की विराधना न हो जाय। वे दिगम्बर वेष धारण किये थे, क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं उनके कपड़े और शरीर के संसर्ग से सूक्ष्म जीवों को पीड़ा न पहुंचे। वे सूर्यास्त के उपरान्त भोजन नहीं करते थे, क्योंकि पवन के साथ उड़ते हुए जीव-जन्तु कहीं उनके भोजन में गिर कर मर न जायं। इस वर्णन से भी दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य और निर्बाध धर्म प्रचार करना प्रमाणित है।

"सिद्धवत्तम् कैफियत" (Siddhavattam Kaiphiyat) से प्रकट है[1]-कि वरंगल के जैन राजा उदार प्रकृति थे। वे दिगम्बरों के साथ-साथ अन्य धर्मों को भी आश्रय देते थे। "वरंगल कैफियत" से प्रकट है[2] कि वहाँ वृषभाचार्य नामक दिगम्बर मुनि विशेष प्रभावशाली थे।

दक्षिण भारत के ग्राम्य-कथा-साहित्य में एक कहानी है, उससे प्रकट है कि "वरंगल के काकतीयवंशी एक राजा के पास ऐसी खड़ाऊँ थीं, जिनको पहनकर वह उड़ सकता था और रोज बनारस में जाकर गंगा स्नान कर आता था। किसी को भी इसका पता न चलता था। एक रोज उसकी रानी ने देखा कि राजा नहीं है। वह जैनधर्मपरायण थी। उसने अपने गुरुओं से राजा के संबंध में पूछा। जैन गुरु ज्योतिष के विद्वान् विशेष थे; उन्होंने राजा का सब पता बता दिया। राजा जब लौटा तो रानी ने उसको बताया कि वह कहाँ गया और प्रार्थना की कि वह उसे भी बनारस ले जाया करे। राजा ने स्वीकार कर लिया। वह रानी भी बनारस जाने लगी। एक रोज मार्ग में वह मासिक धर्म से हो गई। फलतः खड़ऊ की वह विशेषता नष्ट हो गई। राजा को उस पर बड़ा दुःख हुआ और उसने जैनों को कष्ट देना प्रारम्भ कर दिया।"[3] इस कहानी से विधर्मी राजाओं के राज्य में भी दिगम्बर मुनियों का प्रतिभाशाली होना प्रकट है।

अरुलनन्दि शैवाचार्य कृत "शिवज्ञानसिद्धियार" में परपक्ष संप्रदायों में दिगम्बर जैनों के "श्रमणरूप" का उल्लेख है[4] तथा "हालास्यमाहात्म्य" में मदुरा के शैवों और दिगम्बर मुनियों के वाद का वर्णन मिलता है।[5]

इस प्रकार तमिल साहित्य के उपर्युक्त वर्णन से भी दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों का प्रतिभाशाली होना प्रमाणित है। वे वहाँ अत्यन्त प्राचीन काल से धर्म प्रचार कर रहे थे।

---

१. Ibid. p. 17.
२. Ibid. p.18
३. SSIJ. pt. II.pp. 27-28
४. SC.p. 243
५. IHQ. Vol. IV.564

[२३] भारतीय पुरातत्व और दिगम्बर मुनि

"Chalcolithic civilisation of the Indus Valley was something quite different from the Vedic civilisation." "On the eve of the Aryan immigration the Indus Valley was in possession of a civilized and warlike people."

–R.R.Ramprasad Chand.

मोहन–जोदड़ो का पुरात्व और दिगम्बरत्व– भारतीय पुरातत्त्व में सिंधु देश के मोहन–जोदड़ो और पंजाब के हड़प्पा नामक ग्रामों से प्राप्त पुरातत्व अति प्राचीन हैं। वह ईस्वी सन् से तीन–चार हजार वर्ष पहले का अनुमान किया गया है। जिन विद्वानों ने उसका अध्ययन किया है, वह इस परिणाम पर पहंचे हैं कि सिन्धु देश में उस समय एक अतीव सभ्य और क्षत्रिय प्रकृति के मनुष्य रहते थे, जिनका धर्म और सभ्यता वैदिक धर्म और सभ्यता से नितान्त भिन्न थी। एक विद्वान ने उन्हें "व्रात्य" सिद्ध किया है,[२] और मनु के अनुसार "व्रात्य" वह वेद–विरोधी संप्रदाय था "जिसके लोग द्विजों द्वारा उनकी सजातीय पत्नियों से उत्पन्न हुए थे, किन्तु जो (वैदिक) धार्मिक नियमों का पालन न कर सकने के कारण सावित्रि से पृथक कर दिये गये थे।" (मनु १०। १२) वह मुख्यतः क्षत्री थे। मनु एक व्रात्य क्षत्री से ही झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, नात, करण, खस और द्राविड़ वंशों की उत्पत्ति बतलाते हैं। (मनु १० ।२०) यह पहले भी लिखा जा चुका है। सिन्धु देश के उपर्युक्त मनुष्य इसी प्रकार के क्षत्री थे और वे ध्यान तथा योग का स्वयं अभ्यास करते थे और योगियों की मूर्तियों की पूजा करते थे। मोहन–जोदड़ो से जो कतिपय मूर्तियाँ मिली हैं उनकी दृष्टि जैन मूर्तियों के सदृश 'नासाग्रदृष्टि' है। किंतु ऐसी जैन मूर्तियाँ प्रायः ईस्वी पहली शताब्दि तक की ही मिलती विद्वान प्रकट करते हैं[३], यद्यपि जैनों की मान्यता के अनुसार उनके मंदिरों में बहुप्राचीन काल की मूर्तियाँ मौजूद हैं। उस पर, हाथीगुफा के शिलालेख से कुमारी पर्वत पर नन्दकाल की मूर्तियाँ का होना प्रमाणित है[४] तथा मथुरा के 'देवों द्वारा निर्मित जैनस्तूप' से भगवान् पार्श्वनाथ के समय में भी ध्यानदृष्टिमय मूर्तियों का होना सिद्ध है।[५] इसके अतिरिक्त प्राचीन जैन साहित्य

---

१. SPCIV. p.I.&.25

२. Ibid.pp..25–34

३. Ibid.pp. 25–26.

४. JBORS.

५. वीर, वर्ष ४, पृ.२९९।

तथा बौद्धों के उल्लेख से भगवान् पार्श्वनाथ और भगवान् महावीर के पहले के जैनों में भी ध्यान और योगाभ्यास के नियमों का होना प्रमाणित है। 'संयुक्तनिकाय' में जैनों के अवितर्क और अविचार श्रेणी के ध्यान का उल्लेख है[१] और "दीर्घनिकाय" के 'ब्रह्मजालसुत्त' से प्रकट है कि गौतम बुद्ध से पहले ऐसे साधु थे जो ध्यान और विचार द्वारा मनुष्य के पूर्व भवों को बतलाया करते थे[२]। जैन शास्त्रों में ऋषभादि प्रत्येक तीर्थंकर के शिष्य समुदाय में ठीक ऐसे साधुओं का वर्णन मिलता है, तथापि उपनिषदों में जैनों के 'शुक्लध्यान' का उल्लेख मिलता है, यह पहले ही लिखा जा चुका है। अतः यह स्पष्ट है कि जैन साधु एक अतीव प्राचीन काल से ध्यान और योग का अभ्यास करते आये हैं तथा झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, ज्ञातृ आदि व्रात्य क्षत्रिय प्रायः जैन थे। अन्यत्र यह सिद्ध किया जा चुका है कि "व्रात्य" क्षत्रिय बहुत करके जैन थे और उनमें के ज्येष्ठ व्रात्य सिवाय 'दिगम्बर मुनि के' और कोई न थे।[३] इस अवस्था में सिन्धु देश के उपर्युक्त कालवर्ती मनुष्यों का प्राचीन जैन ऋषियों का भक्त होना बहुत कुछ संभव है। किन्तु मोहन-जोदड़ो से जो मूर्तियाँ मिली हैं वह वस्त्रसंयुक्त हैं और उन्हें विद्वान लोग 'पुजारी'(Priest) व्रात्यों की मूर्तियाँ अनुमान करते हैं। हमारे विचार से वे हीन-व्रात्य (अणुव्रती श्रावकों) की मूर्तियाँ हैं। व्रात्य-साधु की मूर्ति वह हो नहीं सकती, क्योंकि उसे शास्त्रों में नग्न प्रगट किया गया है। वहाँ 'ज्येष्ठ व्रात्य' का एक विशेषण 'समनिचमेढ्र' अर्थात् 'पुरुषलिंग से रहित' दिया हुआ है जो नग्नता का द्योतक है। हीन व्रात्यों की पोशाक के वर्णन में कहा गया है कि वे एक पगड़ी (निर्यन्नद्ध) एक लाल कपड़ा और चांदी का आभूषण 'निश्क'नामक पहनते थे। उक्त मूर्ति की पोशाक भी इसी ढंग की है। माथे पर एक पट्ट रूप पगड़ी, जिसके बीच में एक आभूषण जड़ा है, वह पहने हुये प्रकट है और बगल से निकला हुआ एक छींटदार कपड़ा वह ओढ़े हुये है।[४] इस अवस्था में इन मूर्तियों को हीन व्रात्यों की मूर्तियाँ मानना ही ठीक है और इस तरह यह सिद्ध है कि व्रात्य क्षत्रिय एक अतीव प्राचीन काल में अवश्य ही एक वेद-विरोधी संप्रदाय था, जिसमें ज्येष्ठव्रात्य दिगम्बर मुनि के अनुरूप थे। अतः प्रकारान्तर से भारत का सिंधुदेशवर्ती सर्वप्राचीन पुरातत्व भी दिगम्बर मुनि और उनकी योगमुद्रा का पोषक है।[५]

---

१. PIS, IV. 287.

२. भमबु.पृ. २१९-२२०।

३. भपा., प्रस्तावना पृ. ४४-४५।

४. SPCIV Plate I.Fig.b.

५. 'SPCIV'pp. 25-33 में मोहन-जोदड़ो की मूर्तियों को जिन मूर्तियों के समान और उनका पूर्ववर्ती प्रकट किया गया है।

अशोक के शासन लेख में निर्ग्रंथ– सिंधु देश के पुरातत्व के उपरान्त सम्राट् अशोक द्वारा निर्मित पुरातत्व ही सर्वप्राचीन है। वह पुरातत्व भी दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व का द्योतक है। सम्राट् अशोक ने अपने एक शासन लेख में आजीविक साधुओं के साथ निर्ग्रंथ साधुओं का भी उल्लेख किया है।[१]

खंडगिरि–उदयगिरि के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि– अशोक के पश्चात् खण्डगिरि–उदयगिरि का पुरातत्व दिगम्बर धर्म का पोषक है। जैन सम्राट् खारवेल के हाथीगुफा वाले शिलालेख में दिगम्बर मुनियों के "तापस" (तपस्वी) रूप का उल्लेख है।[२] उन्होंने सारे भारत के दिगम्बर मुनियों का सम्मेलन किया था, यह पहले लिखा जा चुका है। खारवेल की पटरानी ने भी दिगम्बर मुनियों–कलिंग श्रमणों के लिये गुफा निर्मित कराकर उनका उल्लेख अपने शिलालेख में निम्न प्रकार किया है–

"अरहन्तपसादायन् कलिंगानम् समनानं लेनं कारितम् राजो लालकहथीसा – हसपपोतस् धुतुनाकलिंगचक्रवर्तिनो श्री खारवेलस अगमहिसिना कारितम्।"

भावार्थ – "अर्हंत के प्रासाद या मन्दिर रूप यह गुफा कलिंग देश के श्रमणों (दिगम्बर मुनियों) के लिये कलिंग चक्रवर्ती राजा खारवेल की मुख्य पटरानी ने निर्मित कराई, जो हथीसहस के पौत्र लालकस की पुत्री थी।[३]

खण्डगिरि की 'तत्व गुफा' पर जो लेख है वह बालमुनि का लिखा हुआ है[४] 'अनन्त गुफा' में लेख है कि दोहद के दिगम्बर मुनियों–श्रमणों की गुफा" (दोहद समनानम् लेनम्)।[५]

इस प्रकार खण्डगिरि–उदयगिरि के शिलालेखों से ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दि में दिगम्बर मुनियों के कल्याणकारी अस्तित्व का पता चलता है।

खण्डगिरि–उदयगिरि पर जो मूर्तियाँ हैं, वे प्राचीन और नग्न हैं और उनसे दिगम्बरत्व तथा दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व का पोषण होता है। वह अब भी दिगम्बर मुनियों का मान्य तीर्थ है।

मथुरा का पुरातत्व और दिगम्बर मुनि– मथुरा का पुरातत्व ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि तक का है और उससे भी दिगम्बर मुनियों का जनता में बहुमान्य और

---

१. स्तम्भ लेख नं. ७
२. सवदिसानं तापसान, पंक्ति १५, JBORS
३. बंबिओ जैस्मा., पृ. ९१।
४. Ibid.p. 94
५. Ibid.p. 97.
६. जैसिभा., वर्ष १, किरण ४, पृ. १२३।

कल्याणकारी होना प्रकट है। वहाँ की प्रायः सब ही प्राचीन मूर्तियाँ नग्न–दिगम्बर हैं। एक स्तूप के चित्र में जैन मुनि नग्न, पिच्छी व कमण्डल लिये दिखाये गये हैं[६]

उन पर के लेख दिगम्बर मुनियों के द्योतक हैं; यथा–

"नमो अर्हतो वर्धमानस आराये गणिकाये लोण शोभिकाये धितु समण साविकाये नादाये गणिकाये वसु (ये) आर्हतो देविकुल आयाग–सभा प्रयाशिल (T) पटो पतिस्ठापितो निगन्थानम् अर्हता यतनेसहामातरे भगिनिये धितरे पुत्रेण सर्वेन च परिजनेन अर्हत पुजाये।"

अर्थात् – "अर्हत् वर्द्धमान् को नमस्कार। श्रमणों की श्राविका आरायगणिका लोणशोभिका की पुत्री नादाय गणिका वसु ने अपनी माता, पुत्री, पुत्र और अपने सर्व कुटुम्ब सहित अर्हत् का एक मन्दिर एक आयाग–सभा, ताल और एक शिला निर्ग्रंथ अर्हतों के पवित्र स्थान पर बनवाये।[१]

इसमें दानशीला श्राविकाओं–श्रमणों–दिगम्बर मुनियों का भक्त तथा निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनियों के लिए एक शिला बनाया जाना प्रकट किया गया है। एक आयागपट पर के लेख में भी श्रमण–दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है।[२] प्लेट नं. २८ के लेख में भी ऐसा ही उल्लेख है[३] तथा एक दिगम्बर मूर्ति पर निम्न प्रकार लेख है–

....."सं. १५, ग्रि ३, दि १ अस्या पूर्व्वाय..... हिका तो आर्य जयभूतिस्य शिषीनिनं अर्य्य सनामिक शिषीन आर्य्य वसुलये (निर्व्वर्त) नं. .... लस्य धीतु.....३..... भुवेणि श्रेष्टिस्य धर्मपत्निये भट्टिसेनस्य..... (मातु) कुमरमितयो दनं. भगवतो (प्र) मा सब्ब तो भद्रिका।"

अर्थात् – "(सिद्ध !) सं. १५ ग्रीष्म के तीसरे महीने में पहले दिन को, भगवत् की एक चतुर्मुखी प्रतिमा कुमरमिता के दानरूप, जोल की पुत्री, की बहू, श्रेष्टि वेणि की प्रथम पत्नी, भट्टिसेन की माता थी, मेहिक कुल के आर्य जयभूति की शिष्या अर्य संगमिका की प्रति शिष्या वसुला की इच्छानुसार (अर्पित हुई थी)।[४]

इसमें दिगम्बर मुनि जयभूति का उल्लेख 'आर्य' विशेषण से हुआ है। ऐसे ही अन्य उल्लेखों से वहाँ का पुरातत्व तत्कालीन दिगम्बर मुनियों के सम्माननीय व्यक्तित्व का परिचायक है।

अहिच्छत्र (बरेली) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि – अहिच्छत्र (बरेली) पर एक समय नागवंशी राजाओं का राज्य था और वे दिगम्बर जैन धर्मानुयायी थे।

---

१. होली दरवाजा से मिला आयागपट–वीर, वर्ष ४, पृ. ३०३।

२. आर्यवती आयाग पट्ट, वीर, वर्ष ४, पृ. ३०४

३. JOAM..plate No. 28

४. वीर, वर्ष ४, पृ. ३१०।

वहाँ के कटारी खेड़ा की खुदाई में डॉ. फुहरर सा. ने एक समूचा सभा मन्दिर खुदवा निकलवाया था। यह मन्दिर ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि का अनुमान किया गया है और यह श्री पार्श्वनाथ जी का मन्दिर था। इसमें से मिली हुई मूर्तियाँ सन् ९६ से १५२ तक की हैं; जो नग्न हैं। यहाँ एक ईंटों का बना हुआ प्राचीन स्तूप भी मिला था, जिसके एक स्तम्भ पर निम्न प्रकार लेख था–

"महाचार्य इन्द्रनन्दि शिष्य पार्श्वयतिस्स कोट्टारी।"

आचार्य इन्द्रनन्दि उस समय के प्रख्यात दिगम्बर मुनि थे।[1]

कौशाम्बी के पुरातत्व में दिगम्बर संघ– कौशाम्बी का पुरातत्व भी दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व का पोषक है। वहाँ से कुषाण काल का मथुरा जैसा आयागपट्ट मिला है; जिसे राजा शिवमित्र के राज्य में आर्य शिवनन्दि की शिष्या बड़ी स्थविरा बलदासा के कहने से शिवपालित ने अर्हत् की पूजा के लिये स्थापित किया था।[2] इस उल्लेख से उस समय कौशाम्बी में एक वृहत् दिगम्बर जैन संघ रहने का पता चलता है।

कुहाऊं का गुप्तकालीन लेख दिगम्बर मुनियों का द्योतक है – कुहाऊं (गोरखपुर) से प्राप्त पुरातत्व गुप्त काल में दिगम्बर धर्म की प्रधानता का द्योतक है। वहाँ के पाषाण–स्तम्भ में, नीचे की ओर जैन तीर्थंकर और साधुओं की नग्न मूर्तियाँ हैं और उस पर निम्नलिखित शिलालेख है[3]

"यस्योपस्थानभूमिर्नृपति–शत शिरः पात–वातावधूता। गुप्तानां वंशजस्य प्रविसृतयशसस्तस्य सर्वोत्तमर्द्धेः। राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिप–शत–पतेः स्कन्दगुप्तस्य शान्तेः। वर्षे त्रिंशद्दशैकोत्तरक–शत–तमे ज्येष्ठ मासे प्रपन्ने–ख्यातेऽस्मिन् ग्राम–रत्ने ककुभ इति जनैस्साधु–संसर्गपूते पुत्रो यस्सोमिलस्य प्रचुर–गुण निधेर्भट्टिसोमो महार्थः तत्सूनू रुद्रसोमः पृथुलमतियशा व्याघ्ररत्यन्य संज्ञो मद्रस्तस्यात्मजो–भूद्द्विज–गुरुयतिषु प्रायशः प्रीतिमान्यः इत्यादि।"

भाव यही है कि संवत् १४१ में प्रसिद्ध तथा साधुओं के संसर्ग से पवित्र ककुभ ग्राम में ब्राह्मण–गुरु और यतियों को प्रिय मद्र नामक विप्र रहते थे; जिन्होंने पाँच अर्हत्–बिम्ब निर्मित कराये थे। इससे स्पष्ट है कि उस समय ककुभ ग्राम में दिगम्बर मुनियों का एक वृहत् संघ रहता था।

---

१. संप्रजैस्मा. पृ. ८१–८२ (General Cunningham) found a number of fragmentary naked Jain statues. Some inscribed with dates ranging from 96 to 152 A.D.

२. संप्राजैस्मा., पृ. २७।

३. पूर्व., पृ. ३–४।

राजगृह (बिहार) के पुरातत्त्व में दिगम्बर मुनियों की साक्षी– राजगृह (बिहार) का पुरातत्व भी गुप्तकाल में वहाँ दिगम्बर मुनियों के बाहुल्य का परिचायक है। वहाँ पर गुप्त काल की निर्मित अनेक दिगम्बर जैन मूर्तियाँ मिलती हैं[१] और निम्न शिलालेख वहाँ पर दिगम्बर जैन संघ का अस्तित्व प्रमाणित करता है–

"निर्वाणलाभाय तपस्वि योग्ये शुभेगुहेऽर्हत्प्रतिमा प्रतिष्ठे।

– आचार्यरत्नम् मुनि वैरदेवः विमुक्तये कारय दीर्घतेजः।"

अर्थात्– "निर्वाण की प्राप्ति के लिये तपस्वियों के योग्य और श्री अर्हंत की प्रतिमा से प्रतिष्ठित शुभगुफा में मुनि वैरदेव को मुक्ति के लिये परम तेजस्वी आचार्य पद रूपी रत्न प्राप्त हुआ यानि मुनि वैरदेव को मुनि संघ ने आचार्य स्थापित किया।" इस शिलालेख के निकट ही एक नग्न जैन मूर्ति का निम्न भाग उकेरा हुआ है जिससे इसका सम्बन्ध दिगम्बर मुनियों से स्पष्ट है।[१]

बंगाल के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि– गुप्तकाल और उसके बाद कई शताब्दियों तक बंगाल, आसाम और ओड़ीसा प्रान्तों में दिगम्बर जैन धर्म बहुप्रचलित था। नग्न जैन मूर्तियाँ वहाँ के कई जिलों में बिखरी हुई मिलती हैं। पहाड़पुर (राजशाही) गुप्तकाल में एक जैन केन्द्र था[३]। वहाँ से प्राप्त एक ताम्रलेख दिगम्बर मुनियों के संघ का द्योतक है। उसमें अंकित है कि "गुप्त सं. १५९ (सन् ४७९ ई.) में एक ब्राह्मण दम्पति ने निर्ग्रंथ विहार की पूजा के लिये वटगोहली ग्राम में भूमि दान दी। निर्ग्रंथ संघ आचार्य गुहनन्दि और उनके शिष्यों द्वारा शासित था।[४]

कादम्ब राजाओं के ताम्रपत्रों में दिगम्बर मुनि– देवगिरि (धारवाड़) से प्राप्त कादम्बवंशी राजाओं के ताम्रपत्र ईस्वी पाँचवीं शताब्दि में दिगम्बर मुनियों के वैभव को प्रकट करते हैं। एक लेख में है कि महाराजा कादम्ब श्री कृष्णवर्मा केराजकुमार पुत्र देववर्मा ने जैन मन्दिर के लिये यापनीय संघ के दिगम्बर मुनियों को एक खेत दान दिया था। दूसरे लेख से प्रकट है कि "काकुस्थवंशी श्री शान्तिवर्मा के पुत्र कादम्ब महाराज मृगेश्वरवर्मा ने अपने राज्य के तीसरे वर्ष में परलूरा के आचार्यों को दान दिया था।" तीसरे लेख में कहा गया है कि "इसी मृगेश्वरवर्मा ने जैन मन्दिरों

---

१. SPCIV. Plate 11 (b)

२. बंबिओजैस्मा., पृ. १६।

३. IHQ.Vol. VII.p. 441.

४. Modern Review. August 1931, p. 150.

५. IA. VII 33–34. बंप्राजैस्मा., पृ. १२६।

और निर्ग्रंथ (दिगम्बर) तथा श्वतेपट (श्वेताम्बर) संघों के साधुओं के व्यवहार के लिये एक कालवंग नामक ग्राम अर्पण किया था।[५]

उदयगिरि (भेलसा/ विदिशा) में पाँचवीं शताब्दि की बनी हुई गुफायें हैं, जिनमें जैन साधु ध्यान किया करते थे। उनमें लेख भी हैं।[१]

अजन्ता की गुफाओं में दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व- अजन्ता (खानदेश) की प्रसिद्ध गुफाओं के पुरातत्व से ईस्वी सातवीं शताब्दि में दिगम्बर जैन मुनियों का अस्तित्व प्रमाणित है। वहाँ की गुफा नं. १२ में दिगम्बर मुनियों का संघ चित्रित है। नं. ३३ की गुफा में भी दिगम्बर मूर्तियाँ हैं।[२]

बादामी की गुफा- बादामी (बाजीपुरा) में सन् ६५० ई. की जैन गुफा उस जमाने में दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व की द्योतक है। उसमें मुनियों के ध्यान करने योग्य स्थान हैं और नग्न मूर्तियाँ अंकित हैं।

चालुक्य राजा विक्रमादित्य के लेख में दिगम्बर मुनि- लक्ष्मेश्वर (धारवाड़) की संखवस्ती के शिलालेख से प्रगट है कि संखतीर्थ का उद्धार पश्चिमीय चालुक्यवंशी राजा विक्रमादित्य द्वितीय (शाका ६५६) ने कराया था और जिनपूजा के लिये श्री देवेन्द्र भट्टारक के शिष्य मुनि एकदेव के शिष्य जयदेव पंडित को भूमि दान दी थी। इससे विक्रमादित्य का दिगम्बर मुनियों का भक्त होना प्रकट है। वहीं के एक अन्य लेख से मूलसंघ के श्री रामचन्द्राचार्य और श्री विजय देव पंडिताचार्य का पता चलता है।[४] सारांशतः वहाँ उस समय एक उन्नत दिगम्बर जैन संघ विद्यमान था।

एलोरा की गुफाओं में दिगम्बर मुनि- ईस्वी आठवीं शताब्दि की निर्मित एलोरा की जैन गुफायें भी उस समय दिगम्बर मुनियों के विहार और धर्म प्रचार को प्रकट करती हैं। वहाँ की इन्द्रसभा नामक गुफा में जैन मुनियों के ध्यान करने और उपदेश देने योग्य कई स्थान हैं और उनमें अनेक नग्न मूर्तियाँ अंकित हैं। श्री बाहुबलि गोमट्टस्वामी की भी खड्गासन मूर्ति है। "जगन्नाथ सभा", "छोटा कैलाश" आदि गुफायें भी इसी ढंग की हैं और उनसे तत्कालीन दिगम्बरत्व की प्रधानता का परिचय मिलता है।[५]

---

१. मप्राजैस्मा., पृ. ७० ।
२. बंप्राजैस्मा., पृ.५५-५६
३. Ibid.p. 103
४. Ibid.pp. 124-125
५. Ibid.pp. 163-171

राष्ट्रराजा आदि के शिलालेखों में दिगम्बर मुनि- सौंदत्ति (बेलगाम) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनियों की मूर्तियों और उनका वर्णन मिलता है।[1] वहाँ एक आठवीं शताब्दि का शिलालेख है, जिससे प्रकट है कि "मैलेय तीर्थ की कारेय शाखा में आचार्य श्री मूल भट्टारक थे, जिनके शिष्य विद्वान् गुणकीर्ति थे और उनके शिष्य इच्छा को जीतने वाले श्रीमुनि इन्द्रकीर्ति स्वामी थे। उनके शिष्य [illegible] का बड़ा पुत्र राजा पृथ्वीवर्मा था, जिसने एक जैन मंदिर बनवाया था और उसके लिये भूमि का दान दिया था।" एक दूसरे सन् ११८१ के लेख से विदित है कि कुन्दुर जैन शाखा के गुरु अति प्रसिद्ध थे, उनको चौथे राष्ट्रराजा शांत ने १५० मत्तर भूमि उस जैन मन्दिर के लिये दी जो उन्होंने सौंदत्ति में बनवाया था और उतनी ही भूमि उस मन्दिर को उनकी स्त्री निजिकव्वे ने दी थी। उन दिगम्बराचार्य का नाम श्री बाहुबलि जी था और वे व्याकरणाचार्य थे। उस समय श्री रविचन्द्र स्वामी, अर्हनन्दि, शुभचन्द्र, भट्टारक देव, मौनीदेव, प्रभाचन्द्रदेव मुनिगण विद्यमान थे। राजा कत्तम् की स्त्री पद्मलादेवी जैन धर्म के ज्ञान व श्रद्धान में इन्द्राणी के समान थी। वह दिगम्बर मुनियों की भक्ति में दृढ़ थी

चालुक्य राजा विक्रम के लेख में दिगम्बर मुनियों का उल्लेख- एक अन्य लेख वहीं पर चालुक्य राजा विक्रम के १२ वें राज्य-वर्ष का लिखा हुआ है, जिसमें निम्नलिखित दिगम्बराचार्यों के नाम दिये हुए हैं-

"बलात्कारगण मुनि गुणचन्द, शिष्य नयनंदि, शिष्य श्रीधराचार्य, शिष्य चन्द्रकीर्ति, शिष्य श्रीधरदेव, शिष्य नेमिचन्द्र और वासुपूज्य त्रैविधदेव, वासुपूज्य के लघुभ्राता मुनि विद्वान मलपाल थे। वासुपूज्य के शिष्य सर्वोत्तम साधु पद्मप्रभ थे। सेरिंगका वंश का अधिकारी गुरु वासुपूज्य का सेवक था।"

इस प्रकार उपर्युक्त लेखों से सौंदत्ति और उसके आस-पास में दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य और उनका प्रभावशाली तथा राजमान्य होना प्रकट है।

राठौर राजाओं द्वारा मान्य दिगम्बर मुनियों के शिलालेख- गोविन्दराय तृतीय राठौर मान्यखेट के सन् ८१३ के ताम्रपत्र से प्रकट है कि गंगवंशी चाकिराज की प्रार्थना पर उन्होंने विजयकीर्ति कुलाचार्य के शिष्य मुनि अर्ककीर्ति को दान दिया था। अमोघवर्ष प्रथम ने सन् ८६० में मान्यखेट में देवेन्द्र मुनि को भूमिदान किया था।[2] इनसे दिगम्बर मुनियों का राठौर राजाओं द्वारा मान्य होना प्रमाणित है।

मूलगुंड के पुरातत्व में दिगम्बर संघ- मूलगुंड (धारवाड़) को ९ वीं १० वीं शताब्दि का पुरातत्व भी वहाँ पर दिगम्बर मुनियों के प्रभुत्व का द्योतक है। वहाँ के एक शिलालेख में वर्णन है कि "चीकारि, जिसने जैन मन्दिर बनवाया था, उस के पुत्र नागार्य के छोटे भ्राता आसार्य ने दान दिया। यह आसार्य नीति और धर्म शास्त्र में

१. बंप्राजैस्मा., पृ. ८३-८६।

२. भाप्रारा., ३८-४१।

बड़ा-विद्वान था। इसने नगर के व्यापारियों की सम्मति से १००० पान के वृक्षों के खेत को सेनवंश के आचार्य कनकसेन की सेवा में जैन मन्दिर के लिये अर्पण किया था। कनकसेनाचार्य के गुरु श्री वीर सेन स्वामी थे, जो पूज्यपाद कुमार सेनाचार्य के दिगम्बर मुनियों के संघ के गुरु थे। चन्द्रनाथ मन्दिर के शिलालेख से मूलगुंड के राजा मदरसा की स्त्री भामती की मृत्यु का वर्णन प्रकट है।[१] गर्ज यह है कि मूलगूंड से दिगम्बर मुनियों को एक समय प्रधान पद मिला हुआ था-वहाँ का शासक भी उनका भक्त था।

सुन्दी के शिलालेखों में राजमान्य दिगम्बर मुनि – सुन्दी (धारवाड़) के जैन मन्दिर विषयक शिलालेख (१० वीं श.) में पश्चिमीय गंगवंशीय राजकुमार बुटुग का वर्णन है, जिसने उस जैन मन्दिर के लिये दिगम्बर गुरु को दान दिया था जिसको उसकी स्त्री दिवलम्बा ने सुन्दी में स्थापित किया था। राजा बुटुग गंगमण्डल पर राज्य करता था और श्री नागदेव का शिष्य था। रानी दिवलम्बा दिगम्बर मुनियों और आर्यिकाओं की परम भक्त थी। उसने छह आर्यिकाओं को समाधिमरण कराया था।[२] इससे सुन्दी में दिगम्बर मुनियों का राजमान्य होना प्रकट है।

कुम्भोज बाहुबलि पहाड़ (कोल्हापुर) श्री दिगम्बर मुनि बाहुबलि के कारण प्रसिद्ध है, जो वहाँ हो गये हैं और जिनकी चरण पादुका वहाँ मौजूद है।[३]

कोल्हापुर के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि और शिलाहार राजा – कोल्हापुर का पुरातत्व दिगम्बर मुनियों के उत्कर्ष का द्योतक है। वहाँ के इरविन म्यूजियम में एक शिलालेख शाका दसवीं शताब्दी का है, जिससे प्रकट है कि दण्डनायक दासीमरस ने राजा जगदेकमल्ल के दूसरे वर्ष के राज्य में एक ग्राम धर्मार्थ दिया था। उस समय यापनीय संघ पुन्नागवृक्षमूलगण राद्धान्तादि के ज्ञाता परम विद्वान मुनि कुमार कीर्तिदेव विराजित थे।[४] तदोपरान्त कोल्हापुर के शिलाहार वंशी राजा भी दिगम्बर मुनियों के परम भक्त थे। वहाँ के एक शिलालेख से प्रकट है कि "शिलाहारवंशीय महामण्डलेश्वर विजयादित्य ने माघ सुदी १५ शाका १०६५ को एक खेत और एक मकान श्री पार्श्वनाथ जी के मन्दिर में अष्टद्रव्य पूजा के लिये दिया। इस मन्दिर को मूलसंघ देशीयगण पुस्तक गच्छ के अधिपति श्री माघनन्दि सिद्धान्तदेव (दिगम्बराचार्य) के शिष्य सामन्त कामदेव के अधीनस्थ वासुदेव ने बनवाया था। दान के समय राजा ने श्री माघनन्दि सिद्धान्तदेव के शिष्य माणिक्यनन्दि पं. के चरण धोये थे। "बमनी ग्राम से प्राप्त शाका १०७३ के लेख से प्रकट है कि "शिलाहार राजा विजयादित्य ने जैन मन्दिर के लिये श्री

१. बंप्राजैस्मा, पृ. १२०-१२१।
२. बंप्राजैस्मा., पृ. १२७।
३. बंप्राजैस्मा., पृ. १५३।
४. जैनमित्र, वर्ष ३३, पृ. ७१।

कुन्दकुन्दान्वयी श्री कुलचन्द्र मुनि के शिष्य श्री माघनंदि सिद्धान्तदेव के शिष्य श्री अर्हनन्दि सिद्धान्त देव के चरण धोकर भूमिदान किया था।[1] इनसे उस समय दिगम्बर मुनियों का प्रभुत्व स्पष्ट है।

आरटाल शिलालेख में चालुक्यराज पूजित दिगम्बर मुनि – आरटाल (धारवाड़) में एक शिलालेख शाका १०४५ का चालुक्यराज भुवनेकमल्ल के राज्य कालका मिलता है। उसमें एक जैन मंदिर बनने का उल्लेख है तथा दिगम्बर मुनि श्री कनकचन्द्र जी के विषय में निम्न प्रकार वर्णन है[2] –

"स्वस्ति यम-नियम स्वाध्याय ध्यान मौनानुष्ठान समाधिशील गुण संपन्नरम्प कनकचन्द्र सिद्धान्त देवः।"

इससे उस समय के दिगम्बर मुनियों की चरित्रनिष्ठा का पता चलता है।

ग्वालियर और दूबकुंड के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि – ग्वालियर का पुरातत्व ईस्वी ग्यारहवीं से सोलहवीं शताब्दि तक वहाँ पर दिगम्बर मुनियों के अभ्युदय को प्रकट करता है। ग्वालियर किले में इस काल की बनी हुई अनेक दिगम्बर मूर्तियाँ हैं। जो बाबर के विध्वंसक हाथ से बच गई हैं। उन पर कई लेख भी हैं, जिनमें दिगम्बर गुरुओं का वर्णन मिलता है।[3] ग्वालियर के दूबकुंड नामक स्थान से मिला हुआ एक शिलालेख सन् १०८८ में दिगम्बर मुनियों के संघ का परिचायक है। यह लेख महाराज विक्रमसिंह कछवाहा का लिखाया हुआ है जिसने श्रावक ऋषि को श्रेष्ठी पद प्रदान किया था और जो अपने भुजविक्रम के लिये प्रसिद्ध था। इस राजा ने दूबकुंड के जैन मंदिर के लिये दान दिया था और दिगम्बर मुनियों का सम्मान किया था। ये दिगम्बर मुनिगण श्री लाटवागटगण के थे और इनके नाम क्रमशः (१) देवसेन (२) कुलभूषण (३) श्री दुर्लभसेन (४) शांतिसेन और (५) विजयकीर्ति थे। इनमें श्री देवसेनाचार्य ग्रंथ रचना के लिये प्रसिद्ध थे और श्री शांतिसेन अपनी वादकला से विपक्षियों का मद चूर्ण करते थे।[4]

खजुराहा के लेखों में दिगम्बर मुनि – खजुराहा के जैन मंदिर में एक लेख संवत् १०११ का है। उससे दिगम्बर मुनि श्री वासवचन्द्र (महाराज गुरु[5] श्री वासवचन्द्र) का पता चलता है। वह धांगराजा द्वारा मान्य सरदार पाहिल के गुरु थे।

---

१. बंप्राजैस्मा., पृ. १५३-१५४।

२. दिजैड़ा, पृ. ७४१।

३. मप्राजैस्मा., पृ. ६५-६६।

४. मप्राजैस्मा., पृ. ७३-८४ –"श्री लाटवागटगणोन्नतरोहणाद्रि माणिक्यभूतचरितोगुरु देवसेन। सिद्धांतोद्विविधोप्यवाधितधिया येन प्रमाण ध्वनि। ग्रंथेषु प्रभवः श्रियामवगतो हस्तस्थ मुक्तोपमः। आस्थानाधिपतौ बुधादविगुणे श्री भोजदेवे नृपे सभ्येष्वंबरसेन पण्डित शिरोरत्नादिषूद्यन्मदान्। योनेकान्शतशो अजेष्ट पटुताभीष्टोद्यमो वादिनः शास्त्रांभोनधिपारगो भवदन्तः श्री शांतिसेनो गुरुः।"

५. मप्रजैस्मा., पृ. ११७।

झालरापाटन में दिगम्बर मुनियों की निषिधिकायें – झालरापाटन शहर के निकट एक पहाड़ी पर दिगम्बर मुनियों के कई समाधि स्थान हैं। उन पर के लेखों से प्रकट है कि सं. १०६६ में श्री नेमिदेवाचार्य और श्री बलदेवाचार्य ने समाधिमरण किया था।[१]

अलवर राज्य के लेखों में दिगम्बर मुनि – अलवर राज्य के नौगमा ग्राम में स्थित दिगम्बर जैन मन्दिर में श्री अनन्तनाथ जी की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है, जिसके आसन पर लिखा है कि सं. ११७५ में आचार्य विजयकीर्ति के शिष्य नरेन्द्रकीर्ति ने उसकी प्रतिष्ठा की थी।[२]

देवगढ़ (झांसी) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि – देवगढ़ (झांसी) का पुरातत्व वहाँ तेरहवीं शताब्दि तक दिगम्बर मुनियों के उत्कर्ष का द्योतक है। नग्न मूर्तियों से सारा पहाड़ ओतप्रोत है। उन पर के लेखों से प्रकट है कि ११वीं शताब्दि में वहाँ एक शुभदेवनाथ नामक प्रसिद्ध मुनि थे। सं. १२०९ के लेख में दिगम्बर गुरुओं की भक्त आर्यिका धर्मश्री का उल्लेख है। सं. १२२४ का शिलालेख पण्डित मुनि का वर्णन करता है। सं. १२०७ में वहाँ आचार्य जयकीर्ति प्रसिद्ध थे। उनके शिष्यों में भावनन्दि मुनि तथा कई आर्यिकायें थीं। धर्मनन्दि, कमलदेवाचार्य, नागसेनाचार्य व्याख्याता माघनन्दि, लोकनन्दि और गुणनन्दि नामक दिगम्बर मुनियों का भी उल्लेख मिलता है। नं. २२२ की मूर्ति मुनि–आर्यिका, श्रावक श्राविका इस प्रकार चतुर्विधसंघ के लिये बनी थी।[३] गर्ज यह कि देवगढ़ में लगातार कई शताब्दियों तक दिगम्बर मुनियों का दौरदौरा रहा था।

बिजौलिया (मेवाड़) में दिगम्बर साधुओं की मूर्तियाँ – बिजोलिया (पार्श्वनाथ–मेवाड़) का पुरातत्व भी वहाँ पर दिगम्बर मुनियों के उत्कर्ष को प्रकट करता है। यहाँ पर कई एक दिगम्बर मुनियों की नग्न प्रतिमायें बनी हुई हैं। एक मानस्तम्भ पर तीर्थंकरों की मूर्तियों के साथ दिगम्बर मुनिगण के प्रतिबिम्ब व चरणचिन्ह अंकित हैं। दो मुनिराज शास्त्रस्वाध्याय करते प्रकट किये गये हैं। उनके पास कमंडल, पिच्छी रखे हुए हैं। वे अजमेर के चौहान राजाओं द्वारा मान्य थे।[४] शिलालेखों से प्रकट है कि वहाँ पर श्री मूलसंघ के दिगम्बराचार्य श्री बसन्तकीर्तिदेव, विशालकीर्तिदेव, मदनकीर्तिदेव, धर्मचन्द्रदेव, रत्नकीर्तिदेव, प्रभाचन्द्रदेव, पद्मनन्दिदेव और शुभचन्द्रदेव विद्यमान थे।[५] इनको चौहान राजा

---

१. Ibid. p. 191.
२. Ibid. p. 195.
३. देजै., पृ. १३–२५।
४. दिजैडा, पृ. ५०१।
५. मप्राजैस्मा., पृ. ११३।

पृथ्वीराज और सोमेश्वर ने जैन मन्दिर के लिये ग्राम भेंट किये थे।[1] सारांशतः बिजोलिया में एक समय दिगम्बर मुनि प्रभावशाली हो गये थे।

अंजनेरी की गुफाओं में दिगम्बर मुनि – अंजनेरी और अंकई (नासिक जिला) की जैन गुफायें वहाँ पर १२ वीं १३ वीं शताब्दि में दिगम्बर मुनियों के अस्तित्व को प्रकट करती हैं। पाँडु लेना गुफाओं का पुरातत्व भी इसी बात का समर्थक है।[2]

बेलगाम के पुरातत्व और राजमान्य दिगम्बर मुनि – बेलगाम का पुरातत्व वहाँ पर १२वीं १३वीं शताब्दि में दिगम्बर मुनियों के महत्व को प्रकट करते हैं, जो राज मान्य थे। यहाँ के रट्ट राजाओं ने जैन मुनियों का सम्मान किया था, यह उनके लेखों से प्रकट है।

सन् १२०५ के लेख में वर्णन है कि बेलगाम में जब रट्टराजा कीर्त्तिवर्मा और मल्लिकार्जुन राज्य कर रहे थे तब श्री शुभचन्द्र भट्टारक की सेवा में राजा बीचा के बनाये गये रट्टों के जैन मंदिर के लिये भूमिदान किया गया था। एक दूसरा लेख भी इन्हीं राजाओं द्वारा शुभचन्द्र जी को अन्य भूमि अर्पण किये जाने का उल्लेख करता है। इसमें कार्तवीर्य की रानी का नाम पद्मावती लिखा है।[2] सचमुच उस समय वहाँ पर दिगम्बर मुनियों का काफी प्रभुत्व था।

बेलगामान्तर्गत कोन्नूर स्थान से भी रट्टराजा का एक शिलालेख शाका १००९ का मिला है, जिसका भाव है कि "चालुक्यराजा जयकर्ण के आधीन रट्टराज मण्डलेश्वर सेन कोन्नूर आदि प्रदेशों पर राज्य करता था, तब बलात्कारगण के वंशधरों को इन नगरों का अधिपति उसने बना दिया था।" यहाँ के जैन मन्दिरों को चालुक्य राजा कोन्न व जयकर्ण द्वारा दान दिये जाने का उल्लेख मिलता है।[3] इनसे दिगम्बर मुनियों का महत्व स्पष्ट है।

बेलगाम जिले के कलहोले ग्राम में एक प्राचीन जैन मन्दिर है, जिसमें एक शिलालेख रट्टराजा कार्तवीर्य चतुर्थ और मल्लिकार्जुन का लिखाया हुआ मौजूद है। उसमें श्री शांतिनाथ जी के मन्दिर को भूमिदान देने का उल्लेख है। मन्दिर के गुरु श्री मूलसंघ कुन्दकुन्दाचार्य की शाखा हणसांगी वंश के थे। इस वंश के तीन गुरु मलधारी

---

१. राइ., पृ. ३६३।
२. बंप्राजैस्मा., पृ. ५७–५९।
३. बंप्राजैस्मा.., पृ. ७४–७५।
४. Ibid. pp. 80–81.

थे, जिनके एक शिष्य सैद्धान्तिक नेमिचन्द्र थे। श्री नेमिचन्द्र के शिष्य शुभचन्द्र थे, जिन्होंने दिगम्बर धर्म की उन्नति की थी। उनके शिष्य श्री ललितकीर्ति थे।[१]

बेलगाम जिले में स्थित रायबाग ग्राम में भी एक जैन शिलालेख रट्टराजा कार्तवीर्य का है। उससे विदित है कि कार्तवीर्य ने भगवान शुभचन्द्र जी को शाका ११२४ में रट्टों के उन जैन मन्दिरों के लिये दान दिया था।[२] इससे चन्द्रिकादेवी का दिगम्बर मुनियों और तीर्थंकरों का भक्त होना प्रकट है।

बीजापुर किले की मूर्तियाँ दिगम्बर मुनियों की द्योतक – बीजापुर के किले की दिगम्बर मूर्तियाँ सं. १००१ में श्री विजयसूरी द्वारा प्रतिष्ठित हैं।[३] उनसे प्रकट है कि बीजापुर में उस समय दिगम्बर मुनियों की प्रधानता थी।

तेवरी की दिगम्बर मूर्ति – तेवरी (जबलपुर) के तालाब में स्थित दिगम्बर जैन मन्दिर की मूर्ति पर बारहवीं शताब्दि का लेख है कि "मानादित्य की स्त्री रोज नमन करती है।"[४] इससे वहाँ पर जैन मुनियों का राजमान्य होना प्रकट है।

दिल्ली के लेखों में दिगम्बर मुनि – दिल्ली नया मन्दिर कटघर की मूर्तियों पर के लेख १५ वीं शताब्दि में वहाँ दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व प्रकट करते हैं। श्री आदिनाथ की मूर्ति पर लेख है कि "सं.१४२८ ज्येष्ठ सुदी १२ सोमवासरे काष्ठासंघे माथुरान्वये भ. श्रीदेवसेनदेवास्तत्पट्टे त्रयोदशविधचारित्रेनालंकृताः सकल विमल मुनिमंडली शिष्यः शिखापणयः प्रतिष्ठाचार्यवर्य श्री विमलसेन देवास्तेषामुपदेशेन जाइसवालान्वये सा. पुइपति। इत्यादि।" इन्हीं मुनि विमलसेन की शिष्या आर्यिका गुणश्री विमल श्री थी, यह बात उसी मन्दिर की एक अन्य मूर्ति पर के लेख से प्रकट है।

लखनऊ के मूर्ति-लेख में निर्ग्रंथाचार्य – लखनऊ चौक के जैन मन्दिर में विराजमान श्री आदिनाथ की मूर्ति पर के लेख से विदित है कि सं. १५०३ में श्री भगवान सकलकीर्ति जी के शिष्य श्री निर्ग्रंथाचार्य विमलकीर्ति थे, जिनका उपदेश और विहार चहुं ओर होता था।

चावलपट्टी (बंगाल) के जैन मन्दिर में विराजमान दशधर्म यंत्रलेख से प्रकट है कि सं. १५८६ में आचार्य श्री रत्नकीर्ति के शिष्य मुनि ललितकीर्ति विद्यमान थे जिनकी भक्ति भ्रमरीबाई करती थीं।[५]

---

१. pp. 82–83.
२. Ibid. p.87.
३. Ibid. p. 108.
४. दिजैंडा, पृ. २८७।
५. जैप्रयलें सं., पृ. २५।

कलकत्ता की मूर्तियाँ और दिगम्बर मुनि – यहीं के एक अन्य सम्यक ज्ञान यंत्र के लेख से विदित होता है कि सं. १६३४ में विहार में भगवान धर्मचन्द्र जी के शिष्य मुनि श्री बाहुनन्दि का विहार और धर्मप्रचार होता था।[१]

एटा, इटावा और मैनपुरी के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि– कुरावली (मैनपुरी) के जैन मन्दिर मे विराजमान सम्यग्दर्शन यंत्र पर के लेख से प्रकट है कि सं. १५७८ में मुनि विशालकीर्ति विद्यमान थे। उनका विहार संयुक्त प्रान्त में होता था।[२] अलीगंज (एटा) के लेखों से मुनि माघनंदि और मुनि धर्मचन्द्र जी का पता चलता है।[३] इटावा नशियाँजी पर कतिपय जैन स्तूप हैं और उन पर के लेख से यहाँ अठारहवीं शताब्दी में मुनि विजयसागर जी का होना प्रमाणित होता है।[४] उधर पटना के श्री हरकचंद वाले जैन मन्दिर में सं. १९६४ की बनी हुई दिगम्बर मुनि की काष्ठमूर्ति विद्यमान है।[५]

सारांशतः उत्तर भारत और महाराष्ट्र मे प्राचीनकाल से बराबर दिगम्बर मुनि होते आये हैं, यह बात उक्त पुरातत्व विषयक साक्षी से प्रमाणित है। अब यह आवश्यक नहीं है कि और भी अनगिनत शिलालेखादि का उल्लेख करके इस व्याख्या को पुष्ट किया जाय। यदि सब ही जैन शिलालेख यहाँ लिखे जायें तो इस ग्रंथ का आकार–प्रकार तिगुना–चौगुना बढ़ जायेगा, जो पाठकों के लिये अरुचिकर होगा।

दक्षिण भारत का पुरातत्व और दिगम्बर मुनि– अच्छा तो अब दक्षिण भारत के शिलालेखादि पुरातत्व पर एक नजर डाल लीजिये। दक्षिण भारत की पाण्डवमलय आदि गुफाओं का पुरातत्व एक अति प्राचीन काल में वहाँ पर दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व प्रमाणित करता है। अनुमनामलें (ट्रावनकोर) की गुफाओं में दिगम्बर मुनियों का प्राचीन आश्रम था। वहाँ पर दीर्घकाय दिगम्बर मूर्तियाँ अंकित हैं। दक्षिण देश के शिलालेखों में मदूरा और रामनंद जिलों से प्राप्त प्रसिद्ध ब्राह्मीलिपि के शिलालेख अति प्राचीन हैं। वह अशोक की लिपि में लिखे हुये हैं। इसलिये इनको ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि का समझना चाहिये। यह जैन मन्दिरों के पास बिखरे हुये मिले हैं और इनके निकट ही तीर्थंकरों की नग्न मूर्तियाँ भी थीं। अतः इनका सम्बन्ध जैन धर्म से होना बहुत कुछ संभव हैं। इनसे स्पष्ट है कि ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि से ही जैन मुनि दक्षिण भारत में प्रचार करने लगे थे।[६] इन शिलालेखों के अतिरिक्त दक्षिण भारत में दिगम्बर मुनियों से सम्बन्ध रखने वाले सैंकड़ों शिलालेख हैं। उन सबको यहाँ उपस्थित करना असम्भव हैं। हाँ, उनमें कुछ

---

१. जैयप्रयलें सं., पृ. २६।

२. प्राजैलेसं, पृ. ४६।

३. Ibid. p.७०

४. Ibid. pp. 90 & 91.

५. Mr. Ajitaprasada. Advocate, Lucknow reports. "Patna Jain temple renovated in 1964 V.S. by daughter in-law of Harakchand. On the entrance door is the life-size image in wood of a muni with a Kamandal in the right hand & the broken end of what must have been a Pichi in the left."

६. SSIJ. Pt.I. pp. 35.

एक का परिचय हम यहाँ पर अंकित करना उचित समझते हैं। अकेले श्रवणबेलगोल में ही इतने अधिक शिलालेख हैं कि उनका सम्पादन एक बड़ी पुस्तक में किया गया है। अस्तु

श्रवणबेलगोल के शिलालेखों में प्रसिद्ध दिगम्बर साधुगण– पहले श्रवण बेलगोल के शिलालेखों से ही दिगम्बर मुनियों का महत्व प्रमाणित करना श्रेष्ठ है। शक सं. ५२२ के शिलालेखों से वहाँ पर श्रुतकेवली भद्रबाहु और मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त का परिचय मिलता है। इन दोनों महानुभावों ने दिगम्बर–वेष में श्रवण–बेलगोल को पवित्र किया था।[१] शक सं. ६२२ के लेख में मौनिगुरु की शिष्या नागमति को तीन मास का व्रत धारण करके समाधिमरण करते लिखा है। इसी समय के एक अन्य लेख में चरितश्री नामक मुनि का उल्लेख है।[२] धर्मसेन, बलदेव, पट्टिनिगुरु, उग्रसेन गुरु, गुणसेन, पेरुभालु, उल्लिकल, तीर्थद, कुलापक आदि दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व भी इसी समय प्रमाणित है।[३] शक सं. ८९६ के लेख से प्रकट है कि गंगराजा मारसिंह ने अनेक लड़ाइयाँ लड़कर अपना भुजविक्रम प्रकट किया था और अंत में अजितसेनाचार्य के निकट बंकापुर में समाधिमरण किया था।[४]

तार्किकचक्रवर्ती श्री देवकीर्ति– शक संवत् १०८५ के लेख से तार्किकचक्रवर्ती श्री देवकीर्ति मुनि का तथा उनके शिष्य लक्खनन्दि, माधवेन्दु और त्रिभुवनमल्ल का पता चलता है। उनके विषय में कहा गया है–

"कुर्ज्जैनाः कपिल–वादिनगेन्द्र–वज्रये।
चार्व्वाक–वादि–मकराकर–वाडवाग्नये।
बौद्धप्रवादितिमिरप्रविभेदभानवे.
श्री देवकीर्त्तिमुनये कविवादिवाग्मिने।।"

*   *   *

"चतुर्म्मुख चतुर्व्वक्त्र निर्गमागमदुस्सहा।
देवकीर्तिमुखाम्भोजे नृत्यतीति सरस्वती।।"

सचमुच मुनि देवकीर्ति जी अपने समय के अद्वितीय कवि, तार्किक और वक्ता थे। वे महामण्डलाचार्य और विद्वान थे और उनके समक्ष सांख्यिक, चार्वाक, नैयायिक, वेदान्ती, बौद्ध आदि सभी दार्शनिक हार मानते थे।"[५]

---

१. जैशिसं. पृ.१–२।
२. Ibid p–3.
३. Ibid pp 1–18
४. Ibid P.20.
५. जैशिसं., पृ.२३–२४।

महाकवि मुनि श्री श्रुतकीर्ति – उक्त समय के एक अन्य शिलालेख में मुनि देवकीर्ति की गुरु परम्परा रही है, जिसमे प्रकट है कि मुनि कनकनन्दि और देवचंद्र की भ्राता श्रुतकीर्ति त्रैविद्य मुनि ने देवेन्द्र सदृश विपक्षवादियों को पराजित किया था और एक चमत्कारी काव्य राघव–पांडवीय की रचना की थी, जो आदि से अन्त को व अन्त से आदि को दोनों ओर पढ़ा जा सके। इससे प्रकट है कि उपर्युक्त मुनि देवकीर्ति के शिष्य यादव–नरेश नारसिंह प्रथम के प्रसिद्ध सेनापति और मंत्री हुल्लप थे।[१]

श्री शुभचन्द्र और रानी जवक्कणव्वे – शक सं. १०९९ के लेख में मंत्री नागदेव के गुरु श्री नयकीर्ति योगीन्द्र व उनकी गुरु परंपरा का उल्लेख है।[२] शक सं. १०४५ लेख से प्रकट है कि होयसाल महाराज गंग नरेश विष्णुवर्द्धन ने अपने गुरु शुभचंद्रदेव की निषद्या निर्माण कराई थी। इनकी भावज जवक्कणव्वे की जैन धर्म में दृढ़ श्रद्धा थी और वह दिगम्बर मुनियों को दानादि देकर सत्कार किया करती थी।[३] उनके विषय में निम्न प्रकार का उल्लेख किया है –

> "दोरेये जक्कणिकव्वेगी भुवनदोल् चारित्रदोल् शीलदोल्
> परमश्रीजिनपूजेयोल् सकलदानाश्चर्यदोल् सत्यदोल्।
> गुरुपादाम्बुजभक्तियोल् विनयदोल भव्यक्कलंकन्ददा
> दरिदं मुन्निसुतिर्प्प पेम्पिनेडेयोल् मत्तन्यकान्ताजनम् ।।"

श्री गोल्लाचार्य प्रभृत अन्य दिगम्बराचार्य – शक सं. १०३७ के लेख में है कि मुनि त्रैकाल्य योगी के तप के प्रभाव से एक ब्रह्मराक्षस उनका शिष्य हो गया था। उनके स्मरण मात्र से बड़े–बड़े भूत भागते थे। उनके प्रताप से करंज का तेल घृत में परिवर्तित हो गया था। गोल्लाचार्य मुनि होने के पहले गोल्ल देश के नरेश थे। नूत्न चन्दिल नरेश के वंश के चूड़ामणि थे। सकलचन्द्रमुनि के शिष्य मेघचंद्र त्रैविद्य थे। जो सिद्धान्त में वीरसेन तर्क में अकलंक और व्याकरण में पूज्यपाद के समान विद्वान थे।[४] शक सं. १०४४ के लेख में दण्डनायक गंगराज की धर्मपत्नी लक्ष्मीमति के गुण, शील और दान की प्रशंसा है। वह दिगम्बराचार्य श्री शुभचन्द्र जी की शिष्या थी। इन्हीं आचार्य की एक अन्य धर्मात्मा शिष्या राजसम्मानित चामुण्ड की स्त्री देवमति थी।[५] शक सं. १०६८ के लेख में अन्य दिगम्बर मुनियों के साथ श्री शुभकीर्ति आचार्य का उल्लेख है, जिनके सम्मुख बाद में बौद्ध मीमांसकादि कोई भी नहीं ठहर सकता था। इसी में प्रभाचन्द्र जी की शिष्या, विष्णुवर्द्धन नरेश की पटरानी शांतलदेवी की धर्मपरायणता का भी उल्लेख है।[६]

---

१. Ibid. pp. 24–30.
२. Ibid. pp. 33–42.
३. Ibid. pp. 43–49.
४. Ibid. pp. 56–66.
५. Ibid. pp. 67–70
६. Ibid. pp. 80–81.

शक सं. १०५० के लेख में श्री महावीर स्वामी के बाद दिगम्बर मुनियों का शिष्य परम्परा का बखान है जिसमें श्रुतकेवली भद्रबाहु और सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य का भी उल्लेख है। कुन्दकुन्दाचार्य के चारित्र गुणादि का परिचय भी एक श्लोक द्वारा कराया गया है।

श्री कुन्दकुन्द और समन्तभद्र आचार्य – इन आचार्यों को एक अन्य शिलालेख में मूलसंघ का अग्रणी लिखा है। उन्होंने चारित्र की श्रेष्ठता से चारणऋद्धि प्राप्त की थी, जिसके बल से वह पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर चलते थे।[१] श्री समन्तभद्राचार्य जी के विषय में कहा गया है –

"पूर्व्वं पाटलिपुत्र–मध्य–नगरे भेरी मया ताड़िता
पश्चान्मालव–सिन्धु–ठक्क–विषये कांचीपुरे वैदिशे।
प्राप्तोऽहंकरहाटकं बहु–भटं विद्योत्कटं संकटम्
वदार्त्थी विचराम्यहन्नरपते शार्दूलविक्रीडितम् ।।७।।
अवटु तटमटतिझटिति स्फुट पटु वाचाट धूर्ज्जटेरपि जिह्वा
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवतितवसदसि भूपकास्थान्येषां।।८।।"

भाव यही है कि समन्तभद्रस्वामी ने पहले पाटलिपुत्र नगर में वादभेरी बजाई थी। तदोपरान्त वह मालव,सिंधु पंजाब कांचीपुर विदिशा आदि में वाद करते हुये करहाटक नगर (कराड़) पहुंचे थे और वहाँ की राजसभा में वाद गर्जना की थी। कहते है कि वादी समन्तभद्र की उपस्थिति में चतुराई के साथ स्पष्ट शीघ्र और बहुत बोलने वाले धूर्जटि की जिह्वा ही जब शीघ्र अपने बिल में घुस जाती है , उसे कुछ बोल नहीं आता तो फिर दूसरे विद्वानों की कथा ही क्या है? उनका अस्तित्व तो समन्तभद्र के सामने कुछ भी महत्व नहीं रखता। सचमुच समन्तभद्राचार्य जैन धर्म के अनुपम रत्न थे। उनका वर्णन अनेक शिलालेखों में गौरवरूप से किया गया है। तिरुमकूडलु नरसीपुर ताल्लुके के शिलालेख नं. १०५ के निम्न पद्य में उनके विषय में ठीक ही कहा गया है कि –

समन्तभद्रस्संस्तुत्यः कस्य न स्यान्मुनिश्वरः।
वाराणसीश्वरस्याग्रे निर्जिता येन विद्विषः।।

अर्थात् – वे समन्तभद्र मुनीश्वर जिन्होंने वाराणसी (बनारस) के राजा के सामने शत्रुओं को, मिथ्यैकान्तवादियों को परास्त किया है, किसके स्तुतिपात्र नहीं है? वे सभी के द्वारा स्तुति किये जाने के योग्य हैं।"

शिवकोटि नामक राजा ने श्री समन्तभद्र जी के उपदेश से ही जैनेन्द्रिय दीक्षा ग्रहण की थी।

---

१. Ibid. Intro. p. 140.

श्री वक्रग्रीव आदि दिगम्बराचार्य - दिगम्बराचार्य श्री वक्रग्रीव के विषय में उपर्युक्त श्रवणबेलगोलीय शिलालेख बताता है कि वे छः मास तक "अथ" शब्द का अर्थ करने वाले थे। श्री पात्रकेसरी के गुरु त्रिलक्षण सिद्धान्त के खण्डनकर्ता थे। श्री वर्द्धदेव चूड़ामणि काव्य के कर्ता कवि दण्डी द्वारा स्तुत्य थे। स्वामी महेश्वर ब्रह्मराक्षसों द्वारा पूजित थे। अकलंक स्वामी बौद्धों के विजेता थे। उन्होंने साहस तुंग नरेश के सन्मुख हिमशीतल नरेश की सभा में उन्हें परास्त किया था। विमलचन्द्र मुनि ने शैव पाशुपतादिवादियों के लिये "शत्रुभयंकर के भवनद्वार पर नोटिस लगा दिया था, पर वादिमल्ल ने कृष्णराज के समक्ष वाद किया था। मुनि वादिराज ने चालुक्यचक्रेश्वर जयसिंह के कटक में कीर्ति प्राप्त की थी। आचार्य शान्तिदेव होयसाल नरेश विनयादित्य द्वारा पूज्य थे। चतुर्मुखदेव मुनिराज ने पाण्डय नरेश से "स्वामी" की उपाधि प्राप्त की थी, और आहवमल्लनरेश ने उन्हें "चतुर्मुखदेव" रूपी सम्मानित नाम दिया था। गर्ज यह कि यह शिलालेख दिगम्बर मुनियों के गौरव गाथा से समन्वित है।[१]

दिगम्बराचार्य श्री गोपनन्दि - शक सं. १०२२ (नं. ५५) के शिलालेख से जाना जाता है कि मूलसंघ देशीयगण आचार्य गोपनन्दि बहुप्रसिद्ध हुये थे। वह बड़े भारी कवि और तर्कप्रवीण थे। उन्होंने जैन धर्म की वैसी ही उन्नति की थी जैसी गंगनरेशों के समय हुई थी। उन्होंने धूर्जटिकी जिह्वा को भी स्थगित कर दिया था। देश देशान्तर में विहार करके उन्होंने सांख्य, बौद्ध, चार्वाक, जैमिनि, लोकायत आदि विपक्षी मतों को हीनप्रभ बना दिया था। वह परमतप के निधान प्राणीमात्र के हितैषी और जैन शासन के सकल कलापूर्ण चन्द्रमा थे।[२] होयसल नरेश एरेयंग उनके शिष्य थे, जिन्होंने कई ग्राम उन्हें भेंट किये थे।[३]

धारानरेश पूजित प्रभाचन्द्र - इसी शिलालेख में मुनि प्रभाचन्द्र जी के विषय में लिखा है कि वे एक सफल वादी थे और धारानरेश भोज ने अपना शीश उनके पवित्र चरणों में रखा था।[४]

श्री दामनन्दि - श्री दामनन्दि मुनि को भी इस शिलालेख में एक महावादी प्रकट किया गया है जिन्होंने बौद्ध, नैयायिक और वैष्णवों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। वादी, महावादी "विष्णु भट्ट" को परास्त करने के कारण वे "महावादि विष्णुभट्टघरट्ट" कहे गये हैं।[५]

---

१. जैशिसं., पृ. १०१-११४।

२. जैशिसं., पृ. ११७ "परमतपो निधानै, वसुधैककुटुम्बजैन शासनाम्बर परिपूर्णचन्द्र सकलागम तत्व पदार्थ शास्त्र विस्तर वचनाभिरामगुण रत्न विभूषण गोपणन्दिः।"

३. जैशिसं., पृ. ३९५।

४. जैशिसं., पृ. ११८।

५. जैशिसं., पृ. ११८।

श्री जिनचन्द्र – श्री जिनचन्द्र मुनि को यह शिलालेख व्याकरण में पूज्यपाद, तर्कमें भट्टाकलंक और साहित्य में भारवि बतलाता है।[१]

चालुक्य नरेश पूजित श्री वासवचन्द्र – श्री वासवचन्द्र मुनि ने चालुक्य नरेश के कटक में "बाल सरस्वती" की उपाधि प्राप्त की थी, यह भी इस शिलालेख से प्रकट है। स्याद्वाद और तर्कशास्त्र में यह प्रवीण थे।[२]

सिंहल नरेश द्वारा सम्मानित यशः कीर्तिमुनि – श्री यशःकीर्तिमुनि को उक्त शिलालेख सार्थक नाम बताता है। वे विशाल कीर्ति को लिये हुये स्याद्वाद सूर्य ही थे। बौद्धवादियों को उन्होंने परास्त किया था तथा सिंहल नरेश ने उनके पूज्यपादों का पूजन किया था।[३]

श्री कल्याणकीर्ति – श्री कल्याणकीर्ति मुनि को उक्त शिलालेख जीवों के लिये कल्याणकारक प्रकट करता है। वह शाकनी आदि बाधाओं को दूर करने में प्रवीण थे।[४]

श्री त्रिमुष्टि मुनीन्द्र बड़े सैद्धान्तिक बताये गये हैं। वे तीन मुट्ठी अन्न का ही आहार करते थे। सारांश यह कि उक्त शिलालेख दिगम्बर मुनियों की गौरव गाथा को जानने के लिये एक अच्छा साधन है।[५]

वादीन्द्र अभयदेव – शक सं. १३२० (नं. १०५) के शिलालेख में भी अनेक दिगम्बराचार्यों की कीर्तिगाथा का बखान है। वादीन्द्र अभयदेवसूरि ने बौद्धादि परवादियों को प्रतिभाहीन बना दिया था। यही बात आचार्य चारुकीर्ति के विषय में कही गई है।[६]

होयसाल वंश के राजगुरु दिगम्बर मुनि – शक सं. १२०५ (नं. १२९) में होयसाल वंश के राजगुरु महामण्डलाचार्य माघनन्दि का उल्लेख है, जिनके शिष्य बेल्गोल केजौहरी थे।[७]

---

१. जैनेन्द्र पूज्य (पादः) सकलसमयतर्क्के च भट्टाकलंकः।
साहित्ये भारविस्स्यात्कवि गमक–महावाद–वाग्मित्व–रून्द्रः
गीते वाद्ये च नृत्ये दिशि विदिश च संवर्ति सत्कीर्ति मूर्तिः।
स्थेयाश्छ्रीयोगिवृन्दार्चितपद जिनचन्द्रो वितन्द्रोमुनीन्द्रः।।   – Ibid. p. 253.
२. जैशिसं., पृ.११९–"चालुक्य-कटक–मध्ये बाल सरस्वतिरिति प्रसिद्धि प्राप्तः।"
३. "श्रीमान्यशःकीर्ति–विशालकीर्ति स्याद्वाद्व तर्काब्ज–विबोधनार्क्कः।
बौद्धादि–वादि–द्विप–कुम्भ भेदी श्री सिंहलाधीश कृतार्घ्य पादः।। २६।।"
४. कल्याणकीर्ति नामाभूतभव्य कल्याण कारकः।
शाकिन्ययादि ग्रहाणांच निर्द्धाटनदुर्द्धुरः।   –जैशिसं., पृ. १२१
५. "मुष्टि–त्रय–प्रमिताशन–तुष्टः शिष्ट प्रियस्त्रिमुष्टिमुनीन्द्रः।"
६. जैशिसं., पृ. १९८–२०७
७. Ibid. p. 253/

योगी दिवाकरनन्दि – नं. १३९ के शिलालेख में योगी दिवाकरनन्दि तथा उनके शिष्यों का वर्णन है। एक गन्ती नामक भद्र महिला ने उनसे दीक्षा लेकर समाधिमरण किया था।[१]

एक सौ आठ वर्ष तप करने वाले दिगम्बर मुनि – नं. १५९ शिलालेख प्रकट करता है कि कालन्तूर के एक मुनिराज ने कटवप्र पर्वत पर एक सौ आठ वर्ष तक तप करके समाधिमरण किया था।[२]

ग़र्ज़ यह कि श्रवणबेलगोल के प्रायः सब ही शिलालेख दिगम्बर मुनियों की कीर्ति और यशः को प्रकट करते हैं। राजा और रंक सब ही का उन्होंने उपकार किया था। रणक्षेत्र में पहुंचकर उन्होंने वीरों को सन्मार्ग सुझाया था। राजा रानी, स्त्री–पुरुष सब ही उनके भक्त थे।

दक्षिण भारत के अन्य शिलालेखों में दिगम्बर मुनि – श्रवणबेलगोल के अतिरिक्त दक्षिणभारत के अन्य स्थानों से भी अनेक शिलालेख मिले हैं, जिनसे दिगम्बर मुनियों का गौरव प्रकट होता है। उनमें से कुछ का संग्रह प्रो. शेषगिरिराव ने प्रकट किया है जिससे विदित होता है कि दिगम्बर मुनि इन शिलालेखों में यम–नियम–स्वाध्याय–ध्यान धारण–मौनानुष्ठान–जप–समाधि–शीलगुण–सम्पन्न लिखे गये हैं।[३] उनका यह विशेषण उन्हें एक सिद्ध योगी प्रकट करता है। प्रो. सा. उनके विषय में लिखते हैं कि –

"From these epigraphs we learn some details about the great ascetics and acharyas who spread the gospel of Jainism in the Andhra–Karnata desa. They were not only the leader of lay and ascetic disciples but of royal dynasties of warrior clans that held the destinies of the peoples of these lands in their hands."[४]

भावार्थ – " उक्त शिलालेख संग्रह से उन महान दिगम्बर मुनियों और आचार्यों का परिचय मिलता है जिन्होंने आन्ध्र कर्णाट देश में जैन धर्म का संदेश विस्तृत किया था। वे मात्र श्रावक और साधु शिष्यों के ही नेता नहीं थे बल्कि उन क्षत्रिय कुलों के राजवंशों के भी नेता थे जिनके हाथों में उन देश की प्रजा के भाग्य की बागडोरथी।"

---

१. Ibid. p. 289.
२. Ibid. p. 308.
३. SSIJ. Pt.II p.6.
४. Ibid. p. 68.

दिगम्बराचार्यों का महत्वपूर्ण कार्य – सचमुच दिगम्बर मुनियों ने बड़े-बड़े राज्यों की स्थापना और उनके संचालन में गहरा भाग लिया था। पुलल (मद्रास) के पुरातत्व से प्रकट है कि उनके एक दिगम्बराचार्य ने असभ्य कुटुम्बों को जैन धर्म में दीक्षित करके सभ्य शासक बना दिया था। वे जैन धर्म के महान् रक्षक थे और उन्होंने धर्म लगन से प्रेरित होकर बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ीं थीं।[१] उन्होंने ही क्या बल्कि दिगम्बराचार्यों के अनेक राजवंशी शिष्यों ने धर्म संग्राम में अपना भुज विक्रम प्रकट किया था। जैन शिलालेख उनकी रण-गाथाओं से ओतप्रोत है। उदाहरणतः गंगसेनापति क्षत्रचूड़ामणि श्री चामुण्डराय को ही लीजिये, वह जैन धर्म के दृढ़ श्रद्धानी ही नहीं बल्कि उसके तत्व के ज्ञाता थे। उन्होनें जैन धर्म पर कई श्रेष्ठ ग्रंथ लिखे हैं और वह श्रावक के धर्माचार का भी पालन करते थे, किन्तु उस पर भी उन्होंने एक नहीं अनेक सफल संग्रामों में अपनी तलवार का जौहर जाहिर किया था।[२] सचमुच जैन धर्म मनुष्य को पूर्ण स्वाधीनता का सन्देश सुनाता है। जैनाचार्य निःशंक और स्वाधीन होकर वही धर्मोपदेश जनता को देते हैं जो जनकल्याणकारी हो। इसलिये वह "वसुधैवकुटुम्बकं" कहे गये हैं। भीरुता और अन्याय तो जैन मुनियों के निकट फटक भी नहीं सकता है।

प्रो.सा. के उक्त संग्रह में विशेष उल्लेखनीय दिगम्बराचार्य श्री भावसेन त्रैवेद्य चक्रवर्ती जो वादियों के लिये महाभयानक (Terror to disputant) थे वह और बवराज के गुरु (Preceptor of Bava King) श्री भावनन्दि मुनि हैं।[३] अन्य स्रोत से प्रकट है कि –

बाद के शिलालेखों में दिगम्बर मुनि – सन् १४७८ ई. में जिञ्जी प्रदेश में दिगम्बराचार्य श्री वीरसेन बहुत प्रसिद्ध हुए थे। उन्होंने लिंगायत-प्रचारकों के समक्ष वाद में विजय पाकर धर्मोद्योत किया था और लोगों को पुनः जैन धर्म में दीक्षित किया था।[४] कारकल में राजा वीरपाड्य ने दिगम्बराचार्यों को आश्रय दिया था और उनके द्वारा सन् १४३२ में श्री गोम्मट मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी जिसे उन्होंने स्थापित कराया था। एक ऐसी ही दिगम्बर मूर्ति की स्थापना वेणूर में सन् १६०४ में श्री तिम्मराज द्वारा की गई थी। उस समय भी दिगम्बराचार्यों ने धर्मोद्योत

१. OJI., p. 236.
२. वीर, वर्ष ७, पृ. २-११।
३. SSIJ. Pt. VI. pp. 61-62.
४. वीर वर्ष ५ पृ. २४९।

किया था। सन् १५३० के एक शिलालेख से प्रकट है कि श्रीरंग नगर का शासक विधर्मी हो गया था उसे जैन साधु विद्यानन्दि ने पुनः जैन धर्म में दीक्षित किया था।[१]

दिगम्बर मुनि श्री विद्यानन्दि – इसी शिलालेख से यह भी प्रकट है कि "इन मुनिराज ने नारायण पट्टन के राजा नंददेव की सभा में नंदनमल्ल भट्ट को जीता, सातवेन्द्र राज केशरीवर्मा की सभा में वाद में विजय पाकर "वादी" विरुद्ध पाया, सालुवदेव राजा की सभा में महान विजय पाई, बिलिगे के राजा नरसिंह की सभा में जैन धर्म का महात्म्य प्रकट किया कारकल नगर के शासक भैरव राजा की सभा में जैन धर्म का प्रभाव विस्तारा, राजा कृष्णराय की राजसभा में विजयी हुए, कोपन व अन्य तीर्थों पर महान उत्सव कराये, श्रवणबेलगोल के श्री गोम्मटस्वामी के चरणों के निकट आपने अमृत की वर्षा के समान योगाभ्यास का सिद्धान्त मुनियों को प्रकट किया, जिरसप्पा में प्रसिद्ध हुये। उनकी आज्ञानुसार श्रीवरदेव राजा ने कल्याण पूजा कराई और वह संगी राजा और पद्मपुत्र कृष्णदेव से पूज्य थे।"[२] वह एक प्रतिभाशाली साधु थे और उनके अनेक शिष्य दिगम्बर मुनिगण थे।

सारांशतः दक्षिण भारत के पुरातत्व से वहाँ दिगम्बर मुनियों का प्रभावशाली अस्तित्व एक प्राचीन काल से बराबर सिद्ध होता है। इस प्रकार भारत भर का पुरातत्व दिगम्बर जैन मुनियों के महान उत्कर्ष का द्योतक है।

---

१. जैध, पृ.७० व DG

२. मजैस्मा, पृ. ३२०–३२१।

[२४] विदेशों में दिगम्बर मुनियों का विहार

'India had pre-eminently been the cradle of culture and it was from this country that other nations had understood even the rudiments of culture. For example, they were told, the Buddhistic missionaries and Jaina monks wentforth to Greece and Rome and to places as far as Norwary and had spread their culture.'[1]

—Prof. M.S.Ramaswamy Iyengar

जैन पुराणों के कथन से स्पष्ट है कि तीर्थंकरों और श्रमणों का विहार समस्त आर्यखंड में हुआ था। वर्तमान की जानी हुई दुनिया का समावेश आर्यखंड में हो जाता है।[२] इसलिये यह मानना ठीक है कि अमेरिका, यूरोप, एशिया आदि देशों में एक समय दिगम्बर धर्म प्रचलित था और वहां दिगम्बर मुनियों का विहार होता था। आधुनिक विद्वान् भी इस बात को प्रकट करते हैं कि बौद्ध और जैन भिक्षुगण यूनान, रोम और नारवे तक धर्म प्रचार करते हुये पहुंचे थे।

किन्तु जैनपुराणों के वर्णन पर विशेष ध्यान न देकर यदि ऐतिहासिक प्रमाणों पर ध्यान दिया जाय, तो भी यह प्रकट होता है कि दिगम्बर मुनि विदेशों में अपने धर्म का प्रचार करने को पहुंचे थे। भगवान् महावीर के विहार के विषय में कहा गया है कि वे आकनीय, वृकार्थप, वाल्हीक, यवनश्रुति, गाँधार क्वाथतोय, ताण और कार्ण देशों में भी धर्म प्रचार करते हुये पहुँचे थे।[३] ये देश भारतवर्ष के बाहर ही प्रकट होते हैं। आकनीय संभवतः आकसीनिया (Oxiania) है। यवनश्रुति यूनान अथवा पारस्य का द्योतक है। बाल्हीक बल्ख (Balkh) है। गाँधार कंधार है। क्वाथतोय रेड-सी (Red Sea) के निकट के देश हो सकते हैं। तार्ण-कार्ण तूरान आदि प्रतीत होते हैं।[४] इस दशा में कंधार यूनान, मिश्र आदि देशों में भगवान् का विहार हुआ मानना ठीक है।[५]

सिकन्दर महान् के साथ दिगम्बर मुनि कल्याण यूनान के लिये यहाँ से प्रस्थानित हो गये थे और एक अन्य दिगम्बराचार्य यूनान धर्म प्रचारार्थ गये थे, यह पहले लिखा जा चुका है। यूनानी लेखकों के कथन से बैक्ट्रिया (Bactria)[1] और

---

१. The "Hindu" of 25th July 1919 & JG.XV.27
२. भपा., १५६-१५७।
३. हरिवंशपुराण, सर्ग ३, श्लो.३"७।
४. वीर, वर्ष १ अंक ७।
५. संजैइ., भा २, पृ.१०२-१०३।

इथ्यूपिया (Ethiopia)[१] नामक देशों में श्रमणों के विहार का पता चलता है। ये श्रमणगण दिगम्बर जैन ही थे, क्योंकि बौद्ध श्रमण तो सम्राट् अशोक के उपरान्त विदेशों में पहुँचे थे।

अफ्रीका के मिश्र और अबीसिनिया देशों में भी एक समय दिगम्बर मुनियों का विहार हुआ प्रकट होता है, क्योंकि वहाँ की प्राचीन मान्यता में दिगम्बरत्व को विशेष आदर मिला प्रमाणित है। मिश्र में नग्न मूर्तियाँ भी बनी थी और वहाँ की कुमारी सेंटमेरी (St. Mary) दिगम्बर साधु के वेष में रही थी। मालूम होता है कि रावण की लंका अफ्रीका के निकट ही थी और जैनपुराणों से यह प्रकट हो है कि वहाँ अनेक जैन मन्दिर और दिगम्बर मुनि थे।[३]

यूनान में दिगम्बर मुनियों के प्रचार का प्रभाव काफी हुआ प्रकट होता है। वहाँ के लोगों में जैन मान्यताओं का आदर हो गया था। यहाँ तक कि डायजिनेस (Diogenes) और संभवतः पैर्हो (Pyrrho of Elis) नामक यूनानी तत्ववेत्ता दिगम्बर वेष में रहे थे। पैर्हो ने दिगम्बर मुनियों के निकट शिक्षा ग्रहण की थी। यूनानियों ने नग्न मूर्तियाँ भी बनाई थी, जैसे कि लिखा जा चुका है।

जब यूनान और नारवे जैसे दूर के देशों में दिगम्बर मुनिगण पहुँचे थे, तो भला मध्य-एशिया के अरब ईरान और अफगानिस्तान आदि देशों में वे क्यों न पहुँचते।? सचमुच दिगम्बर मुनियों का विहार इन देशों में एक समय में हुआ था। मौर्य सम्राट सम्प्रति ने इन देशों में जैन श्रमणों का विहार कराया था, यह पहले ही लिखा जा चुका है। मालूम होता है कि दिगम्बर मुनि अपने इस प्रयास में सफल हुये थे, क्योंकि यह पता चलता है कि इस्लाम मज़हब की स्थापना के समय अधिकांश जैनी अरब छोड़कर दक्षिण भारत में आ बसे थे[५] तथा ह्वेनसांग के कथन से स्पष्ट है कि ईस्वी सातवीं तक दिगम्बर मुनिगण अफगानिस्तान में अपने धर्म का प्रचार करते रहेथे।[६]

दिगम्बर मुनियों के धर्मोपदेश का प्रभाव इस्लाम-मज़हब पर बहुत-कुछ पड़ा प्रतीत होता है। दिगम्बरत्व के सिद्धान्त का इस्लाम-मज़हब में मान्य होना इस बात का साबूत है। अरबी कवि और तत्ववेत्ता अबु-ल्-अला (Abu-L-Ala;

---

१. AI.p.104

२. AR.111.p.6 व जैन होस्टल मैगजीन, भाग ११, पृ.६।

३. भपा.,पृ.१६०-२०२।

४. N.J.Intro., p.2 & "Diogenes Laertius (IX 61 & 63) refers to the Gymnosophists and asserts that Pyrrho of Elis, the founder of pure Scepticism came under their influence and on his return to Elis imitated their habits of life."

-E.B.XII.753

५. AR.1X.284

६. हुभा., पृ.३७

ई. ९७३-१०५८) की रचनाओं में जैनत्व की काफी झलक मिलती है। अबु-ल्-अला शाकभोजी तो थे ही, परन्तु वह महात्मा गाँधी की तरह यह भी मानते थे कि एक अहिंसक को दूध नहीं पीना चाहिये। मधु का भी उन्होंने जैनों की तरह निषेध किया था। अहिंसा धर्म को पालने के लिये अबु-ल्-अला ने चमड़े के जूतों का पहनना भी बुरा समझा था और नग्न रहना वह बहुत अच्छा समझते थे। भारतीय साधुओं को अन्त समय अग्निचिता पर बैठकर शरीर को भस्म करते देखकर वह बड़े आश्चर्य में पड़ गये थे। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि अबु-ल्-अला पर दिगम्बर जैन धर्म का काफी प्रभाव पड़ा था और उन्होंने दिगम्बर मुनियों को सल्लेखना व्रत का पालन करते हुये देखा था।[1] वह अवश्य ही दिगम्बर मुनियों के संसर्ग में आये प्रतीत होते है। उनका अधिक समय बगदाद में व्यतीत हुआ था।

लंका (Ceylon) में जैन धर्म की गति प्राचीन काल से है। ईस्वी पूर्व चौथी शताब्दि में सिंहलनरेश पाण्डुकाभय ने वहाँ के राजनगर अनुरुद्धपुर में एक जैन मन्दिर और जैन मठ बनवाया था। निर्ग्रंथ साधु वहाँ पर निर्बाध धर्म प्रचार करते थे। इक्कीस राजाओं के राज्य तक वह जैन विहार और मठ वहाँ मौजूद रहे थे, किन्तु ई.पू.३८ में राजा वट्टगामिनी ने उनको नष्ट कराकर उनके स्थान पर बौद्ध विहार बनवाया था।[2] उस पर भी, दिगम्बर मुनियों ने जैन धर्म के प्राचीन केन्द्र लंका या सिंहलद्वीप को बिल्कुल ही नहीं छोड़ दिया था। मध्यकाल में मुनि यशः कीर्ति इतने प्रभावशाली हुये थे कि तत्कालीन सिंहल नरेश ने उनके पाद-पद्मों की अर्चना की थी।

सारांशतः यह प्रकट है कि दिगम्बर मुनियों का विहार विदेशो में भी हुआ था। भारतेतर जनता का भी उन्होंने कल्याण किया था।

---

१. जैध.पृ.४६६।

२. महावंश , AISJP. ३७।

[२५] मुसलमानी बादशाहत में दिगम्बर मुनि

"O son, the kingdom of India is full of different religions....It is incumbent on to the wipe all religions prejudices off the tablet of the heart; administer justice according to the ways of every religions."[1]

—Babar

मुसलमान और हिन्दुओं का पारस्परिक सम्बन्ध- ई.८वीं-१०वीं शताब्दि से अरब के मुसलमानों ने भारतवर्ष पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु कई शताब्दियों तक उनके पैर यहाँ पर नहीं जमे थे। वह लूटमार करके जो मिला उसे लेकर अपने देश को लौट जाते थे। इन प्रारंभिक आक्रमणों में भारत के स्त्री-पुरुषों की एक बड़ी संख्या में हत्या हुई थी और उनके धर्म मन्दिर और मूर्तियाँ भी खूब तोड़ी गई थीं। तैमूरलंग ने जिस रोज दिल्ली फतह की उस रोज उसने एक लाख भारतीय कैदियों को तोपदम करवा दिया।[2] सचमुच प्रारम्भ में मुसलमान आक्रमणकारियों ने हिन्दुस्तान को बेतरह तबाह किया, किन्तु जब उनके यहाँ पर पैर जम गये और वे यहाँ रहने लगे तो उन्होंने हिन्दुस्तान का होकर रहना ठीक समझा यहाँ की प्रजा को संतोषित रखना उन्होंने अपना मुख्य कर्त्तव्य माना। बाबर ने अपने पुत्र हुमायूं को यही शिक्षा दी कि "भारत में अनेक मत-मतान्तर है, इसलिये अपने हृदय को धार्मिक पक्षपात से साफ रख और प्रत्येक धर्म के रिवाजों के मुताबिक इन्साफ कर।" इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं और मुसलमानों में परस्पर विश्वास और प्रेम का बीज पड़ गया। जैनों के विषय में डा.हेल्मुथ वॉन ग्लाजेनाप कहते हैं कि "मुसलमानों और जैनों के मध्य हमेशा वैर भरा सम्बन्ध नहीं था (बल्कि) मुसलमानों और जैनों के बीच मित्रता का भी सम्बन्ध रहा है।[3]" इसी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध का ही यह परिणाम था कि दिगम्बर मुनि मुसलमान बादशाहों के राज्य में भी अपने धर्म का पालन कर सके थे।

ईसवी दसवीं शताब्दि में जब अरब का सौदागर सुलेमान यहाँ आया तो उसे दिगम्बर साधु बहुत संख्या में मिले थे, यह पहले लिखा जा चुका है। गर्ज यह है कि मुसलमानों ने आते ही यहाँ पर नंगे दरवेशों को देखा। महमूद गजनी (१००१)

१.OIMS. Vol. XVIII.p.116

२.Elliot.111.p.436: "100000 in fidels, impious idolators were on that day slain."
—Mulfuzat-i-Timuri

३.D.J.,p.66 & जैध., पृ.६८।

और मुहम्मद गौरी (११७५)ने अनेक बार भारत पर आक्रमण किये किन्तु वह यहाँ ठहरे नहीं। ठहरे तो यहाँ पर "गुलाम खानदान" के सुल्तान और उन्हीं से भारत पर मुसलमानी बादशाहत की शुरूआत हुई समझना चाहिए। उन्होंने सन् १२०६ से १२९० ई. तक राज्य किया और उनके बाद खिलजी, तुगलक और लोदी वंशों के बादशाहों ने सन् १२९० से १५२६ ई. तक यहाँ शासन किया।[१]

मुहम्मद गौरी और दिगम्बर मुनि – इन बादशाहों के जमाने में दिगम्बर मुनिगण निर्बाध धर्मप्रचार करते रहे थे, यह बात जैन एवं अन्य श्रोतों से स्पष्ट है। गुलाम बादशाहों के पहले ही दिगम्बर मुनि, सुल्तान महमूद का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर चुके थे।[२] सुल्तान मुहम्मद गौरी के सम्बन्ध में तो यह कहा जाता है कि उसकी बेगम ने दिगम्बर आचार्य के दर्शन किये थे।[३] इससे स्पष्ट है कि उस समय दिगम्बर मुनि इतने प्रभावशाली थे कि वे विदेशी आक्रमणकारियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ थे।

गुलाम बादशाहत में दिगम्बर मुनि – गुलाम बादशाहत के जमाने में भी दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व मिलता है। मूल संघ सेनगण में उस समय श्री दुर्लभसेनाचार्य, श्री धरसेनाचार्य, श्रीषेण, श्री लक्ष्मीसेन, श्री सोमसेन, प्रभृत मुनिपुंगव शोभा को पा रहे थे। श्री दुर्लभसेनाचार्य ने अंग, कलिंग, कश्मीर, नेपाल, द्रविड़, गौड़, केरल, तैलंग, उड्र, आदि देशों में विहार करके विधर्मी आचार्यों को हतप्रभ किया था।[४]इसी समय में श्रीकाष्ठासंघ में मुनिश्रेष्ठ विजयचन्द्र तथा मुनि यशःकीर्ति, अभय कीर्ति, महासेन कुन्दकीर्ति, त्रिभुवनचन्द्र, रामसेन आदि हुये प्रतीत होते हैं।[५]ग्वालियर में श्री अकलंकचंद्र जी दिगम्बरवेष में स. १२५७ तक रहे थे।[६]

---

१. Oxford pp. 129-130.

२. "अलकेश्वरपुरादभरवरच्छनगरे राजाधिराजपरमेश्वर यवन रायशिरोमणिमुहम्मद बादशाह सुरत्राण समस्यापूर्णादखिल दृष्टिपातेनाष्टादश वर्षत्रयप्राप्तदेवलोकश्रीश्रुतवीरस्वामिनाम।"

अर्थात् –"अलकेश्वरपुर के भरोचनगर में राजेश्वर स्वामी यवन राजाओं में श्रेष्ठ मुहम्मद बादशाह के त्राण समस्या की पूर्ति से तथा दृष्ट होने से १८ वर्ष की अवस्था में स्वर्ग गये हुए श्री श्रुतवीर स्वामी हुए। –जैसिभा, १ कि २-३पृ. ३५

३. IA. Vol. XXI.p.361...Wife of Muhammad Ghori desired to see the chief of the Digambaras.

४. जैसिभा., भा. १, किं. २-३, पृ.३४।

५. Ibid.किरण ४, पृ. १०।

६. वृजेश. पृ. १०।

खिलजी, तुगलक और लोदी बादशाहों के राज्य और दिगम्बर मुनि- खिलजी तुगलक और लोदी बादशाहों के राज्यकाल में भी अनेक दिगम्बर मुनि हुये थे। काष्ठासंघ में श्री कुमारसेन, प्रतापसेन, महातपस्वी महावसेन आदि मुनिगण प्रसिद्ध थे। महातपस्वी श्री माहवसेन अथवा महासेन के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने खिलजी बादशाह अलाउद्दीन से सम्मान पाया था।[१] इतिहास से प्रकट है कि अलाउद्दीन धर्म की परवाह कुछ नहीं करता था। उस पर राघो और चेतक नामक ब्रह्मणों ने उसको और भी बरगला रखा था। एक बार उन्हीं दोनों ने बादशाह को दिगम्बर मुनियों के विरूद्ध कहा -सुना और उनकी बात मानकर बादशाह ने जैनियों से अपने गुरु को राजदरबार में उपस्थित करने के लिये कहा। जैनियों ने नियत काल में आचार्य माहवसेन को दिल्ली में उपस्थित पाया। उनका विहार दक्षिण की ओर से वहाँ हुआ था।

सुल्तान अलाउद्दीन और दिगम्बराचार्य - आचार्य महावसेन दिल्ली के बाहर श्मशान में ध्यानारूढ़ थे कि वहाँ एक सर्पदंश से अचेत सेठ पुत्र दाह कर्म के लिये लाया गया। आचार्य महाराज ने उपकार भाव से उसका विष-प्रभाव अपने योग-बल से दूर कर दिया। इस पर उनकी प्रसिद्धि सारे शहर में हो गयी। बादशाह अलाउद्दीन ने भी यह सुना और उसने उन दिगम्बराचार्य के दर्शन किये। बादशाह के राजदरबार में उनका शास्त्रार्थ भी षट्दर्शनवादियों से हुआ जिसमें उनकी विजय रही। उस दिन महासेन स्वामी ने पुनः एक बार स्याद्वाद की अखण्ड ध्वजा भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली में आरोपित कर दी थी।[२]

इन्हीं दिगम्बराचार्य की शिष्य परम्परा में विजयसेन, नयसेन, श्रेयाँससेन, अनन्तकीर्ति, कमलकीर्ति, क्षेमकीर्ति, श्रीहेमकीर्ति, कुमारसेन, हेमचंद्र, पद्मनन्दि, यशःकीर्ति, त्रिभुवनकीर्ति, सहस्रकीर्ति, महीचन्द्र आदि दिगम्बर मुनि हुये थे। इनमें कमलकीर्ति जी विशेष प्रख्यात थे।[३]

सुल्तान अलाउद्दीन का अपरनाम मुहम्मदशाह था।[४] सन् १५३० ई. के एक शिलालेख में मुनि विद्यानन्दि के गुरूपरम्परीण श्री आचार्य सिंहनन्दि का उल्लेख है। वह बड़े नैयायिक थे और उन्होंने दिल्ली के बादशाह महमूद सुरित्राण की सभा

---

१. (the Jain) Acharyas by their character attainments and scholarship commanded the respect of even Muhammadan Sovereegns like Allauddin and Auranga Padusha (Aurangazeb)

२. जैसि., भा. १, प्र. १०९

३. Ibid.

४. Oxford. p. 130

में बौद्ध व अन्यों को वाद में हराया था। यह बात उक्त शिलालेख में है। यह उल्लेख बादशाह अलाउद्दीन के सम्बन्ध में हुआ प्रतिभाषित होता है।[१]

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि बादशाह अलाउद्दीन के निकट दिगम्बर मुनियों को विशेष सम्मान प्राप्त हुआ था। अलाउद्दीन दिल्ली के श्री पूर्णचन्द्र दिगम्बर जैन श्रावक की भी इज्जत करता था[२] और उसने श्वेताम्बराचार्य श्री रामचन्द्रसूरि को कई भेटें अपर्ण की थीं।[३] सच बात तो यह है कि अलाउद्दीन के निकट धर्म का महत्व न कुछ था। उसे अपने राज्य का ही एकमात्र ध्यान था – उसके सामने वह "शरीअत" को भी कुछ न समझता था। एक बार उसने नव मुस्लिमों को भी तोपदम कर दिया।[४] हिन्दुओं के प्रति वह ज्यादा उदार नहीं था और जैन लेखकों ने उसे "खूनी" लिखा है। किन्तु अलाउद्दीन में "मनुष्यत्व" था। उसी के बल पर "वह अपनी प्रजा को प्रसन्न रख सका था और विद्वानों का सम्मान करने में सफल हुआ था।[५]

तत्कालीन अन्य दिगम्बर मुनिगण – सं. १४६२ में ग्वालियर में महामुनि श्री गुणकीर्ति जी प्रसिद्ध थे।[६] मेदपाद देश में सं.१५३६ में मुनि श्री रामसेन जी के प्रशिष्य मुनि सोमकीर्ति जी विद्यमान थे। और उन्होंने "यशोधर चरित" की रचना की थी।[७] श्री "भद्रबाहु चरित" के कर्त्ता मुनि रत्नन्दि भी इसी समय हुये थे। वस्तुतः उस समय अनेक मुनिजन अपने दिगम्बर वेष में इस देश में विचर रहे थे।

---

१. मजैस्मा., पृ. ३२२ – "सुल्तान– शब्द को जैनाचार्यों ने सुरित्राण लिखकर बादशाहों को मुनिरक्षक प्रकट किया है।

२. जैहि., भा. १५, पृ. १३२।

३. जैध., पृ. ६८।

४. He (Allauddin) was by nature cruel and implacable. and his only care. was the welfare of his kingdom. No consideration for religion (Islam) .... ever troubled him. He disregarded the provisions of the Law ...... He now gave commands that the race of "New–Muslims". Should be destroyed. ....

– Tarikh–i–Firozshahi – Elliot. III.p. 25

5. सुल्तान अलाउद्दीन ने शराब की बिक्री रुकवा दी थी। नाज, कपड़ा आदि बेहद सस्ते थे। उसके राज में राजभक्ति की बाहुल्यता थी। विद्वान काफी हुए थे।

(Without the partonange of the Sultan many learned and great men flourished). – Elliot. III. 206

६. जैहि., भा. १५ पृ. २२५

७. "नदीतटाख्यगच्छे वंशे श्रीरामसेनदेवस्य जातो गुणार्णवैक श्रीमांश्च भीमसेनेति। निर्मितं तस्य शिष्येण श्रीयशोधर संज्ञिक श्री सोमकीर्ति मुनिनानिशोदयाधीपतांबुधावर्षे षट् त्रिंशशद्येतिथिपरिगणनायुक्तं संवत्सरेति पंचम्यां पौषकृष्णदिनकर दिवसे चोत्तरास्थइ चंद्रे इत्यादि।"

लोदी सिकन्दर निजाम खाँ और दिगम्बराचार्य विशालकीर्ति – लोदी खानदान में सिकन्दर (निजाम खाँ) बादशाह सन् १४८९ में राजसिंहासन पर बैठा था।[१] हूमसमठ के गुरु श्री विशालकीर्ति भी लगभग इसी समय हुये थे। उनके विषय में एक शिलालेख में पाया जाता है कि उन्होंने सिकन्दर बादशाह के समक्ष वाद किया था।[२] वह वाद लोदी सिकन्दर के दरबार में हुआ प्रतीत होता है। अतः यह स्पष्ट है कि दिगम्बर मुनि तब भी इतने प्रभावशाली थे कि वे बादशाहों के दरबार में भी पहुंच जाते थे।

तत्कालीन विदेशी यात्रियों ने दिगम्बर साधुओं को देखा था – जैन साहित्य के उपर्युक्त उल्लेखों की पुष्टि अजैन श्रोत से भी होती है। विदेशी यात्रियों के कथन से यह स्पष्ट है कि गुलाम से लोदी राज्यकाल तक दिगम्बर जैन मुनि इस देश में विहार और धर्म प्रचार करते रहे थे। देखिये, तेरहवीं शताब्दी में यूरोपीय यात्री मार्को पोलो (Morco Polo) जब भारत में आया तो उसे ये दिगम्बर साधु मिले। उनके विषय में वह लिखता है कि[३] –

"कतिपय योगी मादरजात नंगे घूमते थे, क्योंकि जैसे उन्होंने कहा, वे इस दुनिया में नंगे आये हैं और उन्हें इस दुनिया की कोई चीज नहीं चाहिये। खासकर उन्होंने यह कहा कि हमें शरीर सम्बन्धी किसी भी पाप का भान नहीं है और इसलिये हमें अपनी नंगी दशा पर शर्म नहीं आती है, उसी तरह जिस तरह तुम अपना मुंह और हाथ नंगे रखने में नहीं शरमाते हो, जिन्हें शरीर के पापों का भान है। वह अच्छा करते हो कि शर्म के मारे अपनी नग्नता ढक लेते हो।"

इस प्रकार की मान्यता दिगम्बर मुनियों की है। मार्को पोलो का समागम उन्हीं से हुआ प्रतीत होता है। वह उनके संसर्ग में आये हुये लोगों में अहिंसा धर्म की बाहुल्यता प्रकट करता है। यहां तक कि वह साग–सब्जी तक ग्रहण नहीं करते थे। सूखे पत्तों पर रखकर भोजन करते थे। वे इन सब में जीव–तत्व का होना मानते थे। हैवेल सा. गुजरात के जैनों में इन मान्यताओं का होना प्रकट करते हैं।[४] किन्तु वस्तुतः गुजरात ही

---

१. Oxford, p. 130

२. मजैस्मा., पृ. १६३ व ३२२।

३. 'Some Yogis went stark naked, because, as they sand, they hed come naked into the world and desired nothing that was of this world. Moreover they declared, "We have no sin of the flesh to be conscious of and therefore, we are not ashamed of our nakedness any more than you are to show your hand or face. You who are conscious of the sins of the flesh do well to have shame and to cover your nakedness."

– Yule's Morco Polo II. 366 & HARI.,P. 364

४. Morco Polo also noticed the customs which the orthodox Jaina community of Gujarat maintains to the present day. They do not kill an animal on any account not even a fly or flea or a louse or anything in fact that has life : for they say, these have all souls and it would be sin to do so.

– Yule's Morco Polo, II 366 & HARI. p. 365.

क्या प्रत्येक देश का जैनी इन मान्यताओं का अनुयायी मिलेगा। अतः इसमें सन्देह नहीं कि मार्को पोलो को जो नंगे-साधु मिले थे, वह जैन साधु ही थे।

अलबेरुनी के आधार पर रशीदुद्दीन नामक मुसलमान लेखक ने लिखा है कि "मालाबार के निवासी सब ही श्रमण हैं और मूर्तियों की पूजा करते हैं। समुद्र किनारे के सिन्दबूर, फकनूर, मञ्जरूर, हिली, सदर्स, जंगलि और कुलम नामक नगरों और देशों के निवासी भी "श्रमण" हैं।[१] यह लिखा ही जा चुका है कि दिगम्बर मुनि श्रमण के नाम से भी विख्यात हैं। अतः कहना होगा कि रशीदुद्दीन के अनुसार मालाबार आदि देशों के निवासी दिगम्बर जैन ही थे और तब उनमें दिगम्बर मुनियों का होना स्वाभाविक है।

मुगल साम्राज्य में दिगम्बर मुनि – तदोपरान्त सन् १५२६ से १७६१ ई. तक भारत पर मुगल और सूरवंशों के राजाओं ने राज्य किया था।[२] उनके समय में भी दिगम्बर मुनियों का बाहुल्य था।

पाटोदी (जयपुर) के मन्दिर के वि.सं. १५७५ की ग्रंथ प्रशस्ति से प्रकट है कि उस समय श्रीचन्द्र नामक मुनि विद्यमान थे।[३] लखनऊ चौक के जैन मन्दिर में विराजमान एक प्राचीन गुटका के पत्र १६३ पर दी हुई प्रशस्ति से निर्ग्रंथाचार्य श्री माणिक्यचन्द्रदेव का अस्तित्व सं. १६११ में प्रमाणित है।[४] "भावत्रिभंगी" की प्रशस्ति से सं. १६०५ में मुनि क्षेमकीर्ति का होना सिद्ध है।[५] सचमुच बादशाह बाबर, हुमायू और शेरशाह के समय में दिगम्बर मुनियों का विहार सारे देश में होता था। मालूम होता है कि उन्हीं का प्रभाव मुसलमान दरवेशों पर पड़ा था; जिसके फलस्वरूप वे नग्न रहने लगे थे। मुगल बादशाह शाहजहाँ के समय में वे एक बड़ी संख्या में मौजूद थे।[६] शेरशाह के समय में दिगम्बर मुनियों का निर्बाध विहार होता था; यह बात शेरशाह के अफसर मलिक मुहम्मद जायसी के प्रसिद्ध हिन्दी काव्य "पद्मावत" (२।६०) के निम्नलिखित पद्य से स्पष्ट है –

"कोई ब्रह्मचारज पन्थ लागे।
कोई सुदिगंबर आछा लागे।"

---

१. Rashiuddin from Al-Biruni writes :"The whole country (of Malabar) produces the pan... The people are all samanis and worship idols of the cities of the shore the first is Sindabur the Faknur then the country of Sadarsa then Jangli, then Kulam. The men of all these countries are Samanis". — Elliot Vol. I,p. 68

इलियट सा. ने इन श्रमणों को बौद्ध लिखा है, किन्तु उस समय दक्षिण भारत में बौद्धों का होना असम्भव है। श्रमण शब्द बौद्धभिक्षु के अतिरिक्त दिगम्बर साधुओं के लिये भी व्यवहृत होता है।

२. Oxfod.,p. 151.

३. "श्री संघाचार्यसत्कवि शिष्येण श्रीचन्द्रमुनि।" – जैमि., वर्ष २२, अंक ४५, पृ. ६९६

४. सं. १६११ चैत्र सु. २ मूलसंघे भ. विद्यानंदितत्पट्टे श्री कल्याणकीर्ति तत्पट्टे नैर्ग्रंथाचार्य तपोबललब्धातिशय श्री माणिकचन्द्रदेवाः।" – जैमि., वर्ष २२, अंक ४८, पृ ७४०

५. "सं. १६०५ वर्षे तत्शिष्य सर्वगुणविराजमान मंडलाचार्य मुनि श्री क्षेमकीर्तिदेवा।"

६. Bernier, pp. 315–318

अकबर और दिगम्बर मुनि – बादशाह अकबर जलालुद्दीन स्वयं जैनों का परम भक्त था और यदि हम उस समय के ईसाई लेखकों के कथन को मान्यता दें तो कह सकते हैं कि वह जैन धर्म में दीक्षित हो गया था। निस्सन्देह श्वेताम्बराचार्य श्री हीरविजयसूरि आदि का प्रभाव उस पर विशेष पड़ा था।[1] इस दशा में अकबर दिगम्बर साधुओं का विरोधी नहीं हो सकता बल्कि अबुलफजल ने "आईन–ए–अकबरी" भाग ३, पृष्ठ ८७ में उनका उल्लेख स्पष्ट शब्दों में किया है और लिखा है कि वे नंगे रहते हैं।

वैराट का दिगम्बर संघ– वैराट नगर में उस समय दिगम्बर मुनियों का संघ विद्यमान था। वहाँ पर साक्षात् मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति के लिये यथाजात जिनलिंग शोभा पा रहा था। यह नगर बड़ा समृद्धिशाली था और उस पर अकबर शासन करता था। कवि राजमल्ल ने "लाटीसंहिता" की रचना यहीं के जैन मन्दिर में की थी।[2] उन्होंने अपने "जम्बूस्वामी चरित" में लिखा है कि भटानियाकोल के निवासी साहु टोडर जब तीर्थयात्रा करते हुये मथुरा पहुंचे तो उन्होंने वहाँ पर ५१४ दिगम्बर मुनियों के समाधि सूचक प्राचीन स्तूपों को जीर्ण–शीर्ण दशा में देखा। उन्होंने उनका जीर्णोद्धार करा दिया और उनकी प्रतिष्ठा शुभ तिथि–वार को चतुर्विधसंघ – (१) मुनि, (२) आर्यिका, (३) श्रावक, (५) श्राविका – एकत्र करके कराई थी।[3] इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि बादशाह अकबर के राज्य में अनेक दिगम्बर मुनि विद्यमान् थे और उनका निर्बाध विहार सारे देश में होता था।

बादशाह औरंगजेब ने दिगम्बर मुनि का सम्मान किया था– अकबर के बाद मुगल खानदान में जितने भी शासक हुये उन सब के ही शासनकाल में दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व मिलता है। औरंगजेब सदृश कट्टर बादशाह को भी

---

१. पादरी पिन्हेरो (Pinheiro) ने लिखा है कि अकबर जैन धर्मानुयायी है।
[He (Akbar) follows the sect of the Jainas] – सूस., पृ. १७१–३९८
२. वीर, वर्ष ३, पृ. व लाटी., पृ. ११।
"श्रीमड्डिडीरपिण्डोपमितमित्तनभः पाण्डुराखण्डकोत्तर्या,
कृष्टं ब्रह्माण्डकाण्डं निजभुजयशसा मण्डपाडम्बरोऽस्मिन्।
येनासौ पातिसाहिः भतपदकबर प्रख्यविख्यातकीर्ति –
र्जीयाद् भोक्तानाथ नाथः प्रभुरीति नगरस्यायस्य वैराटनाम्नः ।।६।।
जैनो धर्मोनवद्यो जगति विजयतेऽद्यापि सन्तानवर्ती
साक्षाद्दिगम्बरास्ते यतथ इह यथा जातरूपांकलक्षः।
तस्मै तेभ्यो नमोस्तु त्रि समयनियतं प्रोल्लसत्प्रसादा –
दर्वागावर्द्धमानं प्रतिधविरहितो वर्तते मोक्षमार्गः ।।६३।।
३. अनेकान्त, मा. १, पृ. १३९–१४१ "चतुर्विधमहासंघ समाहूयात्रधीमता।"

दिगम्बर मुनियों ने प्रभावित कर लिया था, यहाँ तक कि औरंगजेब ने भी उनका सम्मान किया था।[१] उस समय के किन्हीं मुनि महाराजों का उल्लेख इस प्रकार है –

तत्कालीन दिगम्बर मुनि – दिगम्बर मुनि श्री सकलचन्द्र जी सं. १६६७ में विद्यमान थे। उनके एक शिष्य ने "भक्तामर कथा" की रचना की थी।[२] सं. १६८० का लिखा हुआ एक गुटका दिगम्बर जैन पंचायती बड़ा मन्दिर (मैनपुरी) के शास्त्र भण्डार में विराजमान है। उसमें श्री दिगम्बर मुनि महेन्द्रसागर का उल्लेख उस समय में मिलता है।[३] संवत १७११ में अकबराबाद में मुनि श्री वैराग्यसेन ने "आठकर्म की १४८ प्रकृतियों का विचार" चर्चा ग्रंथ लिखा था।[४] सं. १७८३ में गुरु देवेन्द्रकीर्ति का अस्तित्व ढूंढारिदेश में मिलता है। वहाँ पर दिगम्बर मुनियों का प्राचीन आवास था।[५] सं. १७५७ में कुण्डलपुर में मुनि श्री गुणसागर और यशःकीर्ति थे। उनके शिष्य ने महाराजा छत्रसाल की विशेष सहायता की थी।[६] कवि लालमणि ने औरंगजेब के राज्य में "अजितपुराण" की रचना की थी। उससे काष्ठासंघ में श्री धर्मसेन, भावसेन, सहस्त्रकीर्ति, गुणकीर्ति, यशःकीर्ति, जिनचन्द्र, श्रुतकीर्ति आदि दिगम्बर मुनियों का पता चलता है।[७] सं. १७९९ में कवि खुशालदास जी ने एक मुनि महेन्द्रकीर्ति जी का उल्लेख किया है।[८] मुनि धर्मचन्द्र, मुनि विश्वसेन, मुनि

---

१. SSIJ. Pt. II.p. 132 जैन कवियों ने औरंगजेब की प्रशंसा ही की है –
"औरंगसाह बलीको राज, पायो कविजन परम समाज।
चक्रवर्तिसम जगमें भयो, फेरत आदि उदधि लों गयों।।
जा के राज परम सुख पाय, करी कथा हम जिन गुन गाय।"
– कवि विनोदीलाल

२. जैप्र., पृ. १४३।

३. "गुरु मुनि माहिदसेनि नमिजी, भनत भगवतीदासु।" – वीर जिनेन्द्र गीत.
"मुनि माहेन्द्रसेनि गुरु तिंह जुग चरन पसाइ।" – ढमालु राजमती –नेमिसुर
"मुणि माहेन्द्रसेन इह निसि प्रणामा तासो।
धानि कपस्थलि नी कर भनत भगौती दासो।।" – रजानी ढाल

४. "सवत् १७११ वर्षे फाल्गुण सुदि १३ सोमे लिखित मुनि श्री वैरागयसागरेण।"

५. देसदू ढाहड़जाणू सार मूलसङ्ग भविजान सुर्ग सिवकार बषान्यूम्।
आगे भये रिषीस गुणाकर तिनि इह ठान्यूम्।।
कुन्दकुन्द मुनिराइ जिहा धर्म आमौहि; कतैकिलकाल वितीत भए मुनिवत अधिकाई।
देवेन्द्रकीर्ति आब। चितधारि ताही विर्षे। लक्ष्मीगुदास पण्डित तहाँ विनुगुरु अति सैरषै।।
सतारै तियासिये पोस सुकुल लिथिजानि।" – पद्मपुराण भाषा

६. "तस्यान्वये संजातो ज्ञानवाल गुणसागरः।
भवस्वी संध सपूज्यो यशः कीर्तिर्महानुमनिः।।"
– दिजैडा., पृ. २५९

७. जैहि., १२–१९४ "श्रीमच्छीकाष्ठासंघे मुणिगणगणनात् दिगवस्त्रयुष्टे।।"

८. "भट्टारक पद सौंपे जास मुनि महेन्द्रकीर्ति पट तास।" – उत्तरपुराण भाषा.

श्री भूषण का भी इसी समय पता चलता है।[१] सारांशतः यदि जैन साहित्य और मूर्ति लेखों का और भी परिशीलन और अध्ययन किया जाय तो अन्य अनेक मुनिगण का परिचय उस समय में मिलेगा।

आगरा में नग्न दिगम्बर मुनि – कविवर बनारसीदास जी बादशाह शाहजहाँ के कृपापात्रों में से थे। उनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार जब कविवर आगरा में थे, तब वहाँ पर दो नग्न मुनियों का आगमन हुआ। सब ही लोग उनके दर्शन–वन्दन के लिये आते–जाते थे। कविवर परीक्षा प्रधानी थे। उन्होंने उन मुनियों की परीक्षा की थी।[२] इस उल्लेख से उस समय आगरा में दिगम्बर मुनियों का निर्बाध विहार हुआ प्रकट है।

फ्रेंच यात्री, डा. बर्नियर और दिगम्बर साधु – विदेशी विद्वानों की साक्षी भी उक्त वक्तव्य की पोषक है। बादशाह शाहजहाँ और औरंगजेब के शासनकाल में फ्रांस से एक यात्री डा. बर्नियर (Dr. Bernier) नामक आया था। वह सारे भारत में घूमा था और उसका समागम दिगम्बर मुनियों से भी हुआ था। उनके विषय में वह लिखता है कि[३] –

"मुझे अक्सर साधारणतः किसी राजा के राज्य में इन नंगे फकीरों के समूह मिले थे, जो देखने में भयानक थे। उसी दशा में मैंने उन्हें मादरज़ात नंगा बड़े–बड़े शहरों में चलते–फिरते देखा था। मर्द, औरत और लड़कियाँ उनको ओर वैसे ही देखते थे जैसे कि कोई साधु जब हमारे देश की गलियों में होकर निकलता है, तब हम लोग देखते हैं। औरतें अक्सर उनके लिये बड़ी विनय से भिक्षा लाती थीं। उनका विश्वास था कि वे पवित्र पुरुष हैं और साधारण मनुष्यों से अधिक शीलवान और धर्मात्मा हैं।"

टावरनियर आदि अन्य विदेशियों ने भी उन दिगम्बर मुनियों को इसी रूप में देखा था। इस प्रकार इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि मुसलमान बादशाहों ने भारत की इस प्राचीन प्रथा, कि साधु नंगे रहें और नंगे ही सर्वत्र विहार करें, को सम्माननीय दृष्टि से देखा था। यहाँ तक कि कतिपय दिगम्बर जैनाचार्यों का उन्होंने खूब

---

१. श्रीमूलसंघेय भारतीये गच्छे बलात्कारगणेतिरम्ये। आसीन्सुदेवेन्द्रयशोगुनीन्द्रः सधर्मधारी मुनि धर्मचन्द्र।" – श्री जिनसहस्रनाम.

श्री काष्ठासंघे जिनराजसेनस्तदन्वये श्री मुनि विश्वसेन।

विद्याविभूषैः मुनिराट् बभूव श्री भूषणो वादिगजेन्द्र सिंहः।। – पंचकल्याणकपाठ.

२. बवि., चरित्र, पृ. ९७–१०२।

३. "I have often met generally in the territory of some Raja bands of these naked fakirs hideous to behold. In this trim I have seen toem shamelessly walk stark naked, through a large town men women and girls looking at them without any more emotion than may be created when a hermit passes through our streets. Females would often bring them alms with much devotion, doubtless believing that they were holy personages, more chaste and discreet than other men. Bernier – p.317

आदर-सत्कार किया था। तत्कालीन हिन्दू कवि सुन्दरदास जी भी अपने "सर्वांगयोग" नामक ग्रंथ में इन मुनियों का उल्लेख निम्न शब्दों में करते हैं [1] -

"केचित् कर्मस्थापहिं जैना, केश लुंचाइ करहिं अति फैना।"

केशलुंचन क्रिया दिगम्बर मुनियों का एक खास मूलगुण है, यह लिखा भी जा चुका है। इससे तथा सं. १८७० में हुये कवि लालजीत जी के निम्न उल्लेख से तत्कालीन दिगम्बर मुनियों का अपने मूलगुणों को पालन करने में पूर्णतः दत्तचित्त रहना प्रकट है -

"धारैं दिगम्बर रूप भूप सब पद को परसैं;
हिये परम वैराग्य मोक्षमारग को दरसैं।
जे भवि सेवें चरन तिन्हें सम्यक् दरसावैं;
करै आप कल्याण सुबारहभावन भावैं।।
पंच महाव्रत धरैं वरैं शिवसुन्दर नारी;
निज अनुभौ रसलीन परम-पद के सुविचारी।
दशलक्षण निजधर्म गहैं रत्नत्रयधारी।।
ऐसे श्री मुनिराज चरन पर जग-बलिहारी।।"

---

१. फाह्यान भूमिका।

[२६] ब्रिटिश शासनकाल में दिगम्बर मुनि

"All shall alike enjoy the equal and impartial protection of the Law, and we do strictly charge and enjoin all those who may be in authority under us that they abstain from all interferance with the religious belief or worship of any of our subjects on pain of our highest displeasure."

— Queen Victoria[1]

महारानी विक्टोरिया ने अपनी १ नवम्बर सन् १८५८ की घोषणा में यह बात स्पष्ट कर दी है कि ब्रिटिश-शासन की छत्रछाया में प्रत्येक जाति और धर्म के अनुयायी को अपनी परम्परागत धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं को पालन करने में पूर्ण स्वाधीनता होगी और कोई भी सरकारी कर्मचारी किसी के धर्म में हस्तक्षेप न करेगा। इस अवस्था में ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत दिगम्बर मुनियों को अपना धर्मपालन करना सुगम-साध्य होना चाहिये और वह प्रायः सुगम रहा है।

गत ब्रिटिश शासनकाल में हमें कई एक दिगम्बर मुनियों के होने का पता चलता है। सं. १८७० में ढाका शहर में श्री नरसिंह नामक मुनि के अस्तित्व का पता चलता है।[२] इटावा के आस-पास इसी समय मुनि विनयसागर व उनके शिष्यगण धर्म प्रचार कर रहे थे। लगभग पचास वर्ष पहले लेखक के पूर्वजों ने एक दिगम्बर मुनि महाराज के दर्शन जयपुर रियासत के फागी नामक स्थान पर किये थे। वह मुनिराज वहाँ पर दक्षिण की ओर से विहार करते हुये आये थे।

दक्षिण भारत की गिरि-गुफाओं में अनेक दिगम्बर मुनि इस समय में ज्ञान-ध्यानरत रहे हैं। उन सबका ठीक-ठीक पता पा लेना कठिन है। उनमें से कतिपय जो प्रसिद्धि में आ गये उन्हीं के नाम आदि प्रकट हैं। उनमें श्री चन्द्रकीर्ति जी महाराज का नाम उल्लेखनीय है। वह संभवतः गुरमंड्या के निवासी थे और जैनबद्री में तपस्या करते थे। वह एक महान् तपस्वी कहे गये हैं। उनके विषय में विशेष परिचय ज्ञात नहीं है।[३]

किन्तु उत्तर भारत के लोगों में साम्प्रत दिगम्बर मुनि श्री चन्द्रसागर जी का ही नाम पहले-पहल मिलता है। वह फलटन (सतारा) निवासी हूमड़जातीय पद्मसी नामक श्रावक थे। सं. १९६९ में उन्होंने कुरुन्दवाड़ग्राम (शोलापुर) में दिगम्बर मुनि

---

१. Royal Proclamation of Ist Nov. 1858.

२. "संवत् अष्टादश शतक व सतर बररा प्रमाण
ढाका सहर सुहामणा, देश बंग के माँहिं।
जैन धर्मधारक जिहाँ श्रावक अधिक सुहाहिं।
तासु शिष्य विनयी विबुध हर्षचंद गुणवंत।
मुनि नरसिंह विनेय लिधि पुस्तक एह लिखंत।।"

— मैनपुरी दि. जैन बड़ा मंदिर का एक गुटका।

३. दिजै., वर्ष ९, अंक १, पृ. २३।

श्री जिनप्पास्वामी के समीप क्षुल्लक के व्रत धारण किये थे। सं. १९६९ में झालरापाटन के महोत्सव के समय उन्होंने दिगम्बर मुनि के महाव्रतों को धारण करके नग्न मुद्रा में सर्वत्र विहार करना प्रारम्भ कर दिया। उनका विहार उत्तर भारत में आगरा तक हुआ प्रतीत होता है।[१]

सन् १९२१ मे एक अन्य दिगम्बर मुनि श्री आनन्द सागर जी का अस्तित्व उदयपुर (राजपुताना) में मिलता है। श्री ऋषभदेव केशरियाजी के दर्शन करने के लिये वह गये थे; किन्तु कर्मचारियों ने उन्हें जाने नहीं दिया था। उस पर उपसर्ग आया जानकर वह ध्यान माढ़कर वहीं बैठ गये थे। इस सत्याग्रह के परिणामस्वरूप राज्य की ओर से उनको दर्शन करने देने की व्यवस्था हुई थी।[२]

किन्तु इनके पहले दक्षिण भारत की ओर से श्री अनन्तकीर्ति जी महाराज का विहार उत्तर भारत को हुआ था। वह आगरा, बनारस आदि शहरों में होते हुए शिखरजी की वंदना को गये थे। आखिर ग्वालियर राज्यान्तर्गत मोरेना स्थान में उनका असामयिक स्वर्गवास माघ शुक्ला पंचमी सं. १९७४ को हुआ था। जब वह ध्यानलीन थे तब किसी भक्त ने उनके पास आग की अंगीठी रख दी थी। उस आग से वह स्थान ही आगमयी हो गया और उसमें उन ध्यानारूढ़ मुनि जी का शरीर दग्ध हो गया। इस उपसर्ग को उन धीर-वीर मुनि जी ने समभावों से सहन किया था। उनका जन्म सं. १९४० के लगभग निल्लीकार (कारकल) में हुआ था। वह मोरेना में संस्कृत और सिद्धान्त का अध्ययन करने की नियत से ठहरे थे; किन्तु अभाग्यवश वह अकाल काल-कवलित हो गये।

श्री अनन्तकीर्ति जी के अतिरिक्त उस समय दक्षिण भारत में श्री चन्द्रसागर जी मुनि पणिहली, श्री सनत्कुमार जी मुनि और श्री सिद्धसागर जी मुनि तेरवाल के होने का भी पता चलता है।[३] किन्तु पिछले पाँच-छः वर्ष में दिगम्बर मुनिमार्ग की विशेष वृद्धि हुई है और इस समय निम्नलिखित संघ विद्यमान है, जिनके मुनिगण का परिचय इस प्रकार है –

(१) श्री शान्तिसागर जी का संघ – यह संघ इस समय उत्तर भारत में बहुत प्रसिद्ध है। इसका कारण यह है कि उत्तर भारत के कतिपय पण्डितगण इस संघ के साथ होकर सारे भारतवर्ष में घूमे हैं। इस संघ ने गत चातुर्मास भारत की राजधानी दिल्ली में व्यतीत किया था। उस समय इस संघ में दिगम्बर मुद्रा को धारण किये हुये सात मुनिगण और कई क्षुल्लक-ब्रह्मचारी थे। दिगम्बर साधुओं में श्री शान्तिसागर ही मुख्य हैं। सं. १९२८ में उनका जन्म बेलगाम जिले के ऐनापुर-भोज

---

१. Ibid, p. 18–20

२. दिजै., वर्ष १४, अंक ५–६, पृ. ७।

३. दिजै., विशेषांक वीर, नि.सं. २४४३।

नामक ग्राम में हुआ था। शान्तिसागर जी को तब लोग सात गोंडा पाटील कहते थे। उनकी नौ वर्ष की आयु में एक पाँच वर्ष की कन्या के साथ उनका ब्याह हुआ था और इस घटना के ७ महीने बाद ही वहबाल पत्नी मरण कर गई थी। तब से वह बराबर ब्रह्मचर्य का अभ्यास करते रहे। उनका मन वैराग्य भाव में मग्न रहने लगा। जब वह अठारह वर्ष के थे, तब एक मुनिराज के निकट से ब्रह्मचारी पद को उन्होंने ग्रहण किया था। सं. १९६९ में उत्तरग्राम में विराजमान दिगम्बर मुनि श्री देवेन्द्रकीर्ति जी के निकट उन्होंने क्षुल्लक का व्रत ग्रहण किया था। इस घटना के चार वर्ष बाद संवत् १९७३ में कुंभोज के निकट बाहुबलि नामक पहाड़ी पर स्थित श्री दिगम्बर मुनि अकलंक स्वामी के निकट उन्होंने ऐलक पद धारण किया था। सं. १९७६ में येरनाल में पंचकल्याणक महोत्सव हुआ था। उसमें वह भी गये थे। जिस समय दीक्षा कल्याणक महोत्सव सम्पन्न हो रहा था, उस समय उन्होंने भोसगी के निर्ग्रंथ मुनि महाराज के निकट मुनि दीक्षा ग्रहण की थी।[१] तब से वह बराबर एकान्त में ध्यान और तप का अभ्यास करते रहे थे। उस समय वह एक खासे तपस्वी थे। उनकी शान्त मनोवृत्ति और योगनिष्ठा ने उत्तर भारत के विद्वानों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया। कई पंडित उनकी संगति में रहने लगे। आखिर उनके शिष्य कई उदासीन श्रावक हो गये; जिनमें से कतिपय दिगम्बर मुनि और ऐलक-क्षुल्लक के व्रतों का पालन करने लगे। इस प्रकार शिष्य-समूह से वेष्टित होने पर उन्हें "आचार्य" पद से सुशोभित किया गया और फिर बम्बई के प्रसिद्ध सेठ घासीराम पूर्णचन्द्र जौहरी ने एक यात्रा संघ सारे भारत के तीर्थों की वन्दना के लिये निकालने का विचार किया। तदनुसार आचार्य शान्तिसागर की अध्यक्षता में वह संघ तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़ा। महाराष्ट्र के सांगली - मिरज आदि रियासतों में जब यह संघ पहुंचा था तब वहाँ के राजाओं ने उसका अच्छा स्वागत किया था। निजाम सरकार ने भी एक खास हुक्म निकालकर इस संघ को अपने राज्य में कुशलपूर्वक विहार कर जाने दिया था।[२] भोपाल राज्य से होकर वह संघ मध्य प्रान्त होता हुआ श्री शिखरजी फरवरी, सन् १९२७ में पहुँचा था। वहाँ पर बड़ा भारी जैन सम्मेलन हुआ था। शिखरजी से वह संघ कटनी, जबलपुर, लखनऊ, कानपुर, झांसी, आगरा, धौलपुर, मथुरा, फिरोजाबाद, एटा, हाथरस, अलीगढ़, हस्तनापुर, मुजफ्फरनगर आदि शहरों से होता हुआ दिल्ली पहुँचा था। दिल्ली में वर्षा-योग पूरा करके अब यह संघ अलवर की ओर विहार कर रहा है और उसमें ये साधुगण मौजूद हैं -

---

१. दिजै., वर्ष १६, अंक १-२, पृ. ९।

२ हुकुम नं. ९२८ (शीगे इंतजामी) १३३७ फसली।

(१) श्री शान्तिसागर जी आचार्य, (२) मुनि चंद्रसागर, (३) मुनि श्रुतसागर, (४) मुनि वीरसागर, (५) मुनि नमिसागर, (६) मुनि ज्ञानसागर।

(२) श्री सूर्य सागर जी का संघ – दूसरा संघ श्री सूर्यसागर जी महाराज का है, जो अपनी सादगी और धार्मिकता के लिये प्रसिद्ध है। खुरई में इस संघ का पिछला चातुर्मास व्यतीत हुआ था। उस समय इस संघ में मुनि सूर्यसागर जी के अतिरिक्त मुनि अजितसागर जी, मुनि धर्मसागर जी और ब्रह्मचारी भगवानदास जी थे। खुरई से अब इस संघ का विहार उसी ओर हो रहा है। मुनि सूर्यसागर जी गृहस्थ दशा में श्री हजारीलाल के नाम से प्रसिद्ध थे। वह पोरवाड़ जाति के झालरापाटन निवासी श्रावक थे। मुनि शान्तिसागर जी छाणी के उपदेश से निर्ग्रंथ साधु हुये थे।

(३) श्री शान्तिसागर जी का संघ – तीसरा संघ मुनि शान्तिसागर जी छाणी का है, जिसका गत चातुर्मास ईडर में हुआ था। तब इस संघ में मुनि मल्लिसागर जी, ब्र. फतहसागर जी और ब्र. लक्ष्मीचंद जी थे। मुनि शान्तिसागर जी एकान्त में ध्यान करने के कारण प्रसिद्ध हैं। वह छाणी (उदैपुर) निवासी दशा-हुमड़ जाति के रत्न हैं। भादव शुक्ल १४ सं. १९७९ को उन्होंने दिगम्बर वेष धारण किया था। उन्होंने भुखिया (बाँसवाड़ा) के ठाकुर क्रूरसिंह जी साहब को जैन धर्म में दीक्षित करके एक आदर्श कार्य किया है।

(४) श्री आदि सागर जी का संघ – मुनि आदिसागर जी के चौथे संघ ने उदगाँव में पिछली वर्षा पूर्ण की थी। उस समय इनके साथ मुनि मल्लिसागर जी व क्षुल्लक सूरीसिंह जी थे।

(५) श्री मुनीन्द्र सागर जी का संघ – गत चातुर्मास में श्री मुनीन्द्रसागर जी का पाँचवाँ संघ मांडवी (सूरत) में मौजूद रहा था। उनके साथ श्री देवेन्द्रसागर जी तथा विजयसागर जी थे। मुनीन्द्रसागर जी ललितपुर निवासी और परवार जाति के हैं। उनकी आयु अधिक नहीं है। वह श्री शिखरजी आदि तीर्थों की वन्दना कर चुके हैं।

(६) श्री मुनि पायसागर जी का संघ – छठा संघ श्री मुनि पायसागर जी का है, जो दक्षिण-भारत की ओर ही रहा है।

इनके अतिरिक्त मुनि ज्ञानसगार जी (खैराबाद), मुनि आनन्दसागर जी आदि दिगम्बर साधुगण एकान्त में ज्ञान-ध्यान का अभ्यास करते हैं। दक्षिण-भारत में उनकी संख्या अधिक है। ये सब ही दिगम्बर मुनि अपने प्राकृत वेश में सारे देश में विहार करके धर्म प्रचार करते हैं। ब्रिटिश भारत और रियासतों में ये बेरोक-टोक घूमे हैं; किन्तु गतवर्ष काठियावाड़ के कमिश्नर ने अज्ञानता से मुनीन्द्रसागर जी के संघ पर कुछ आदमियों के घेरे में चलने की पाबन्दी लगा दी थी; जिसका विरोध अखिल भारतीय जैन समाज ने किया था और जिसको रद्द कराने के लिये एक कमेटी भी बनी थी।

सच बात तो यह है कि ब्रिटिश राज की नीति के अनुसार किसी भी सरकारी कर्मचारी को किसी के धार्मिक मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है और भारतीय कानून की ओर से भी प्रत्येक सम्प्रदाय के मनुष्यों को यह अधिकार है कि वह किसी अन्य सम्प्रदाय या राज्य के हस्तक्षेप बिना अपने धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन-निर्विघ्न रूप से करें।

दिगम्बर जैन मुनियों का नग्न वेष कोई नई बात नहीं है। प्राचीन काल से जैन धर्म में उसकी मान्यता चली आई है और भारत के मुख्य धर्मों तथा राज्यों ने उसका सम्मान किया है, यह बात पूर्व पृष्ठों के अवलोकन से स्पष्ट है। इस अवस्था में दुनिया की कोई भी सरकार या व्यवस्था इस प्राचीन धार्मिक रिवाज को रोक नहीं सकती। जैन साधुओं का यह अधिकार है कि वह सारे वस्त्रों का त्याग करें और गृहस्थों का यह हक है कि वे इस नियम को अपने साधुओं द्वारा निर्विघ्न पाले जाने के लिये व्यवस्था करें; जिसके बिना मोक्ष सुख मिलना दुर्लभ है।

इस विषय में यदि कानूनी नजीरों पर विचार किया जाय तो प्रकट होता है कि प्रिवी-कौन्सिल (Privy-council) ने सब ही सम्प्रदायों के मनुष्यों के लिये अपने धर्म सम्बन्धी जुलूसों को आम सड़कों पर निकलना जायज करार दिया है। निम्न उदाहरण इस बात के प्रमाण है। प्रिवी कौन्सिल ने मंजूर हसन बनाम मुहम्मद जमन के मुकदमें में तय किया है कि -

"Persons of all sects are entitled to conduct religious processions through public streets, so that they do not interfere with the ordinary use of such streets by the public and subject to such directions the Magistrate may lawfully give to prevent obstructions of the thorough fare or breaches of the public peace, and the worshippers in a mosque or temple which abutted on a highroad could not compel processionists to intermit their worship while passing the mosque or temple on the ground that there was a continuous worship there." (Munzur Hasan Vs Mohammad Zaman, 23 All. Law Journal, 179).

भावार्थ - प्रत्येक सम्प्रदाय के मनुष्य अपने धार्मिक जुलूसों को आम रास्तों से ले जाने के अधिकारी हैं, बशर्ते कि उससे साधारण जनता को रास्ते के उपयोग करने में दिक्कत न हो और मजिस्ट्रेट की उन सूचनाओं की पाबन्दी भी हो गई हो जो उसने रास्ते की रुकावट और अशान्ति न होने के लिये उपस्थित की हों और किसी मस्जिद या मन्दिर, मन्दिर या मस्जिद के पास से निकलें, मात्र इस कारण कि उस

समय वहाँ पूजा हो रही है उनको जुलूसी पूजा को बन्द करने पर मजबूर नहीं कर सकते।

इस सम्बन्ध में "पार्थसादी आयंगर बनाम चित्रकृष्ण आयंगार" की नजीर भी दृष्टव्य है। Indian Law Report, Madras, Vol. V.p. 309) शुद्रम चेट्टी बनाम महाराणी के मुकदमे में यही उसूल साफ शब्दों में इससे पहले भी स्वीकार किया जा चुका है। (I.L.R. VI, p. 203) इस मुकदमे के फैसले में पृष्ठ २०९ पर कहा गया है कि जुलूसों के सम्बन्ध में यह देखना चाहिये कि अगर वह धार्मिक हैं और धार्मिक अंशों का खयाल किया जाना जरूरी है, तो एक सम्प्रदाय के जुलूस को दूसरे सम्प्रदाय के पूजा-स्थल के पास से न निकलने देना उसी तरह की सख्ती है जैसे की जुलूस के निकलने के वक्त उपासना-मन्दिर में पूजा बन्द कर देना।

मुकदमा सदागोपाचार्य बनाम रामाराव (I.L.B.VI, P. २७६) में यही राय ज़ाहिर की गई है। इलाहाबाद ला जर्नल (भा. २३ पृ. १८०) पर प्रिवी कौन्सिल के जज महोदय ने लिखा है कि " भारतवर्ष में ऐसे जुलूसों के जिनमें मजहबी रसूम अदा की जाती है उसे राह निकालने के अधिकारों के सम्बन्ध में एक "नजीर" कायम करने की जरूरत मालूम होती है, क्योंकि भारतवर्ष में आला अदालतों के फैसले इस विषय में एक-दूसरे के खिलाफ हैं। सवाल यह है कि किसी धार्मिक जुलूस को मुनासिब व जरूरी विनय के साथ शाह-राह-आम से निकलने का अधिकार है? मान्य जज महोदय इसका फैसला स्वीकृति में देते हैं अर्थात् लोगों को धार्मिक जुलूस आम-रास्तों से ले जाने का अधिकार है।"

मुकदमा शंकरसिंह बनाम सरकार कैसरे हिन्द (Al. Law Journal Report., 1929, pp. 180-182) जेरदफा ३० पुलिस-ऐक्ट नं. ५ सन् १८६१ में यह तजवीज़ हुआ कि "तरतीब" - व्यवस्था देने का मतलब "मनाई" नहीं है। मजिस्ट्रेट जिला की राय थी कि गाने-बजाने की मनाई सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस ने उस अधिकार से की थी जो उसे दफा ३० पुलिस एक्ट की रूप से मिला था कि किसी त्यौहार या रस्म के मौके पर जो गाने-बजाने आम-रास्तों पर किये जावें उनको किसी हद तक सीमित कर दें। मैं (जज हाईकोर्ट) मजिस्ट्रेट जिला की राय से सहमत नहीं हूँ कि शब्द "व्यवस्था" का भाव हर प्रकार के बाजे की मनाई है। व्यवस्था देने का अधिकार उसी मामले में दिया जाता है जिसका कोई अस्तित्व हो। किसी ऐसे कार्य के लिये जिसका अस्तित्व ही नहीं है, व्यवस्था देने की सूचना बिल्कुल व्यर्थ है। उदाहरणतः आने-जाने की व्यवस्था के सम्बन्ध में सूचना से आने-जाने के अधिकार का अस्तित्व स्वतः अनुमान किया जायगा। उसका अर्थ यह नहीं है कि पुलिस - अफसरान किसी व्यक्ति को उसके घर में बन्द रखने या उसका आना-जाना रोक देने के अधिकारी हैं।

दफा ३१ पुलिस एक्ट की रूह से पुलिस को आम रास्तों, सड़कों, गलियों, घाट आदि पर आने-जाने के सब ही स्थानों पे शांति स्थिर रखने का अधिकार है। बनारस में इस अधिकार के अनुसार एक हुक्म जारी किया गया था कि खास सम्प्रदाय के लोग यात्रा वालों (पंडों) को, जो इस पवित्र नगर की यात्रा के लिये लोगों का पथ-प्रदर्शन करते हैं, रेलवे स्टेशन पर जाने की मनाई है। इस मुकदमे में हाईकोर्ट इलाहाबाद के योग्य जज महोदय ने तजवीज किया कि किसी स्थान पर शान्ति स्थिर रखने के अधिकारों के बल पर किसी खास सम्प्रदाय के लोगों को किसी खास जगह पर जाने की आम मुमानियत करने का सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस को अधिकार न था। इस तजवीज़ के कारण वही थे जो बमुकदमा सरकार बनाम किशनलाल में दिये गये हैं। I.L.R. Allahabad Vol. 39, P. 131) शान्ति स्थिर रखने का भाव आदमियों को घरों में बन्द करने का नहीं है।[१]

यही विज्ञप्तियाँ दिगम्बर जैन साधुओं से भी सम्बन्ध रखती हैं। वह चाहे अकेले निकलें और चाहे जुलूस की शक्ल में, सरकारी अफसरों का कर्त्तव्य है कि उनके इस हक को न रोकें। दिगम्बर जैन साधुगण सारे ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों में स्वतन्त्रता से बराबर घूमते रहे हैं, कहीं कोई रोक-टोक नहीं हुई और न इस सम्बन्ध में किसी को कोई शिकायत हुई। अतएव सरकारी अफसरों का तो यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वे दिगम्बर मुनियों को अपना धर्म पालन करने में सहायता पहुंचाये। गतकाल में जितने भी शासक यहां हुये उन्होंने यही किया इसलिये अब इसके विरुद्ध ब्रिटिश शासक कोई भी बर्ताव करने के अधिकारी नहीं हैं। उनको तो जैनों को अपना धर्म निर्बाध पालने देना ही उचित है।

---

१. NJ, pp. 19-23.

[२७] दिगम्बरत्व और आधुनिक विद्वान्

"मनुष्य मात्र की आदर्श स्थिति दिगम्बर ही है। मुझे स्वयं नग्नावस्था प्रिय है।"

– महात्मा गाँधी

संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष दिगम्बरत्व को मनुष्य के लिये प्राकृत, सुसंगत और आवश्यक समझते हैं। भारत में दिगम्बरत्व का महत्व प्राचीन काल से माना जाता रहा है। किन्तु अब आधुनिक सभ्यता की लीलास्थली यूरोप में भी उसको महत्व दिया जा रहा है। प्राचीन यूनानवासियों की तरह जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैण्ड आदि देशों के मनुष्य नंगे रहने में स्वास्थ्य और सदाचार की वृद्धि हुई मानते हैं। वस्तुतः बात भी यही है। दिगम्बरत्व आदि स्वास्थ्य और सदाचार का पोषक न हो तो सर्वज्ञ जैसे धर्म प्रवर्तक मोक्ष–मार्ग के साधनरूप उसका उपदेश ही क्यों देते ? मोक्ष को पाने के लिये अन्य आवश्यकताओं के साथ नंगा तन और नंगा मन होना भी एक मुख्य आवश्यकता है। श्रेष्ठ शरीर ही धर्म साधन का मूल है और सदाचार धर्म की जान है तथा यह स्पष्ट है कि दिगम्बरत्व श्रेष्ठ स्वस्थ शरीर और उत्कृष्ट सदाचार का उत्पादक है। अब भला कहिये वह परमधर्म की आराधना के लिये क्यों न आवश्यक माना जाय ? आधुनिक सभ्य संसार आज इस सत्य को जान गया है और वह उसका मनसा वाचा कर्मणा कायल है।

यूरोप में आज सैकड़ों सभायें दिगम्बरत्व के प्रचार के लिये खुली हुई हैं; जिनके हजारों सदस्य दिगम्बर वेश में रहने का अभ्यास करते हैं। बेडल्स स्कूल, पीटर्स फील्ड (हैम्पशायर) में बैरिस्टर, डाक्टर, इंजीनियर, शिक्षक आदि उच्च शिक्षा प्राप्त महानुभाव दिगम्बर वेष में रहना अपने लिये हितकर समझते हैं। इस स्कूल के मंत्री श्री बर्फोर्ड (Mr. N.F. Barford) कहते हैं कि –

Next year, as I say, we shall be even more advanced, and in time people will get quite used to the idea of wearing no clothes at all in the open and will realise its enormous value to health. (Amrita Bazar Patrika, 8–8–31)

भाव यही है कि एक साल के अन्दर नंगे रहने की प्रथा विशेष उन्नत हो जायेगी और समयानुसार लोगों को खुलेआम कपड़े पहनने की आवश्यकता नहीं रहेगी। उन्हें नंगे रहने से स्वास्थ्य के लिये जो अमिट लाभ होगा वह तब ज्ञात होगा।

इस प्रकार संसार में जो सभ्यता पुज रही है उसकी यह स्पष्ट घोषणा है कि "मनुष्य जाति को स्वस्थ रखने के लिये वस्त्रों को तिलांजलि देनी पड़ेगी। नग्नता रोगियों के लिये ही केवल एक महान् औषधि नहीं है, बल्कि स्वस्थ जीवों के लिए

भी अत्यन्त आवश्यक है। स्विटजरलैण्ड के नगर लेयसन (Leysen) निवासी डॉ. रोलियर (Dr. Rollier) ने केवल नग्न चिकित्सा द्वारा ही अनेक रोगियों को आरोग्यता प्रदान कर जगत में हलचल मचा दी है। उनकी चिकित्सा प्रणाली का मुख्य अंग है स्वच्छ वायु अथवा धूप में नंगे रहना, नंगे टहलना और नंगे दौड़ना। जगतविख्यात् ग्रंथ "इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका" में नग्नता का बड़ा भारी महत्व वर्णित है।" वास्तव में डॉक्टरों का यह कहना कि जब से मनुष्य जाति वस्त्रों के लपेट में लिपटी है तब से ही सर्दी, जुकाम, क्षय आदि रोगों का प्रादुर्भाव हुआ है, कुछ सत्य-सा प्रतीत होता है। प्राचीनकाल में लोग नंगे रहने का महत्व जानते थे और दीर्घजीवी होते थे।

किन्तु दिगम्बरत्व स्वास्थ्य के साथ-साथ सदाचार का भी पोषक है। इस बात को भी आधुनिक विद्वानों ने अपने अनुभव से स्पष्ट कर दिया है। इस विषय में श्री ओलिवर हर्स्ट सा. "The New Statesman and Nation" नामक पत्रिका में प्रकट करते हैं कि "अन्ततः अब समाज बाईबिल के प्रथम अध्याय के महत्व को (जिसमें आदमी और हव्वा के नंगे रहने का जिक्र है) समझने लगी है और नग्नता का भय अथवा झूठी लज्जा मन से दूर होती जा रही है।जर्मनी भर में बीसों ऐसी सोसायटियाँ कायम हो गयीं हैं जिनमें मनुष्य पूर्ण नग्नावस्था में स्वच्छ वायु का उपयोग करते हुये नाना प्रकार के खेल खेलते हैं। वे लोग नग्न रहना प्राकृतिक पवित्र और सरल समझते हैं। शताब्दियों से जिसके लिये उद्यम हो रहा है वह यहीं पवित्रता का आन्दोलन है।यह पवित्रता कैसी है? इसके स्वयं उनके निवास स्थान गेलैन्ड (Gelande) के देखने से जाना जा सकता है जबकि वहाँ सैकड़ों-स्त्री पुरुष बालक-बालिकायें आनन्दमय स्वाधीनता का उपभोग करते दृष्टि पड़े। ऐसे दृश्य देखने से मन पर क्या असर पड़ता है, वह बताया नहीं जा सकता। जिस प्रकार कोई मैला-कुचैला आदमी स्नान करके स्वच्छ दिखाई दे ठीक उसी तरह यह दृश्य सर्व प्रकार के सूक्ष्म अंतरंग विषों से शून्य दिखाई पड़ेगा।ऐसे पवित्र मानवों के सामने जो वस्त्रधारी होगा वह लज्जा को प्राप्त हो जायेगा। ऐसे आनन्दमय वातावरण में ताजी हवा और धूप का जो प्रभाव शरीर पर पड़ता है उसको सर्वसाधारण अच्छी तरह जान सकते है, परन्तु जो मानसिक तथा आत्मिक लाभ होता है वह विचार के बाहर है। यह क्रान्ति दिनों दिन बढ़ रही है और कभी अवनत नहीं हो सकती। मानवों की उन्नति के लिये यह सर्वोत्कृष्ट भेंट जर्मनी संसार को देगा। जैसे उसने आपेक्षिक सिद्धान्त उसे अर्पण किया है। बर्लिन में जो अभी इन सोसायटियों की सभा हुई थी उसमें भिन्न-भिन्न नगरो के ३००० सदस्य शरीक हुये थे। उसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों और राष्ट्रीय कौन्सिल के मेम्बरों ने अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ देखा था। उन स्त्रियों के भाव उसे देखकर बिलकुल बदल गये। नग्नता का विरोध करने के लिये कोई हेतु

१. दिमुनि. भूमिका, पृ. "ख"।

नहीं है जिस पर वह टिक सके। जो इसका विरोध करता है वह स्वयं अपने भावों की गन्दगी प्रकट करता है। किन्तु यदि वह इन लोगों के निवासस्थान को गौर से देखे तो उसे अपना विरोध छोड़ देना होगा। वह देखेगा कि सैकड़ों स्त्री–पुरुषों माता–पिता और बच्चों ने कैसी पवित्रता प्राप्त कर ली है।"[१]

अतएव पाश्चात्य विद्वानों की अनुभवपूर्ण गवेषणा से दिगम्बरत्व का महत्व स्पष्ट है। दिगम्बरत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति है और वह धर्म–मार्ग से उपादेय है, यह पहले भी लिखा जा चुका है। स्वास्थ्य और सदाचार के पोषक नियम का वैज्ञानिक धर्म में आदर होना स्वाभाविक है। जैन धर्म एक विज्ञान है और वह दिगम्बरत्व के सिद्धान्त का प्रचारक अनादि काल से रहा है। उसके साधु इस प्राकृत वेष में शीलधर्म के उत्कट पालक और प्रचारक तथा इन्द्रियजयी योगी रहे हैं, जिनके सम्मुख सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य और सिकन्दर महान जैसे शासक नतमस्तक हुये थे और जिन्होंने सदा ही लोक का कल्याण किया ऐसे ही दिगम्बर मुनियों के संसर्ग में आये हुये अथवा मुनिधर्म से परिचित आधुनिक विद्वान भी आज इन तपोधन दिगम्बर मुनियों के चारित्र से अत्यन्त प्रभावित हुये हैं। वे उन्हें राष्ट्र की बहुमूल्य वस्तु समझते हैं। देखिये साहित्याचार्य श्री कन्नोमल जी एम.ए. जज उनके विषय में लिखते हैं कि "मैं जैन नहीं हूँ पर मुझे जैन साधुओं और गृहस्थों से मिलने का बहुत अवसर मिला है। जैन साधुओं के विषय में मैं, बिना किसी संकोच के कह सकता हूँ कि उनमें शायद ही कोई ऐसा साधु हो जो अपने प्राचीन पवित्र आदर्श से गिरा हो। मैंने तो जितने साधु देखे हैं उनसे मिलने पर चित्त में यही प्रभाव पड़ा कि वे धर्म, त्याग, अहिंसा तथा सदुपदेश की मूर्ति हैं। उनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता होती है।"[२]

बंगाली विद्वान श्री बरदाकान्त मुखोपाध्याय एम.ए. इस विषय में कहते हैं[३] –

"चौदह आभ्यान्तरिक और दस बाह्य परिग्रह परित्याग करने से निर्ग्रंथ होते हैं। जब वे अपनी नग्नावस्था को विस्मृत हो जाते हैं तब ही भवसिन्धु से पार हो सकते हैं। (उनकी) नग्नावस्था और नग्नमूर्तिपूजा उनका प्राचीनत्व सप्रमाण सिद्ध करती है, क्योंकि मनुष्य आदि अवस्था में नग्न थे।"

महाराष्ट्रीयन विद्वान श्री वासुदेव गोविन्द आपटे बी.ए. ने एक व्याख्यान में कहा था कि " जैन शास्त्रों में जो यतिधर्म कहा गया है वह अत्यन्त उत्कृष्ट है, इसमें कुछ भी शंका नहीं है।"[४] प्रो. डा. शेषगिरि राव, एम.ए. पी–एच.डी. बताते हैं कि[५] –

---

१. जैमि, वर्ष ३२, पृष्ठ ७१२।
२. दिमु., पृ. २३।
३. जैम., पृ. १५१।
४. जै.म.पृ.५६
५. SSIJ. PT. II P. 30

"(The Jaina) faith helped towards the formation of good and great character helpful to the progress of Culture and Humanity. The leading exponents of that faith continued to live such lives of hardy discipline and spiritual culture etc."

भावार्थ – "जैन धर्म संस्कृति और मानव समाज की उन्नति के लिये उत्कृष्ट और महान चरित्र को निर्माण कराने में सहायक रहा है। इस धर्म के आचार्य सदा की भांति तपश्चरण और आत्मविकास का उन्नत जीवन व्यतीत करते रहे।"

"ईसाई मिशनरी ए. डुबोई सा. ने दिगम्बर मुनियों के सम्बन्ध में कहा था कि –

"सबसे उच्च पद जो कि मनुष्य धारण कर सकता है वह दिगम्बर मुनि का पद है। इस अवस्था में मनुष्य साधारण मनुष्य न रहकर अपने ध्यान के बल से परमात्मा का मानो अंश हो जाता है। जब मुनष्य निर्वाणी (दिगम्बर) साधु हो जाता है तब उसको इस संसार से कुछ प्रयोजन नहीं रहता। और वह पुण्य–पाप, नेकी–बदी को एक ही दृष्टि से देखता है। उसको संसार की इच्छायें तथा तृष्णायें नहीं उत्पन्न होतीं हैं। न वह किसी से राग और न द्वेष करता है। वह बिना दुःख मालुम किये उपसर्गों को सहन करता है।अपने आत्मिक भावों में जो भीजा हो उसको क्यों इस संसार की और उसकी निस्सार क्रियाओं की चिन्ता होगी।"[१]

एक अन्य महिला मिशनरी श्री स्टीवेन्सन ने अपने ग्रंथ "हार्ट आफ जैनिज्म" में लिखा कि –

"Being rid of clothes one is also rid a lot of other worries no water I needed in which to wash them. Our knowledge of good and evil, our knowledge of nakedness keeps us away form salvat on. To obtain it we must forget nakedness. The Jain Niragranthas have forget all knowledge of good and evil. Why should they require clothes to hide their nakedness?" (Heart of Jainism, p. 35)

भावार्थ – "वस्त्रों की झंझट से छूटना, हजारों अन्य झंझटों से छूटना है। कपड़े धोने के लिये एक दिगम्बर वेषी को पानी की जरूरत नहीं पड़ती। वस्तुतः पाप–पुण्य का भान नग्नता का ध्यान ही मनुष्य को मुक्त नहीं होने देता। मुक्ति पाने के लिये मनुष्य को नग्नता का ध्यान भुला देना चाहिये। जैन निर्ग्रंथों ने पाप–पुण्य के भान को भुला दिया है। भला उन्हें अपनी नग्नता छिपाने के लिये वस्त्रों की क्या जरूरत ?

---

१. जैम., पृ. १०५।

सन् १९२७ में जब लखनऊ में दिगम्बर मुनि संघ पहुँचा तो श्री अलफ्रेड जेकबशॉं (Alfread Jackob Shaw) नामक ईसाई विद्वान ने उनके दर्शन किये थे। वह लिखते हैं कि प्राचीन पुस्तकों में सम्मेद शिखिर पर दिगम्बर मुनियों के ध्यान करने की बाबत पढ़ा जरूर था लेकिन ऐसे साधुओं को देखने का अवसर अजिताश्रम में ही मिला। वहाँ चार दिगम्बर मुनि ध्यान और तपस्या में लीन थे। आग सी जलती हुई छत पर बिना किसी क्लेश के वह ध्यान कर रहे थे। उनसे पूछा तो उन्होंने कहा कि "हम परमात्मस्वरूप आत्मा के ध्यान में लीन रहते हैं। हमें बाहरी दुनिया की बातों और सुख दुख से क्या मतलब ?

यद्यपि मैं पक्का ईसाई हूं पर तो भी मैं कहूंगा कि इन साधुओं का सम्मान हर सम्प्रदाय के मनुष्यों को करना चाहिये। उन्होने संसार के सभी सम्बन्धों को त्याग दिया है और एकमात्र मोक्ष की साधना में लीन हैं।"[१]

सचमुच इन विद्वानों का उक्त कथन दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनियों की महिमा का स्वतः द्योतक है। यदि विचारशील पाठक तनिक इस विषय पर गम्भीर विचार करेंगे तो वह भी नग्नता के महत्व और नग्न साधुओं के स्वरूप को मोक्ष प्राप्ति के लिये आवश्यक जान जायेंगे। कविवर वृन्दावन के शब्द स्वतः उनके हृदय से निकल पड़ेंगे–

"चतुर नगन मुनि दरसत,
भगत उमग उर सरसत।
नुति थुति करि मन हरसत,
तरल नयन जल बरसत।।"

---

१. JG., XXIII. p. 139.

उपसंहार

बाह्यो ग्रंथोऽगमक्षाणामांतरो विषयेषिता।

निर्मोहस्तत्र निर्ग्रंथः पांथः शिवपुरेऽर्थतः।। – कवि आशाधर[1]

"यह शरीर बाह्यपरिग्रह है और स्पर्शनादि इन्द्रियों के विषयों में अभिलाषा रखना अन्तरंग परिग्रह है। जो साधु इन दोनों परिग्रहों में ममत्व परिणाम नहीं रखता है, परमार्थ से वही परिग्रह रहित गिना जाता है तथा वही निर्वाण नगर व मोक्ष में पहुंचने के लिये पांथ अर्थात् नित्य गमन करने वाला माना जाता है।" इसका कारण यह है कि मोक्ष मार्ग में निरंतर गमन करने की सामर्थ्य एक मात्र यथाजातरूपधारी निर्ग्रंथ ही के हैं। जो मनुष्य शरीर रक्षा और विषय कषायों की चिंताओं में फंसकर पराधीन बना हुआ है, भला वह साधु पद को कैसे धारण कर सकता है ? और दिगम्बर वेष को धारण करके वह साधु नहीं हो सकता तो फिर उसका निरंतर मोक्षमार्ग पर गमन अथवा मोक्ष-पद को पा लेना कैसे संभव है? इसीलिये दिगम्बरत्व को महत्व देकर मुमुक्षु शरीर से नाता थोड़ लेते हैं, और नंगे तन तथा नंगे मन होकर आत्मस्वातंत्र्य को पा लेते हैं। शाश्वत सुख को दिलाने वाला यही एक राजमार्ग है और इसका उपदेश प्रायः संसार के सब ही मुख्य-मुख्य मत प्रर्वतकों ने किया था।

मनोविज्ञान की दृष्टि से जरा इस प्रश्न पर विचार किजिये और फिर देखिये दिगम्बरत्व की महिमा। जिसका मन शरीर में अटका हुआ है, जो लज्जा के बन्धन में पड़ा हुआ है और जो साधु वेष को धारण करके भी साधुता को नहीं पा पाया है, वह दिगम्बरत्व के महत्व को क्या जाने ? मन की शुद्ध भावों की विशुद्धता ही मुमुक्षु के लिये आत्मोन्नति का कारण है और वस्तुतः वही साक्षात् मोक्ष को दिलाने वाली है। किन्तु मन की यह विशुद्धता क्या बनावट और सजावट में नसीब हो सकती है? वस्त्रादि परिग्रह के मोह में अटका हुआ प्राणी भला कैसे निर्ग्रंथ पद को पा सकता है। इसलिये संसार के तत्ववेत्ताओं ने हमेशा दिगम्बरत्व का प्रतिपादन किया है। भगवान ऋषभदेव के निकट से प्रचार में आकर यह महत सिद्धान्त आज तक बराबर मुमुक्षुओं का आत्मकल्याण करता आ रहा है, और जब तक मुमुक्षुओं का अस्तित्व रहेगा बराबर वह कल्यण करता रहेगा।

दिगम्बरत्व मुनष्य को रंक से राव बना देता है। उसको पाकर मनुष्य देवता हो जाता है। लेकिन दिगम्बरत्व खाली नंगा तन नहीं है। वह नंगे होने से कुछ अधिक है। नंगे तो पशु भी हैं पर उन्हें कोई नहीं पूजता ? इसका कारण यह है कि मानव जगत

१. सागार., पृ. ५१३।

जानता है कि पशुओं को अपने शरीर को ढंकने और विवेक से काम लेने की तमीज नहीं है।

पशुओं ने विषय विकार पर भी विजय नहीं पाई है। इसके विपरीत दिगम्बर मुनि के सम्बन्ध में उसकी धारणा है और ठीक धारणा है जैसे कि हम निर्दिष्ट कर चुके हैं कि ये साधु तन से ही नंगे नहीं होते बल्कि उनका मन भी विषय विकारों से नंगा है। दिगम्बरत्व का रहस्य उसके बाह्यान्तर रूप में गर्भित है। इस रहस्य को समझकर ही मुमुक्षु दिगम्बर वेष को धारण करके विकार विवर्जित होने का सबूत देते हैं। और आत्म कल्याण करते हुए जगत के लोगों का हित साधते हैं। श्री ऋषभदेव दिगम्बर मुनि ही थे जिन्होंने संसार को सभ्यता और धर्म का पाठ पढ़ाया। श्री सिंहनन्दि आचार्य दिगम्बर वेश में ही विचरे थे, जिन्होंने गंगवंश की स्थापना कराई और उन क्षत्रियों को देश तथा धर्म का रक्षक बनाया। कल्याणकीर्ति आदि मुनिगण नंगे साधु ही थे जिन्होंने सिकन्दर महान जैसे विदेशियों के मन को मोह लिया था, और उन्हें भारत भक्त बनाया था। वे दिगम्बर ऋषि ही थे जिन्होंने अपने तत्वज्ञान का सिक्का यूनानियों के दिलों में जमा लिया था और उन्हें बाद में निग्रहस्थान को पहुंचा दिया था। श्री वादिराज और वासवचन्द्र जैसे दिगम्बर मुनि धीर वीरता के आगार थे। उन्होंने रणांगण में जाकर योद्धाओं को धर्म का स्वरूप समझाया था और श्री समन्तभद्राचार्य दिगम्बर साधु ही थे जिन्होंने सारे देश में विहार करके ज्ञान सूर्य को प्रकट किया था। सम्राट चन्द्रगुप्त, सम्राट अमोघवर्ष प्रभृति महिमाशाली नररत्न अपनी अतुल राजलक्ष्मी को लात मारकर दिगम्बर ऋषि हुये थे। ये सब उदाहरण दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनियों के महत्व और गौरव को प्रकट करते हैं। दिगम्बर मुनियों के मूलगुणों की संख्या परिमाण प्रस्तुत परिच्छेदों में ओत प्रोत दिगम्बर गौरव का बखान है। सचमुच श्री शिवव्रतलाल वर्म्मन् के शब्दों में[१] - "दिगम्बर मुनि धर्म -कर्म की झलकती हुई प्रकाशमान् मूर्तियां हैं। वे विशाल हृदय और अथाह समुद्र हैं जिसमें मानवीय हित कामना की लहरें जोर-शोर से उठती रहती हैं और सिर्फ मनुष्य ही क्यों ? उन्होंने संसार के प्राणी मात्र की भलाई के लिये सबका त्याग किया / प्राणी हिंसा को रोकने के लिए अपनी हस्ती को मिटा दिया। ये दुनिया के जबरदस्त रिफार्मर, जबरदस्त उपकारी और बड़े ऊंचे दर्जे के वक्ता तथा प्रचारक हुये हैं। ये हमारे राष्ट्रीय इतिहास के कीमती रत्न हैं। इनमें त्याग, वैराग्य, और धर्म का कमाल – सब कुछ मिलता है। ये "जिन" हैं, जिन्होंने मोह-माया को तथा मन और

१. जैम., पृ. ३-५।

काया को जीत लिया। साधुओं की नग्नता देखकर भला क्यों नाक भौं सिकोड़ते हो? उनके भावों को क्यों नहीं देखते? सिद्धान्त यह है कि आत्मा को शारीरिक बंधन से ताल्लुकात की पोशिश से आजाद करके बिलकुल नंगा कर दिया जाये, जिससे उसका निजरूप देखने में आवे।" यह वजह है इन साधुओं के जाहिरदारी के रस्मो रिवाज से परे रहने की। यह ऐब की बात क्या है? ईश्वर कुटी में रहने वालों को अपने जैसा आदमी समझा जाये तो यह गलती है या नहीं। इसलिये आओ सब मिलकर राष्ट्र और लोक कल्याण के लिये स्पष्ट घोषणा करो कविवर वृन्दावन की तान में तान मिलाकर कहो –

"सत्यपंथ निर्ग्रंथ दिगम्बर"

परिशिष्ट

तुर्किस्तान के मुसलमानों में नग्नत्व आदर की दृष्टि से देखा जाता है, यह बात पहले लिखी जा चुकी है। मिस लूसी गार्नेट की पुस्तक "Mysticism and Magic in Turky" के अध्ययन से प्रकट है कि "पैगम्बर साहब ने एक रोज मुरीदों के राज और मारफत की बातें अली साहब को बाता दीं और कह दिया कि वह किसी को बतायें नहीं। इस घटना के ४० दिन तक तो अली साहब उस गुप्त संदेश को छुपाये रहे किन्तु फिर उसके दिल में छुपाये रखना असंभव जानकर वह जंगल को भाग गये।" (पृ. ११०)। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि मुहम्मद साहब ने राजे मारफत अर्थात योग की बाते बताई थीं, जिनको बाद में सूफी दरवेशों ने उन्नत बनाया था। इन दरवेशों में अजालुलौब और अब्दाल श्रेणी के फकीर बिलकुल नंगे रहते हैं। मि. जे.पी. ब्राउन नामक साहब को एक दरवेश मित्र ने खालिफ अली की जियारतगाह में मिले हुए अजालुलौब दरवेश का हाल कहा था। उसका नाम [illegible] था। उसका शरीर मझोले कद का था और वह बिलकुल नंगा (Perfectly naked) था। उसके बाल और दाढ़ी छोटे थे और शरीर कमजोर था। उसकी उम्र लगभग ४०–५० वर्ष की थी (पृ. ३६)। इन दरवेशों के संयम की ऐसी प्रसिद्धि है कि देश में चाहे कहीं बेरोक टोक घूमते हैं, कभी अर्द्धनग्न और कभी पूरे नंगे हो जाते हैं। जितने ही वह अद्भुत दिखते हैं उतने ही अधिक पवित्र और नेक गिने जाते हैं।

(The result of this reputataion for sanctity enjoyed by Abdals is that they are allowed to wander at large over the country, sometimes half-cald, sometimes completely naked.)

वे अपने ज्ञान का प्रयोग खूब करते हैं। घर और साथियों से उन्हें मोह नहीं होता। वे मैदानों और पहाड़ों में जा रमते हैं। वहीं वनफलों पर गुज़रान करते हैं। जंगल के खूंखार जानवरों पर वे अपने अध्यात्म–बल से अधिकार जमा लेते हैं। सारांशतः तुर्किस्तान में यह नंगे दरवेश प्रसिद्ध और पूज्य माने जाते हैं।

यूरोप में नंगे रहने का रिवाज दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है। जर्मनी में इसकी खूब वृद्धि है। अब लोग इस आन्दोलन को एक विशेष उन्नत जीवन के लिए आवश्यक समझने लगे है। देखिये, २ फरवरी सन् ३२ के "स्टेट्समैन" अखबार में यह ही बात कही गई है–

"Germany is at present challenging the traditional view that clothes are requisite for health and virtue. The habit of wearing only the sun and air exercise is growing and the "Nudist" movement at first laughed at and blushed at else where, is now seriously studied as probably the way to a saner morality."

—The Statesman, 2-2-32

भारतवर्ष में नग्न रहने का महत्व बहुत पहले ही समझा जा चुका है। विदेशों में अब वही बात दुहराई जा रही है।

अनुक्रमणिका